वर्ष : 7 अंक : 23-24

मूल्य : ₹ 30

**साहित्य और समाज विमर्श का त्रैमासिक**

सैयद रजा की पेंटिंग



**संपादक : हृदयेश मयंक**

# क्या आपका मौजूदा बचत खाता

## वाक़ई बचत कर रहा है?

**बैंक ऑफ़ बड़ौदा के बचत खातों में से चुनिए अपनी पसंद.**
**इन-बिल्ट ख़ूबियों और फ़ायदों के साथ, जो आपका समय और पैसा, दोनों बचाए.**

| बचत बैंक खाता | सुपर सेविंग्स बैंक खाता | बड़ौदा सैलरी एडवांटेज बचत खाता |
|---|---|---|
| • हमारे बैंक ATM पर डेबिट कार्ड का असीमित इस्तेमाल<br>• मुफ़्त नेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग और एम पासबुक<br>• बड़ौदा रिवॉर्ड्ज़ - ऑनलाइन ख़रीदारी के लिए डेबिट कार्ड के इस्तेमाल पर एक आकर्षक लॉयल्टी प्रोग्राम<br>• मिस्ड कॉल अलर्ट द्वारा बैलेंस की जांच | • रु.20,000 से अधिक के बैलेंस पर पाइए शॉर्ट डिपॉज़िट ब्याज<br>• ऑटो स्वीप/रिवर्स स्वीप सुविधा<br>• मुफ़्त असीमित चेक बुक और मांग ड्राफ़्ट<br>• डीमैट सेवा पर 25% की छूट | • रु.1 लाख तक क्लीन ओवरड्राफ़्ट की सुविधा उपलब्ध<br>• न्यूनतम बैलेंस की कोई ज़रूरत नहीं<br>• प्लैटिनम मास्टर/रुपे कार्ड के लिए एयरपोर्ट लाउंज<br>• मिस्ड कॉल अलर्ट द्वारा बैलेंस की जांच |

शर्तें लागू.

टोल फ़्री नं. पर कॉल करें | 1800 22 33 44
सुबह 6-रात 10 बजे | 1800 102 44 55
वेब चैट-24x7
www.bankofbaroda.co.in

हमें यहाँ फ़ॉलो करें

REG. NO. MAH-HIN-39947/86

चिंतन दिशा

वर्ष 7 ■ अंक 23-24
संयुक्तांक : अप्रैल-सितंबर-2016

**सलाहकार संपादक**
विनोद कुमार श्रीवास्तव

**परामर्श एवं संपादन सहयोग**
रमेश राजहंस
राकेश शर्मा
रमन मिश्र
शैलेश सिंह

**संपादक**
हृदयेश मयंक

**संपादकीय कार्यालय**
ए-701, आशीर्वाद-1, पूनम सागर
कॉम्पलेक्स, मीरा रोड (पूर्व), मुंबई
401107. संपर्क : 09869118707
email : chintandisha@gmail.com

**अक्षर संयोजन एवं लेआउट**
क्रिएटिव इमेज, मुंबई
09819615352 / 9987379849

**सदस्यता शुल्क**
एक प्रति : 30 रुपए
वार्षिक : 150 रुपए
आजीवन : 10,000 रुपए
सहयोगी : 5000 रुपए

विदेशों के लिए : 20 अमेरिकी डॉलर
चेक/ड्रॉफ्ट 'चिंतन दिशा' के नाम से
रेखांकित करें। ऑन लाइन सदस्यता
शुल्क/सहयोग राशि के लिए
इलाहाबाद बैंक (मीरा रोड)
खाता क्रमांक : 50034426754
IFSC : ALLA0212110

सभी पद अवैतनिक। न्याय क्षेत्र, मुंबई

पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचारों से संपादक और
परामर्शदाताओं का सहमत होना ज़रूरी नहीं है।

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक एवं
संपादक हृदयेश मयंक ने मिलेनियम आर्ट्स,
डी-19-20, आकुर्ली इंडस्ट्रीयल इस्टेट, कांदिवली
(पूर्व), मुंबई से छपवाकर शॉप नं. 3, आई-59/60,
नवग्रह अपार्टमेंट, पूनम सागर कॉम्पलेक्स,
मीरा रोड (पूर्व), से प्रकाशित।

# अनुक्रमणिका

## संपादकीय



## आलेख



## समाज-विमर्श



## स्मृति शेष

## कहानियां



## भाषांतर



## विश्व-साहित्य



## लघु कथाएं



## कविताएं



## ग़ज़ल



## गीत



## समीक्षा



## पत्रकारिता



## पत्रिका परिक्रमा



**आवरण पृष्ठ** : एस. रज़ा

संपादकीय

# अनिश्चितता के दौर में कश्मीर

**सरकारी इकाइयों का बड़े पैमाने पर निजीकरण, निरंतर बढ़ते साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति सत्ताधीशों में दिखाई पड़ रही है। तानाशाही रवैया भारतीय जनतंत्र के हित में नहीं है। अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छवि सुधारने की बात ठीक है पर इतने बड़े पैमाने पर निवेश के लिए सभी दरवाजे खोलना कितना उचित होगा, इस पर ध्यान देना अवाश्यक है।**

चिंतनदिशा का यह अंक एक ऐसे समय में आपके हाथों तक पहुंच रहा है जब एक बार फिर पूरा देश अनिश्चितता की गर्त में है। कश्मीर समस्या इतनी बुरी स्थितियों में कभी नहीं थी। सड़क पर खून-खराबा और वहां के जन-जीवन में असंतोष विकट रूप धारण कर चुका है। कश्मीर इस देश का हिस्सा है और वहां के लोग इसी देश के नागरिक हैं। सड़कों पर किसी आंदोलन के तहत लोग स्वेच्छा से विरोध में उतर आते हैं और निहित स्वार्थों द्वारा संगठित रूप में दबाव के तहत उतारे भी जाते हैं। दोनों स्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही बहुत सोच-समझकर कार्यवाही की जानी चाहिए। दमन व सैन्य बलों का प्रयोग तत्कालिक हल हो सकते हैं पर स्थायित्व के लिए उनसे समझदारी विकसित करने का रास्ता ही सही रास्ता है। तमाम आर्थिक घोषणाओं के बावजूद सारा किया धरा पानी में न चला जाये। कश्मीर में इस समय भाजपा की मिलीजुली सरकार है। वातावरण व हालात सुधरने की बजाय वे काबू होते जा रहे हैं यह चिंता का विषय है।

सरकारी इकाइयों का बड़े पैमाने पर निजीकरण, निरंतर बढ़ते साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति सत्ताधीशों में दिखाई पड़ रही है। तानाशाही रवैया भारतीय जनतंत्र के हित में नहीं है। अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छवि सुधारने की बात ठीक है पर इतने बड़े पैमाने पर निवेश के लिए सभी दरवाजे खोलना कितना उचित होगा, इस पर ध्यान देना अवाश्यक है। वर्ना निवेश तो होगा, बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपनी शर्तो पर आयेंगी भी और सही वातावरण के अभाव व जो छवि बन रही है उसे ध्वस्त होने में तनिक समय नहीं लगेगा। रक्षा उत्पादों में अंतरर्राष्ट्रीय निवेश कहीं अपनी संप्रभुता सौंपने का उपक्रम न साबित हो, इसका ध्यान रखना पड़ेगा।

**स्व.** मीरा श्रीवास्तव बहुत अच्छी कवियत्री और लेखिका थीं। वह चिंतन दिशा के सलाहकार संपादक श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव की पत्नी थीं। उनके आकस्मिक निधन ने हम सबको व्याथित कर दिया। उनकी बीमारी के दौरान हम सभी साथी चिंतित व दुःखी थे विनोद जी ने रात-दिन एक कर उनकी सेवा व इलाज का गुरुतर भार संभाल रखा था। पर उनके दोनों पुत्रों और पुत्रवधुओं ने भी कोई कसर न छोड़ रखी थी। हमने पति की सेवा सुश्रुषा के बारे में बहुत सुने थे पर पत्नी सेवा का ऐसा उदाहरण हमे विरल देखने को मिला। बीमारी के दिनों में विनोद जी के पास एक मात्र विषय मीरा जी की सेवा का रह गया था। उन्होंने अपनी चिंता नहीं की पर उन्हें बचाये रखने के तरह-तरह के उपक्रम जो संभव थे किया। पर मृत्यु का दिन अंततः आ ही धमका। मीरा जी का एक व्यक्तित्व जो बहुत छुपा हुआ और बहुत निजी था वह उनके साहित्य का था। उस व्यक्त्वि के कुछ पहलुओं को हम चिंतन दिशा के पाठकों के साथ साझा करना चाहते हैं। इस अंक में उनकी कुछ कविताएं, कहानियां व कुछ संस्मरण हम दे रहे हैं। उनका यह पक्ष हमें उन्हें जानने व उनके प्रति श्रद्धावनत होने का मौका देगा।

**मुद्राराक्षस** जी की स्मृतियां हमारे ज़ेहन में हैं। वे मुंबई आये थे और हमें उनका सानिध्य मिला था। उनका एक ऐसे समय में जाना हमें दुःखदायी लग रहा है जब फासीवाद की आहटें निकट कान तक सुनाई पड़ रही है। इस समय विरोध व प्रतिपक्ष नदारद है। एक विद्रोही

बेबाक व्यक्तित्व का चले जाना दुःखद है। मुद्रा जी ने 'धर्मग्रंथों का पुनरपाठ' जैसी रचना लिखकर हिंदुत्ववादी ताकतों को एक तरह से चुनौती दी थी। उन्होंने भगतसिंह पर पुस्तक लिखकर उनकी इस दौर में भी प्रासंगिकता को सिद्ध किया था। उनका उपन्यास 'दंड विधान' भारतीय समाज के सर्वहारा मुसहर समाज पर आधारित है। उन्होंने देश के सभी शीर्षस्थ साहित्यकों से मुठभेड़ किया। वे कॉ-डांगे लोहिया के सीधे संपर्क में रहे थे। पद प्रतिष्ठा व पुरस्कार से वे मीलों भागते रहे थे। दलित समाज का उनके प्रति बहुत ही आदरपूर्ण व्यवहार था।

आंबेडकरवादी सगठनों ने उन्हे 'आंबेडकर रत्न' शुद्राचार्य सरीखी उपाधियों से नवाजा था।उनका जन अभिनंदन सिक्कों से तौलकर किया गया था। मुद्राजी जब मुंबई आये थे हमारे सहयोगी संपादक रमन मिश्र के निवास पर ठहरे थे। शैलेश सिंह और मुझे उन्हें शहर के साथियों से मिलवाने का जिम्मा मिला था। आज जब वे नहीं हैं चिंतन दिशा परिवार उनके निधन से दुःखी है। एक संघर्षशील व विद्रोही व्यक्तित्व की स्मृति में भाई कौशल किशोर का आलेख उनके प्रति इस परिवार की ओर से विनम्र श्रंद्धाजलि स्वरूप दिया जा रहा है।

मीरा जी का एक व्यक्तित्व जो बहुत छुपा हुआ और बहुत निजी था वह उनके साहित्य का था। उस व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं को हम चिंतन दिशा के पाठकों के साथ साझा करना चाहते हैं। इस अंक में उनकी कुछ कविताएं, एक कहानी व कुछ संस्मरण हम दे रहे हैं। उनका यह पक्ष हमें उन्हें जानने व उनके प्रति श्रद्धावनत होने का मौका देगा।

**मित्रों!** चितंन दिशा का कोई भी अंक आखिरी अंक हो सकता है। कारण स्पष्ट है धनाभाव। विगत सात वर्षो से हम लगातार लेखकों, बुद्धिजीवियों और प्रतिबद्ध रचनाकारों को अंक भेजते रहे हैं, इस उम्मीद से कि वे अपने अनुभवों से हर तरह से हमारा सहयोग अवश्य करेंगे। निराशा हाथ लगी। सबसे ज्यादा निराशा प्रतिबद्ध संगठनों से जुड़े लेखकों से हुई। निराशा उनसे भी हुई जिन्होंने दंभ करते हुए दिलासा दिया था कि वे सब मोर्चे पर साथ देंगे और चिंतन दिशा के प्रकाशन को निरंतरता मिलती रहेगी। कुछ नये लेखकों व संस्कृति कर्मियों ने अपने से आगे आकर लेखकीय सहयोग किया जिससे मुझे बल मिला। कुछ लोगों ने अनपेक्षित भाव से आर्थिक सहयोग भी किया जो स्तुत्य है। आगे देखते हैं कि चिंतन दिशा इतने वर्षों में अपने कितने शुभचिंतक बना पायी है?

इस दौरान हिंदी साहित्य व कला की कई महत्वपूर्ण सुप्रसिद्ध साहित्यक हस्तियां हमसे विदा ले चुकी हैं कवि उमेश चौहान, मराठी के सुप्रसिद्ध कवि तुलसी परब, और हसन जमाल, नीलाभ, सैयद हैदर रजा, पत्रकार लाजपत राय हमसे सदा के लिए विछुड़ गये हैं। अभी-अभी हिन्दी फिल्मों की एक ज़माने में लोकप्रिय गायिका मुबारक बेगम के निधन की खबर आई है। चिंतन दिशा परिवार सभी संस्कृति कर्मियों के प्रति श्रंद्धाजलि व्यक्त करता है जो अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार कला-साहित्य की सेवा में स्वयं को होम कर गये।

## पाठकों और लेखक मित्रों से निवेदन

'चिंतन दिशा' आपकी अपनी पत्रिका है। इसे आप से हर तरह से सहयोग की अपेक्षा है। समकालीन साहित्य व समाज की व्यापक चिंताओं को केंद्र में रखकर अनेक विशेषांकों की योजना है जो बिना आपके सहयोग के पूरी नहीं हो सकती। अतः आप से अनुरोध है कि अपनी श्रेष्ठ रचनाओं के अलावा आपके आसपास हो रही साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों की सूचनाओं से हमें अवगत करायें।

राष्ट्रीय स्तर पर चल रही साहित्यिक गतिविधियों की व्यापक खोजबीन और उन पर सार्थक टिप्पणी के लिए यह मंच आपका स्वागत करता है।

ऐसे रचनाकार जो किन्ही कारणों से अपने अंचल विशेष के होकर रह गये हों और जिन्हे समाज की नज़र से यथोचित स्थान मिलना ही चाहिए, उन पर विशेष सामग्री हमें भेजी जा सकती है।

'चिंतन दिशा' में प्रकाशन हेतु रचनाएं ई-मेल से भेजते समय इतनी सी सावधानी रखें कि सामान्य वर्ड फाइल (.doc) ही भेजें एवं विज्ञापन आदि (pdf) फाइल। उसमें बहुत अधिक फार्मेटिंग, डिजाइनिंग आदि न करें। यदि संभव हो तो यूनिकोड मंगल फोंट (intetnet font) में ही भेजें।

संपर्क :
ए-701, आशीर्वाद-1, पूनम सागर कॉम्पलेक्स,
मीरा रोड (पूर्व) 401107.
मो. 09869118707
email : chintandisha@gmail.com

प्रो. वशिष्ट अनूप

**'कोई भी रचना विचार से शून्य नहीं होती। पर यदि रचना में विचार खप कर आये, उसका अभिन्न अंग बनकर आये तो वह विश्वसनीय होगी। रचना निश्चय ही विचार की वाहक होती है। हमें सोचने पर बाध्य करती है, विचार हमारे हर कर्म में झलकता है।'**

# भीष्म साहनी के शताब्दी वर्ष में तमस

यह भीष्म साहनी का शताब्दी वर्ष है। ऐसे समय में जब 'तमस' की काली ताकतें और ताकतवर होकर तथा आधुनिकतम हथियारों से लैस होकर प्रकट हो रही हैं, भीष्म साहनी को याद करना बहुत जरूरी लग रहा है। भीष्म जी का जन्म रावलपिंडी में हुआ था। उनके पिता कपड़े के व्यवसायी थे। उन्होंने 1937 में लाहौर गवर्नमेंट कालेज से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. तथा 1958 में पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। विभाजन के बाद भारत आकर उन्होंने समाचार-पत्रों में लिखना आरंभ किया। आगे चलकर वह इप्टा (जन नाट्य संघ) से जुड़े। स्वाधीनता आन्दोलन के समय वह कांग्रेस से जुड़े थे। उन्हीं दिनों 1945 में रावलपिंडी के आसपास साम्प्रदायिक दंगे भड़क गए थे जो गाँवों तक फैल गए थे। कांग्रेस और गांधी जी से जुड़ाव के कारण उन्हें दंगा प्रभावित क्षेत्रों में जाकर वारदातों के नुकसान का विवरण तैयार करने का काम मिला। इन्हीं अनुभवों ने बाद में 'तमस' लिखने की प्रेरणा दी। आजादी के बाद उन्होंने अम्बाला और अमृतसर के कॉलेजों में अंग्रेजी का अध्यापन किया। बाद में वह दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज में अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हुए और
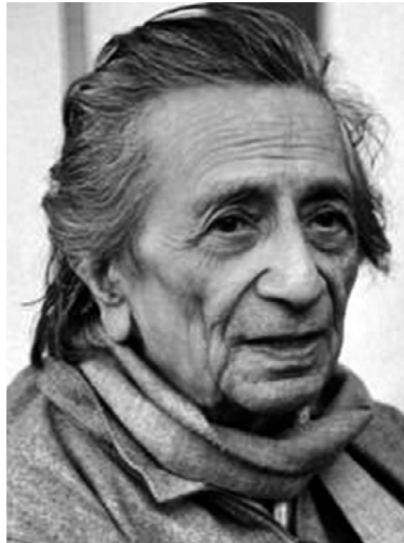
अवकाश प्राप्ति तक वहीं सेवारत रहे। बीच में 1957 से 1963 तक उन्होंने मास्को में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह में अनुवादक के रूप में कार्य किया और दो दर्जन से अधिक पुस्तकों का रूसी से हिन्दी में अनुवाद किया। इस बीच कई देशों का भ्रमण करने का अवसर मिला। उन्होंने तमाम लेखकों को प्रगतिशील लेखक संघ से जोड़ा। उन्होंने लोट्स और नई कहानियाँ का सम्पादन भी किया। 1993 से 1997 तक वह साहित्य अकादमी की कार्यकारी समिति के सदस्य रहे। 1975 में उन्हें 'तमस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान मिले जिनमें 1983 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड और 1998 में भारत सरकार द्वारा प्रदत्त पद्मभूषण अलंकरण उल्लेखनीय है।

भीष्म साहनी ने उपन्यास, कहानी और नाटक विधा में कई कालजयी और अविस्मरणीय कृतियों का सृजन किया। कुल मिलाकर उन्होंने लगभग चालीस पुस्तकें लिखीं। झरोखे (1967), कड़ियाँ (1970), तमस (1973), बसंती (1980), मय्यादास की माड़ी (1988), कुंतो (1993) तथा नीलू नीलिमा नीलोफर (2000), उनके सात उपन्यास हैं। भाग्य रेखा (1953), पहला पाठ, भटकती राख (1966), पटरियाँ (1973), वाङ्चू (1978), शोभायात्रा (1981), निशाचर (1983), पाली (1989) और डायन (1998) उनके नौ कहानी संग्रह हैं। इनमें उनकी एक सौ बीस कहानियाँ संकलित हैं। हानूश (1977), कबिरा खड़ा बजार में (1981), माधवी (1984), मुआवजे (1993), रंग दे बसंती चोला (1998) तथा आलमगीर (1999) उनकी छह प्रसिद्ध नाट्य कृतियाँ हैं। आज के अतीत (2003) उनकी आत्मकथा है जो हिन्दी की कुछ थोड़ी-सी महत्वपूर्ण आत्मकथाओं में से एक है। इसके अलावा उन्होंने निबंध,

संस्मरण और आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं जो 'अपनी बात' (1990) में संकलित हैं।

भीष्म साहनी प्रगतिशील विचारों के लेखक थे। उन्होंने यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए उस यथार्थ को बदलने के लिए प्रेरित किया। वह साहित्य की शक्ति और सीमाओं से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने समाज, राजनीति, विचारधारा, साहित्य का उद्देश्य आदि पर काफी चिन्तन किया है और समय-समय पर इसे व्यक्त भी किया है। वह रचना में विचार को अनिवार्य मानते हैं- 'कोई भी रचना विचार से शून्य नहीं होती। पर यदि रचना में विचार खप कर आये, उसका अभिन्न अंग बनकर आये तो वह विश्वसनीय होगी। रचना निश्चय ही विचार की वाहक होती है। हमें सोचने पर बाध्य करती है, विचार हमारे हर कर्म में झलकता है।' (आज के अतीत, पृ. 265) विचार के साथ ही वह किसी रचना के लिए सम्वेदनशील हृदय को भी जरूरी मानते हैं- 'किसी उपन्यास की रचना लेखक की कलम नहीं करती, उसका मस्तिष्क नहीं करता, उसका 'भाव विह्वल हृदय' करता है।' वह यह भी मानते हैं कि रचना में विचार घुलमिलकर आना चाहिए। विचारधारा को चुपके से 'हृदय की राह' से प्रवेश करके 'जीवन-दृष्टि' का निर्माण करना चाहिए। विचार आरोपित नहीं लगना चाहिए- 'रचना में कुछ भी आरोपित नहीं होना चाहिए। रचना खुद बोले, रचना स्वयँ ही उसमें निहित विचार तत्त्व का प्रमाण हो। उसके साथ किसी प्रकार का दुमछल्ला लगाना, नैतिक अथवा कोई और संदेश देने वाला, रचना को कमजोर करता है।' (आज के अतीत, पृ. 207) उन्हें साहित्य की शक्ति पर पूरा भरोसा है। उन्होंने साहित्य के सरोकारों के बारे में लिखा है कि-'साहित्य, अंधकार को मिटा तो नहीं सकता, पर उसे मिटाने की प्रेरणा दे सकता है, अंधकार मिट सकता है, इसका विश्वास पाठक को दे सकता है, उसमें अंधकार से जूझने की चेतना/क्षमता जगा सकता है, इंसान को उसके दायित्व का बोध करा सकता है। और ऐसा वह अनंत काल से करता आ रहा है।' (आज के अतीत, पृ. 298) प्रेमचंद की भाँति वह स्वीकार करते हैं कि लेखक की भूमिका सचेत करने की है, रास्ता दिखाने की है, जिन्दगी के यथार्थ की तस्वीर आँखों के सामने ले आने की है।

**भीष्म साहनी की विशेषता यह है कि वह किसी एक सम्प्रदाय को दोषी न मानकर तटस्थ होकर सभी संकीर्णतावादियों का पदार्फाश करते हैं। हिन्दू महासभा के संचालक वानप्रस्थी जी वेद-वेदांत के ज्ञाता हैं और उन्हें गीता व उपनिषदों के तमाम श्लोक कंठस्थ हैं।**

भीष्म साहनी का समूचा लेखन महत्वपूर्ण है और हमारी वेशकीमती धरोहर है। उसमें कुछ तो अत्यंत महत्वपूर्ण है, किन्तु यहाँ हम अपनी बात उनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक उपन्यास 'तमस' पर केन्द्रित करेंगे। 'तमस' का प्रकाशन 1973 में हुआ था आजादी के पच्चीस वर्षों बाद रजत जयंती वर्ष में। 'तमस' का अर्थ अंधकार होता है। यह मनुष्य के अमानवीय, विवेकशून्य और रक्त-पिपासु होने के अर्थ में है। इसकी प्रेरणा आजादी से पहले रावलपिंडी और अन्य जगहों पर हुए साम्प्रदायिक दंगों तथा उपन्यास-लेखन से कुछ दिन पूर्व हुए भिवंडी के दंगों से मिली थी। इसमें विभाजन से पूर्व रावलपिंडी में हुए साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण है जो लगातार पाँच दिन तक चलता रहा जिसमें सारे सम्बंध और मानवता तार-तार हो गई थी।

'तमस' 260 पृष्ठों का औसत आकार का उपन्यास है। यह भारत-विभाजन की त्रासदी पर केन्द्रित है। इसमें उस समय की साम्प्रदायिक विभिषिका, उन्माद, हिंसा और ब्रिटिश साम्राज्यवादी षड्यंत्रों व साजिशों का प्रामाणिक चित्रण हुआ है। इसमें साम्प्रदायिक दंगों के कारणों की बहुत बारीक और तटस्थ पड़ताल करते हुए यह दिखाया गया है कि दंगे होते नहीं है बल्कि कुछ शातिर और मनुष्यता के द्रोही लोगों द्वारा कराए जाते हैं। यह भी कि यह आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक समस्या न होकर कुछ शातिर-सम्पन्न लोगों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण सुनियोजित ढंग से कराये जाते हैं। उपन्यास का आरंभ नत्थू चमार द्वारा सुअर मारने की घटना से होता है। मरे जानवरों की खाल उतारना नत्थू का पुश्तैनी पेशा था। मुराद अली नत्थू चमार से गाय-भैंस की खाल लिया करता था। वह नत्थू को पाँच रुपये का प्रलोभन देकर सुअर मरवाता है। बाद में वही सुअर सुबह-सुबह मस्जिद की सीढ़ियों पर पड़ा मिलता है। प्रतिक्रियास्वरूप एक गाय भी मारकर मंदिर के सामने डाल दी जाती है। इसके परिणामस्वरूप शहर में साम्प्रदायिक विद्वेष और तनाव उत्पन्न हो जाता है और दोनों तरफ से भड़काऊ भाषण, बयान और नारे शुरू हो जाते हैं। एक तरफ भारत माता की जय और महात्मा गांधी जिंदाबाद, हर-हर महादेव के नारे लगते हैं तो दूसरी तरफ से कायदे आजम जिंद्राबाद तथा अल्ला हो अकबर, लेके रहेंगे पाकिस्तान के नारे सुनाई पड़ने लगते हैं। फिर देखते ही देखते सारा शहर सांप्रदायिक दंगों, मार-काट और लूट व आगजनी की घटनाओं से घिर जाता है। दंगों की यह आग आसपास के गाँवों तक भी पहुँच जाती है। दोनों तरफ के साम्प्रदायिक तत्व अपनी रणनीतियाँ बनाते हैं और जनता को तरह-तरह से भड़काते हैं। हिन्दू और मुस्लिम सांप्रदायिक तत्व मंदिर और मस्जिदों में संगठित होते हैं, इस प्रकार साम्प्रदायिक शक्तियाँ संगठित होकर एक-दूसरे से भिड़ जाती हैं।

इस उपन्यास में भीष्म साहनी की विशेषता यह है कि वह किसी एक सम्प्रदाय को दोषी न मानकर तटस्थ होकर सभी संकीर्णतावादियों का पदार्फाश करते हैं। हिन्दू महासभा के संचालक वानप्रस्थी जी वेद-वेदांत के ज्ञाता हैं और उन्हें गीता व उपनिषदों के तमाम श्लोक कंठस्थ हैं। वे शांति पाठ करते हैं और सत्संग में गाते हैं-

सब पर दया करो भगवान/सब पर कृपा करो भगवान।

लेकिन मुसलमानों के खिलाफ विष वमन भी करते हैं-

फैलाये घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने

नेमत फलक ने छीन ली, दौलत जमीन ने।

वह मुसलमानों के प्रति आग उगलते हैं, असुरक्षा की भावना उत्पन्न करते हैं और कहते हैं- हमें सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबंध किया जाना चाहिए। सभी सदस्य अपने-अपने घर में एक-एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें, उबला तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अंगारे छत से फेंके जा सकते हैं...।'

सिक्ख भी इसी तरह गुरुद्वारे में संगत में बैठे लोगों को उनका इतिहास बताते हुए ललकार रहे थे और मुसलमान मस्जिद में अपने लोगों को जोशीली तकरीरों से भड़का रहे थे। उस वक्त हिंदुओं, सिक्खों और मुसलमानों की स्थिति का चित्रण करते हुए भीष्म जी ने लिखा है कि तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिक्खों पर हमला बोल रहे हैं और सिक्खों के जेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की श्रृंखला में एक कड़ी थी। लड़ने वालों के पाँव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्य युग में।'

'तमस' में साम्राज्यवादी सोच का भी अच्छा चित्रण हुआ है। दंगों के समय हर समुदाय का समझदार और संवेदनशील व्यक्ति चिंतित था और यथाशक्ति शांति के लिए प्रयत्नशील था, लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रतिनिधि डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड निश्चिन्त था। इस षडयंत्र का वह समर्थक था और इसी में उसका हित भी था। वह अपनी पत्नी लीजा से कहता है कि (हिन्दुस्तानी) 'धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।' उसकी बात का प्रतिवाद करते हुए लीजा कहती है- 'बहुत चालाक नहीं बनो रिचर्ड, मैं सब जानती हूँ, देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।'

लीजा जब यह कहती है कि वे उन्हें लड़ने से रोक भी सकते हैं क्योंकि वे एक ही जाति के लोग हैं तब रिचर्ड कहता है कि 'हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन-सी समानता पाई जाती है। उसकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक-दूसरे से अलग हैं।' इस वातालार्प में साम्राज्यवादी अंग्रेजों का मूल चरित्र समझ में आ जाता है। इसी प्रकार नागरिकों का एक प्रतिनिधि मंडल जब रिचर्ड से मिलकर उससे शहर में कर्फ्यू लगा देने का निवेदन करता है तो वह मुस्कराकर रह जाता है। उसे पता है कि प्रजा आपस में लड़ेगी तो उपनिवेशवादी ताकतों के सम्मुख संगठित प्रतिरोध की सम्भावना कम हो जाएगी। अंग्रेजों की हकीकत का पदार्फाश गाँधी जी के अनुयायी बख्शी जी और जनरैल सिंह के बयानों में होता है। उन्हें पता है कि सारे फसादों की जड़ अंग्रेज हैं। जनरैल सिंह लोगों को सजग करते हुए कहता है कि- 'साहिबान, मैं आपसे कहता हूँ कि हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं, शहर में फिसाद हो रहा है, आगजनी हो रही है और उसे कोई रोकता नहीं। डिप्टी कमिश्नर अपनी मेम को बाँहों में लेकर बैठा है और कहता है कि हमारा दुश्मन अंग्रेज है। गाँधी जी कहते हैं कि वही हमें लड़ाता है और हम भाई-भाई हैं। हमें अंग्रेज की बातों में नहीं आना चाहिए और गाँधी जी का फर्मान है कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा, हम एक हैं, हम भाई-भाई हैं, हम मिलकर रहेंगे...।'

'तमस' में एक तरफ बहुत भयावह और दिल दहला देने वाली घटनाएँ हैं तो कुछ उम्मीद की किरणें भी हैं। शातिर मुराद अली के बहकावे में आकर सीधे-सादे नत्थू द्वारा सूअर को मारने की घटना, हरनाम सिंह के बेटे इकबाल सिंह के धर्म परिवर्तन की घटना, भागते हुए इकबाल सिंह को मुस्लिम दंगाइयों द्वारा पकड़ना, उसे जलील करना, धर्म परिवर्तन से पहले खून टपकता मांस का टुकड़ा उसके मुँह में ठूसकर चूसने के लिए कहना और उसकी सुन्नत करना,

**'तमस' में साम्राज्यवादी सोच का भी अच्छा चित्रण हुआ है। दंगों के समय हर समुदाय का समझदार और संवेदनशील व्यक्ति चिंतित था और यथाशक्ति शांति के लिए प्रयत्नशील था, लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रतिनिधि डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड निश्चिन्त था। इस षडयंत्र का वह समर्थक था और इसी में उसका हित भी था। वह अपनी पत्नी लीजा से कहता है कि (हिन्दुस्तानी) 'धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।'**

यह सब अत्यंत घृणित है। अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए हरनाम सिंह की बेटी जसबीर कौर का अन्य सिख महिलाओं के साथ कुएँ में कूदकर अपनी जान दे देने की घटना भी बहुत मार्मिक है। बलदेव सिंह द्वारा अपनी माँ का बदला लेने के लिए गाँव के ही निर्दोष लुहार करीमबख्श की हत्या करना, शाहनवाज द्वारा अपने मित्र रघुनाथ की मुस्लिम बहुल इलाके में रक्षा करना किन्तु उनके नौकर भिक्खीराम की हत्या कर देना आदि घटनाएँ बहुत शर्मनाक हैं। इस प्रकरण की सबसे जघन्य और वीभत्स घटना एक लड़की के साथ बलात्कार की है। एक बलवाई बताता है कि उन्होंने एक हिन्दू लड़की को पकड़कर उसके साथ बारी-बारी से बलात्कार किया। जब उसकी बारी आई तो लड़की मर चुकी थी और वह लाश से ही 'जना' किये जा रहा था। इस घटना को पढ़कर मंटो की कहानी 'ठंडा गोश्त' की सहज ही याद आती है।

लेकिन जैसा कि मैंने कहा कि इस उपन्यास में रिश्तों के बारीक धागे भी हैं, कहीं इंसानियत और संवेदना भी है और इस गहन तमस में प्रकाश की किरणें भी

हैं। कांग्रेस से जुड़े हुए कुछ लोग और कम्युनिस्ट अपनी सामर्थ्य भर दंगों को रोकने की कोशिश करते हैं। इसमें सबसे रोचक और शानदार उदाहरण तब प्रस्तुत होता है जब एक बुजुर्ग मुस्लिम महिला एक सिख दंपति को अपने घर में शरण देती है और उनकी रक्षा करती है।

हरनाम सिंह और उसकी पत्नी बंतो एक मुस्लिम बहुल गाँव में रहते हैं। दंगा शुरू होने पर वह अपने मुस्लिम दोस्तों, विशेषकर करीमखान के आश्वासन और भरोसे के कारण बंतो के कहने पर भी गाँव नहीं छोड़ता। लेकिन एक दिन करीम खान स्थितियों को देखते हुए उससे गाँव से निकल जाने को कहता है। किसी तरह लोगों से बचते हुए हरनाम सिंह और बंतो एक दूसरे गाँव ढोक मुरीदपुर में जाते हैं और एक मुस्लिम परिवार में ही उन्हें शरण मिलती है। उस घर की बुजुर्ग महिला राजो उनकी स्थिति पर दया करके उन्हें अपने घर में पनाह देती है और लस्सी पिलाती है। यहाँ धर्म की थोड़ी-सी झिझक भी दिखाई पड़ती है। उस घर के पुरुष लूटपाट के लिए बाहर गए थे। उस मुस्लिम परिवार का मुखिया एहसान अली और उसका बेटा रमजान जब लूटपाट के बाद वापस लौटते हैं तो उनके पास हरनाम सिंह का भी ट्रंक होता है। रमजान की पत्नी अकरां ट्रंक का ताला तोड़ने के लिए बहुत उतावली होती है। वह जानना चाहती है कि इसमें उसके काम की क्या-क्या चीजें हैं। हरनाम सिंह यह सब देख रहा होता है। वह कहता है कि-'ताला क्यों तोड़ती हो बेटी, यह लो चाभी, यह हमारा ही ट्रंक है।' एहसान अली से उसका परिचय था। हरनाम सिंह को देखकर वह झेंप जाता है। फिर यह तय होता है कि रात होने तक उन्हें घर में छिपा कर रखा जाएगा और यह सब रमजान को नहीं बताया जाएगा क्योंकि वह उग्र स्वभाव का है, लेकिन उसे उसकी पत्नी से पता चल जाता है और वह इन दोनों पति-पत्नी की हत्या करना चाहता है किन्तु वह ऐसा नहीं कर पाता क्योंकि हरनाम सिंह से वह भी परिचित था। यहाँ लेखक ने लिखा है कि-'दो-तीन बार रमजान ने कुल्हाड़ी उठाने की कोशिश की, पर कुल्हाड़ी हाथ में रहते हुए भी उसे उठा नहीं पाया।

काफिर को मारना और बात है, अपने घर के अंदर जान-पहचान के पनाहगुजीर को मारना दूसरी बात। उसका खून करना पहाड़ की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था। मजहबी जुनून और नफरत के इस माहौल में एक पतली-सी लकीर कहीं पर अभी भी खिंची थी जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था।' यहाँ ध्यातव्य है कि राजो हरनाम सिंह और उनकी पत्नी को शरण देने के साथ उनकी रक्षा करती है और नकदी व जेवरों सहित उन्हें गाँव की सीमा के बाहर तक सुरक्षित पहुँचा आती है। यह घोर अमानवीयता के बीच मानवीयता का श्रेष्ठ नमूना है।

'तमस' की समस्याएँ नई नहीं हैं और आज भी मौजूद हैं। आजादी से पहले विदेशी शासकों ने यहाँ अपने पाँव जमाने के लिए इनका इस्तेमाल किया। उस समय उसमें अंग्रेजों के साथ लीगी और हिंदू महासभाई भी शामिल थे। आजादी के बाद भी हमारे देश के कुछ राजनीतिक दल इसका कुत्सित उपयोग कर रहे हैं। वे मान बैठे हैं कि नफरत और हिंसा से रक्तरंजित जमीन में वोटों की फसल अच्छी उगती है और मतों का ध्रुवीकरण आसान होता है। ये समस्याएँ दशानन के मुँह की तरह विभिन्न रूपों के सारी दुनिया में विद्यमान हैं। आतंकवाद, नस्लवाद, धार्मिक और जातीय संकीर्णता और टकराव आज भी अत्यंत विकृत रूप में जारी है। ऐसे में भीष्म साहनी के सृजन की, विशेषकर उनके कालजयी उपन्यास 'तमस' की प्रासंगिता और बढ़ जाती है।

**प्रो. वशिष्ठ अनूप**
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005, मो. 9415895812


## ग़ज़ल

**अशोक कुमार नीरद**
गीतकार-ग़ज़लकार


(1)

अपहिज चेतना को कर गया है
नहीं यह जागरण यह रतजगा है
खुद अपने दर्द का बहलाव ढूंढ़े
किसी के कौन आंसू पोछता है?
इसी के जल में रहना है तुझे फिर
नदी से क्यों किनारा कर रहा है?
तलाशे खाद हम हिलमिल के ऐसी
कि जिसमें प्यार का पोषण भरा है
नया युग किस क़दर है क्रांतिकारी!
सपेरा सांप से मांगे दुआ है!!
सरल होना हुआ है शाप 'नीरद'
ढली दुर्भाव में सद्भावना है।

(2)

शुभ मेरे घर की राह भूला है
मेरे आंगन में बाँस फूला है।
आएगा तो तबाहियाँ देगा
हास अंधड़ का इक बगूला है
जैसा चाहेगा वैसा गढ़ देगा
वक़्त के हाथ में बसूला है
जिंदगी कम नहीं महाजन से
मुझसे क्या-क्या नहीं वसूला है?
देख पाता है और न चल पाता
धर्म अंधा है, धर्म लूला है
इसकी पेंगो की है नहीं सीमा
आदमी वासना का झूला है
दोष 'नीरद' न दे ज़माने को
तेरी करनी ने तुझको हूला है

आलेख

किरण वाडीवकर

**जारवा आदिवासियों की तेजी से घटती जनसंख्या एक चिंतनीय एवं संवेदनशील मुद्दा बन चुका है। उनकी बची-खुची जनसंख्या को बचाने के लिए जंगल के कुछ भूभाग आरक्षित किये गये हैं तथा कई सख्त कानून भी बनाये गये हैं। सभ्य मानव के संपर्क से उनमें संक्रामक बीमारी के फैलने का खतरा बन गया था। इस कारण वश इनका इलाका बिना अनुमति प्रवेश तथा पर्यटन के लिए पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया गया है।**

# पाषण युगीन अंडमानी आदिवासियों का अभिशप्त जीवन

अंडमानद्वीप समूह, जिस तरह प्राकृतिक सौन्दर्य और हरे-भरे, घने जंगलों के लिए प्रसिद्ध है, उसी प्रकार इन जंगलों में बसी विविध आदिम जनजातियों के लिए भी मशहूर है। इन आदिम जनजातियों का इतिहास हजारों साल पुराना है। आधुनिक सभ्यताओं से परे इन आदिवासियों का अपना एक अलग ही संसार रहा है। उनके जंगलों में सभ्य मानव की घुसपैठ से उन्हेंअपनी ही जमीन से बेदखल होना पड़ाहै। उन्हें अपने जीवन में किसी की दखलअंदाजी कभी रास नहीं आयी। मानव इतिहास के सबसे बड़े वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन के प्राकृतिक परिवर्तन एवं विकास के सिद्धांत को आदिवासियों पर लागू करने की जल्दबाजी ने ही उनका सर्वनाश किया है। उन्हें शालीन बनाने का हमारा हठ उनके लुप्त होने का मुख्य कारण बना है, यह बात इतिहास टटोलने के पश्चात सिद्ध हो जाती है। उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ने तथा आधुनिक सभ्यता में ढालने के प्रयासों के चलते उनका हमेशा ही शोषण होता रहा है। प्राकृतिक रूप से अपने जीवन-यापन के मूलभूत अधिकारों को अबाधित रूप

जारवा

से रखने के  लिए वे आज भी संघर्ष कर रहे हैं।

यहां की 'ग्रेट अंडमानी', 'ओंगी', 'सेंटिनिल' एवं 'जारवा' जनजातियाँ हजारों वर्षों से इनद्वीपोंमें बसीहैं, जो आज लुप्तताकी कगार पर हैं। मानव वंश वैज्ञानिकों के अध्ययन के अनुसार अंडमान-निकोबार द्वीपोंपर 'नेग्रिटो' तथा 'मंगोलियन' नस्ल की आदिम जनजातियाँ निवास करती हैं। 'अंडमान' द्वीप समूह की 'ग्रेट अंडमानी', 'जारवा', 'ओंगी' व 'सेंटिनिल' जनजातियाँ नेग्रिटो मूल की हैं। 'निकोबार' द्वीप समूह की 'निकोबारी' व 'शॉपेन' प्रजातियाँ मंगोलियन मूल की हैं। ग्रेट अंदमानी तथा ओंगी जनजातियों का सभ्य मानवसे संपर्क हो चुका है जो आज नेस्तनाबूद होने की कगार पर हैं। सेंटिनिल जनजाति अब भी पाषाण युग में अपना जीवन गुजार रही है। 'जारवा'इस समय अंडमान में सर्वाधिक पायी जाने वाली आदिम जनजाति है। यह भी पाषाण युगीन परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत कर रही है। इनकी नयी पीढ़ी कुछ हद तक सभ्य संस्कृति से रू-ब-रू हो रही है।

जारवा आदिवासियों की तेजी से घटती जनसंख्या एक चिंतनीय एवं संवेदनशील मुद्दा बन चुका है। उनकी बची-खुची जनसंख्या को बचाने के लिए जंगल के कुछ भूभाग आरक्षित किये गये हैं तथा कई सख्त कानून भी बनाये गये हैं। सभ्य मानव के संपर्क से उनमें संक्रामक बीमारी के फैलने का खतरा बन गया था। इस कारण वश इनका इलाका बिना अनुमति प्रवेश तथा पर्यटन के लिए पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया गया है। इन सतर्कताओं के बावजूद भी विदेशी पर्यटक कुछ भ्रष्ट पुलिसकर्मी तथा सरकारी कर्मचारियों की मदद से इन तक पहुंच ही जाते हैं।

पिछले दिनों 'जारवा' आदिवासियों की सुरक्षा का मुद्दा सुर्खियों में था। लंदन स्थित 'ऑब्जर्वर' अखबार ने मोबाइल द्वारा फिल्माये गये अर्धनग्न आदिवासी महिलाओं के नृत्य करते वीडियो जारी किए थे। जिसमें एक पुलिस के समक्ष नृत्य करती अर्धनग्न जारवा लड़कियां दिखायी दे रही थीं। दूसरे वीडियों में सेना की वर्दी पहनकर बैठे एक व्यक्ति के सामने कुछ जारवा युवतियां नाच रही थीं। इन आदिवासी महिलाओं को खान-पान सामग्री का लालच देकर उनसे नृत्य करवाया गया था। इस घटना की जाँच के बाद यह जानकारी मिली कि,'ऑब्जर्वर'के इस पत्रकार को एक स्थानीय व्यक्ति तथा एक टैक्सी चालक का इन दोनों ने जारवाओं के निवास स्थान तक पंहुचाया था। इस विडियो के चलते जारवाओं की सुरक्षा को लेकर पूरी दुनिया में सनसनी फैल गयी थी। अंडमान स्थित जारवा तथा अन्य लुप्त प्राय आदिम प्रजातियाँ आज भी बहुत कठिनाइयों मेंअपना जीवन गुजार रही हैं। इन अभिशप्त आदिवासियों का पूर्व इतिहास जानने की मंशा पाठकों के मन में निश्चित ही उत्पन्न होगी। 'चिंतन दिशा' के पाठकों को इस इतिहास से अवगत कराने का यह प्रयास है।

## आदिवासियों का प्राचीन इतिहास

प्राचीन काल से इन द्वीपों पर पाषाण युगीन आदिवासियों की मौजूदगी के प्रमाण मिलते हैं। रामायण कालीन एक तर्क के अनुसार अंडमान को हनुमान के वंशजों की भूमि माना जाता है। मलाया (बर्मा,म्यानमार) के लोग इन द्वीपों को 'हंडूमान' नाम से जानते थे, अर्थात 'हंडूमान' शब्द का अपभ्रंश व मुखसुख ही 'अंडमान' है ऐसा माना जाता है। चीन के 'टैंग राजवंश' कालीन इतिहास (सन ६१८ से ९०६ तक) में इन द्वीपों को राक्षसों की भूमि भी कहा गया है। हो सकता है कि आदिवासियों की क्रूरता व आक्रामकता के कारण उन्हें यह संज्ञा दी गयी हो।

करीबन दूसरी सदी से सोलहवीं सदी तक इन द्वीपों से गुजरे कई यात्रियों ने अपने यात्रा-वृतांत में इन आदिवासियों की उपस्थिति का उल्लेख किया है। दूसरी सदी के सिकंदर कालीन भूगोलवेत्ता 'टॉलेमी' और विश्व का मानचित्र रचने वाले पाचवीं सदी के रोमन नक्शानवीस 'अगाथोडेमन' ने भी अंडमान-निकोबार द्वीप समूह पर नग्न आदिवासियों केअस्तित्व का उल्लेख किया है। जिनमें सातवीं सदी के चीनीबौद्ध भिक्षुक 'इत्सिंग' नौंवी सदी में जावा-सुमात्रा की ओर प्रयाण करते दो अरब व्यापारियों, सन 1920 में यहांसे गुजरे 'मार्को पोलो', सन् 1322 में इन टापुओं से गुजरे 'फ्रायर ओडोरिक' नामक यूरोपीय यात्री, सन 1440 के प्रवासी 'निकोलो काँटी' तथा सन 1549 में यहां पहुंचे 'सीझर फेडेरिक' ने भी इन द्वीपों पर खूंखार आदिवासियों की मौजूदगी का उल्लेख किया है। यहां से यात्रा करते अधिकतर यात्रियों ने  यहां की जनजातियां नरभक्षी थीं ऐसा भी जिक्र किया है। इन आदिवासियों द्वारा अपरिचित आगंतुकों को जान से मार डालने के कई उदहारण तो मिलते हैं लेकिन इनके नरभक्षी होने की पुष्टि नहीं हो पाती। इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि इन द्वीपों पर प्राचीनकाल से ही आदिवासियों की बस्तियां हैं।

## ग्रेटअंडमानी

'ग्रेटअंडमानी' नेग्रिटो मूलकी आदिम जनजाति है।'अका-बीआ-डा', 'अकार-बाले', 'पुचीकवार', 'औकाऊ-जुवोई', 'कोल', 'केडे', 'जेरु', 'चारीयार', 'चोकिओ', 'कारामा' इन अलग-अलग समूहों में निवास करती थी। इन अलग-अलग प्रजातियोंके रहन-सहन,रीति-रिवाजों में काफी समानता होने के कारण अंग्रेज अध्ययनकर्ताओं ने इन सारी प्रजातियों के समूहका नामकरण 'ग्रेटअंडमानी' किया था लेकिन अब इन्हें केवल 'अंडमानी'नाम से जाना जाने लगा है।

अंडमानीपुरुषों का कद 4 फीट 10 इंच तथा औरतों का कद 4 फीट 6 इंच तक होता है। रंग काला तथा बाल घुंघराले होते हैं। ये आदिवासी जंगली सूअर, मछली तथा कछुए का मांस खाते हैं। नाव-निर्माण के कार्य में वे निपुण होते हैं। ये लोग पितृसत्तात्मक परिवार वाले होतेहैं। विवाह के पश्चात पत्नी भोजन पकाना, पानी भरना, सीपियाँ जुटाना इत्यादि घरेलू जिम्मेदारियां निभाती है। शिकार करना, झोपड़ियाँ सँवारना तथा घर की जरूरतों की आपूर्ति

करने का काम पुरुष करता है। बुजुर्ग तथा महिलाओं का आदर करना इनकी परंपरा रही है। इनके हर समूह का एक मुखिया होता है जिसका सभी आदर करते हैं और उसके आदेशों का पालन करते हैं। वे 'पुलगा' नामक देवता की पूजा करते हैं। जो किसी ऊँची पहाड़ी पर बसे हैं ऐसी इनकी मान्यता है। मृत्यु के पश्चात मृतक को दफनाने का चलन हैं। कुछ दिनों बाद वे मृतक की हड्डियाँ निकालकर उन्हें आभूषण की तरह पहना करते हैं। इनकी भाषा की कोई भी लिपि नहीं है इसलिये इन्होने देवनागरी लिपि तथा हिंदी भाषा को अपनाया है। अंडमान द्वीप समूह कीयह एकमात्र आदिम जनजाति है जो आधुनिक मानव सभ्यता में घुलमिल गयी है। सन् १८५८ तक इस प्रजाति की सर्वाधिक जनसंख्या थी।

इसी समय अंग्रेज इन द्वीपों में दाखिल हुए। अंग्रेजों के पूर्व इन द्वीपों में लाया तथा सियाम के समुद्री दस्युओं का आतंक था जो अंडमानी आदिवासियों को गुलामों की तरह इस्तेमाल किया करते थे। अतः विदेश से आये सभ्य मानव से उन्हें नफरत हो गयी थी। कैदियों की बस्तियां बसाने आये अंग्रेजों का भीउन्होंने जमकर विरोध किया। अंग्रेजों की घुसपैठ रोकने की वे पुरजोर कोशिश करते रहे, अंग्रेजों से लड़ते-झगड़ते मौत को गले लगाते रहे। इस प्रयास में कई आदिवासी मारे गये। अंग्रेजों द्वारा इन आदिवासियों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयत्न भी किये गये और कुछ हद तक सफल भी हुए लेकिन इस प्रक्रियामें 'अंडमानी' अपनी मौलिकता खो बैठे।

## ॲबर्डीन युद्ध

अंग्रेजों को स्थायी रूप से खदेड़ने के उद्देश्य से मई 1859 के बीच अंडमानी आदिवासियों ने अंग्रेजों के मुख्यालय पर हमला करने की योजना बनायी। जिसे सफल बनाने के लिएतीर-कमान, भाला-बरछा जैसे हथियार लेकर अलग-अलग टीलों से भारी संख्या में आदिवासी इकठ्ठे हुए। अंग्रेज इस बात से बेखबर थे, लेकिन'दूधनाथ तिवारी' नामक एक गद्दार फरार कैदी ने यह खबर अंग्रेजों तक पंहुचा दी । दूधनाथ काले पानी की सजा भुगत रहा था। एक दिन वह अन्य 90 कैदियों के साथ जेल से भागने में कामयाब तो हुआ किन्तु अंदमान के घने जंगलों से वे सब बाहर नहीं निकल सके। आदिवासियों ने दूधनाथ के सभी सथियों को मौत के घाट उतार दिया लेकिन दूधनाथ पर तरस खाकर उसे जीवित रखा तथा उसे पनाह दी। उसे अपने कबीले का एक सदस्य बनाया। आदिवासियोंके एक मुखिया ने अपनी दो बेटियों के साथ उसका विवाह भी कर दिया था।
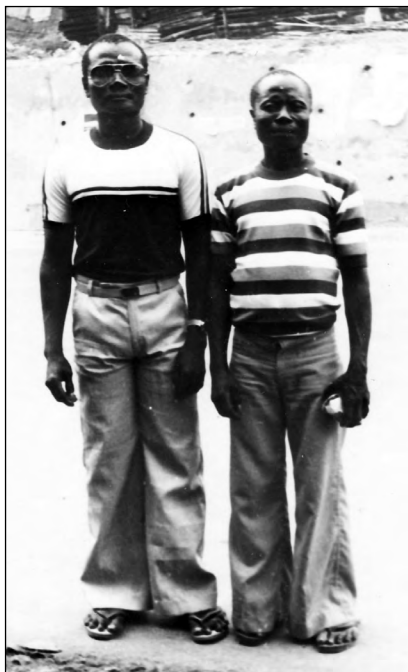
**अंडमानी आधुनिक कपड़ों में**

17 मई 1859 को अंडमानी आदिवासियों ने ॲबर्डीन स्थित अंग्रेजों के मुख्यालय पर हमला किया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। हथियारबंद सैनिकों ने सैकड़ों आदिवासियों को गोलियों से भुन डाला। हमले की पूर्व सूचना के कारण अंग्रेज सेना पूरी तरह तैयार हो गयी थी। एक सभ्य मानव को पनाह देने की सजा इन आदिवासियोंको भुगतनी पड़ी। अंडमान के इतिहास में यह युद्ध 'ॲबर्डीन युद्ध' के नाम से मशहूर है। इसे अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों द्वारा लड़ा गया था जिसे स्वतंत्रता संग्राम भी कहा जाता है। इस युद्ध के स्मरणार्थ पोर्ट ब्लेयर शहर में एक स्मृति-स्तम्भ स्थापित किया गया है,जहां आज भी हर साल 17 मई को सरकार द्वारा शहीद आदिवासियों को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है।

## बीमारी का फैलना

इस युद्ध के पश्चात उन्होंने अंग्रेजों के प्रति नरम रुख अपनाना शुरू किया। अंग्रेजों ने भी उनसे मित्रता के उद्देश्य से'संपर्क अभियान' प्रारंभ किया तथा उन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास किया। सन् १८६५-७० के आस-पास'अंडमान होम' की योजना बनायी गयी। जिसके तहत इन आदिवासियों के लिए लकड़ी के घर बनाये गये तथा खाने-पीने की चीजें एवं पहनने के लिए कपड़े उपलब्ध कराये गये। खाने-पीने के लोभ में कई आदिवासी यहां आने लगे।

अंग्रेजों के संपर्क में आने के बाद वे कुछ मात्रा में वे कपड़े भी पहनने लगे किन्तु मुक्त वातावरण में पले इन आदिवासियों को कपड़े से एलर्जी तथा त्वचा की बीमारी होने लगी। सभ्य मानवों की तरह खान-पान से बदहजमी होने लगी। उन्हें तंबाकू खाने तथा शराब पीने की लत भी लगने लगी। 'अंडमान होम' बनाने के पश्चातइनका सम्पर्क 'अंडमान होम' के कर्मचारी, सैनिक तथा मुक्त कैदियों से होने लगा। इनमें यौन संबध भी स्थापित होने लगे थे जिसके चलते आदिवासियों में सिफलिस जैसे गुप्त रोग का फैलने लगा। बीमारी की अज्ञानता व उचित दवाई के अभाव में कई आदिवासियों की मृत्यु हो गयी। अन्य रोगों के साथ ही चेचक की बीमारी ने भी उन्हें दबोच लिया। सन् 1876-78 के बीच इस बीमारी से आदिवासियों की करीब-करीब आधी आबादी तबाह हो चुकी थी। इसी तरह धीरे-धीरे इनकी आबादी घटती गयी।

एक जमाने में पूरी तरह नग्नावस्था में जीनेवाले यह आदिवासी आजकल आधुनिक कपड़ों में नजर आने लगे हैं।अब वे गैर-आदिवासियों सें भी विवाह करने लगे हैं। इनकी घटती हुई संख्या को देख, भारत सरकारने इनकी सुरक्षा के लिए पोर्टब्लेअर

से करीबन 125 कि.मि. दूर 'स्ट्रेट आयलैंड' नामक द्वीप पर इनका पुनर्वसन किया है जहां प्राथमिक स्कूल तथा स्वास्थ्य केंद्र की सुविधा उपलब्ध है। इन्हें आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सरकार द्वारा की जाती है। व्यसनाधीनता और बीमारियों के कारण इनकी संख्या में भारी गिरावट आयी है। हालही में हुई जनगणना के अनुसार सर्वाधिक जनसंख्या वाले ग्रेट अंडमानियों की संख्या अब केवल 43 ही रह गयी है।

## ओंगी

'ओंगी' यह भी नेग्रिटो मूल की आदिम जनजाति है जो 'लिटिल अंडमान' द्वीप में पायी जाती है। साधारण तया ओंगी पुरुषों का कद 5 फीट तथा औरतों का कद 4 फीट 5 इंच तक होता है। रंग निग्रो जैसा काला तथा बाल घुंघराले होते हैं। इनका सर गोलाकार, मुख तथा नाक चौड़ा होता है। इनकी शक्ल-सूरत अफ्रीका के पिग्मी जनजाति से मेल खाती है। कुछ वैज्ञानिक इन्हें एशियाई आदिवासियों का वंशज होने का दावा करते हैं। ओंगी पुरुष लंगोट पहनते हैं तो स्त्रियाँ कमर के नीचे पत्तियां बांधती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों अपने-अपने शरीर परलाल, सफेद मिट्टी का लेप लगाते हैं। ओंगी आदिवासी जंगली सूअर, मछली तथा कछुए का मांस खाते हैं। कंद, जंगली फल तथा शहद इकठ्ठा कर उसका सेवन करते हैं। काफी कम उम्र में ही इनकी शादियाँ हो जाती हैं। कई बार लड़कियों की11-12 साल की उम्र में ही शादी कर दी जाती है। अपने ही वंश, गोत्र या कबीले में इनकी शादियाँ नहीं होती। अक्सर दूर-दराज के गांवों में शादियाँ तय होती हैं। कभी लड़की, लड़के के घर चली जाती है तो कभी लड़का, लड़की के घर चला आता है। बहुत ही साधारण तरीके से शादी की रस्म निभायी जाती है। पति,पत्नि और अविवाहित बच्चों का एक परिवार होता है। शादी के बाद बच्चे अलग गृहस्थी बसाने लगते हैं।

ओंगी महिला बच्चे के साथ

करीबन सात-आठ परिवार एक बड़ी झोपड़ी में साथ-साथ निवास करते हैं। हर परिवार की सोने की व्यवस्था अलग-अलग तथा सुनिश्चित होती है। सात-आठ झोपड़ियों का समूह एक गाँव बनता है। गाँव में चारो तरफ झोपड़ियाँ और बीच में बड़ा आँगन होता है। इस आँगन का उपयोग सामूहिक नृत्य तथा भोजन के लिए किया जाता है। इनके समाज में विधवाओं को निकृष्ट माना जाता है। यह लोग मृत्यु के पश्चात मृतक को दफन करते हैं तथा नृत्य कर अपना शोक प्रकट करते हैं।

## अंग्रेजों से मुठभेड़

ग्रेट अंडमानियों की तरह ओंगियों ने भी अंग्रेजों की घुसपैठ का जमकर विरोध किया तथा उन पर हमले भी किये। अंग्रेजोंने अंडमान द्वीप पर सन् 1858 से ही कैदियों की बस्तियां बसाना शुरू किया था लेकिन सन 1867 तक अंग्रेजों को ओंगियों के बारे में जानकारी नहीं थी न तो वे 'लिटिल अंडमान' द्वीप पर पंहुचे थे। सन 1857 को किये गये सर्वेक्षण के अनुसार बंदरगाह के लिए उचित जगह न होने के कारण इस द्वीप

ओंगी परिवार

को नजर अंदाज कर दिया गया था। 1867 की एक घटना के बाद उनका ध्यान 'लिटिल अंडमान' की ओर आकृष्ट हुआ।

अप्रैल १८६७ में 'आसामवॅली' नामक जहाज द्वीप के सर्वेक्षण तथा आदिवासियों की जानकारी लेने 'लिटिल अंडमान' पंहुचा था। वह लंगर डालकर किनारे खड़ा थापर जहाज के कप्तान एवं कर्मी दल का कोई अता-पता नहीं था। इस घटना की खबर जब पोर्ट ब्लेयर के मुख्यालय में पहुंची तो अंग्रेजों ने कमांडर ब्रोकर को कुछ साथियों के साथ वहां भेजा लेकिन समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरों के चलते उन्हें वापस लौटना पड़ा। दूसरे ही दिन लेफ्टिनेंट डंकन के नेतृत्व में एक दल कुछ ग्रेट अंडमानियों को साथ लेकर 'आसामवॅली' के लापता कप्तान तथा कर्मी दल की तलाश में निकल पड़ा। यह दल लिटिल अंडमान द्वीप पहुंचा ही था कि उसे ओंगियों के तीरों की बौछारों का सामना करना पड़ा। हवा में गोलीबारी

करते हुए वे अपनी जान बचाकर वापस आ गये। किनारे पर आदिवासियों की भारी संख्या देखकर उन्हें यह अंदेशा हो गया था कि 'आसामवॅली' के कप्तान तथा उसके साथियों को ओंगियों ने मौत के घाट उतार दिया होगा।

इन प्रयासों के बाद अंततः'लेफ्टिनेंट मच' की निगरानी में 'आराकान मुहिम' का आयोजन किया गया। जिसके तहत 17 मई 1867 को 'आराकन' नामक नौसेना का जहाज हथियार बंद सैनिकों को साथ लेकर लिटिल अंडमान पहुंचा। जहाज को देखते ही किनारे पर भारी संख्या में आदिवासी इकठ्ठा हो गये। उन्होंने तीर-कमान से अंग्रेज सैनिकों पर हमलाकर दिया लेकिन उन पर इसका असर नहीं हुआ क्यों कि वे भी गोलीबारी करते हुए किनारे पहुंच ही गये। गोलीबारी में कई ओंगियों की मौत हुई। उनके तीर भी खत्म हो चुके थे। बचे हुए आदिवासी जंगल में भाग गये। खोजबीन के बाद आसामवॅली के लापता कर्मचारियों के कंकाल अंग्रेज सैनिको के हाथ लगे।

'आराकन'सैनिक दल वापसी की तैयारी में था लेकिन समुद्री उफान के चलते उन्हें जहाज तक पहुँचने में ऊँची-ऊँची फेनिल लहरों का सामना करना पड़ा। इस आपाधापी में ग्लासफोर्ड नामक अधिकारी की समुद्र में डूब कर मौत हो गयी। अन्य सभी अधिकारी किसी तरह बच गये। इस मुहिम में कई आदिवासियों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इसे एक सफल अभियान मान करलेफ्टिनेंट 'मच' तथा उसके साथियों को 'विक्टोरिया क्रॉस' नामक वीरता सम्मान से नवाजा गया।

सन 1871 के बाद अंडमान के पर्यवेक्षक मेजर जनरल स्टिवर्ट ने ओंगियों से मित्रता बनाने की कोशिश की लेकिन उन लोगों ने कोई तवज्जो नहीं दी। 1873 में एक बर्मी जहाज के कुछ कर्मियों की ओंगियों ने हत्या कर दी। जिसकी खबर लेने स्टिवर्ट का दल लिटिल अंडमान पहुंचा था। उनके पहुंचते ही ओंगियों ने उन पर हमला कर दिया जिसमें एक अंग्रेज मारा गया। इससे क्रोधित होकर स्टिवर्ट ने गोलीबारी का आदेश दिया और ओंगियों को भुन डाला।

इसके बावजूद सन 1874 में स्टिवर्ट ने फिर एक बार उनसे संपर्क साधने का प्रयास किया लेकिन आक्रामक ओंगियों ने उन पर हमला कर दिया जिसमें एक अंग्रेज की मृत्यु हो गयी। इस तरह की कई मुठभेड़ों के बाद भी उन्होंने लिटिल अंडमान पर कब्जा करने नहीं दिया।

धीरे-धीरे ओंगियों की आक्रामकता खत्म होती गयी। शायद अपने असंख्य साथियों की मौत के कारण वे सहम गये थे। सन 1880 के करीब पोर्टमैन नामक एक अधिकारी के प्रयास से वे सभ्य समाज की मुख्य धारा से जुड़े लेकिन सभ्य मानवों से संपर्क उनके लिए अभिशाप ही साबित हुआ। उन्हें कई संक्रामक बीमारियों ने घेर लिया जिसके चलते अनेक ओंगियों की मौत हो गयी। अंग्रेजों के बनाये गये 'अंडमान होम' तथा कैदियों के संपर्क से वे बचते रहे इसलिये सिफलिस जैसी यौन बीमारी से बचे रहे लेकिन हैजा व चेचक जैसी बीमारियों से उनकी मौत होती रही। इसी कारण उनकी संख्या दिन-ब-दिन घटती गयी।

अब ओंगी पूरी तरह सभ्य मानवों की तरह आपना जीवन व्यतीत करने लगे हैं। 'आदिवासी विकास योजना' के तहत बचे-खुचे ओंगियों को 'डूगॉग क्रिक' और 'साउथ बे' इलाके में बसाया गया है। सरकारी योजना के तहत उन्हें राशन तथा खान-पान सामग्री की आपूर्ति की जा रही है। सभ्य समाज की बस्तियों के अतिक्रमण से नष्ट होते जंगलों के कारण वे शिकार करना तथा जंगलों से फल, कंद, शहद संग्रहित करने की परंपरागत आदतें छोड़ चुके हैं। मुफ्त सरकारी अनाज और मासिक भत्ते की सहायता के कारण वे निरुद्यमी हो चुके हैं। हाल ही की जनगणना के अनुसार अब इनकी संख्या केवल 96 ही रह गयी है।

## 'सेंटिनिल'

'सेंटिनिल' यह अंडमान द्वीप समूह के सघन जंगलों की यायावर जनजाति है। यहभीनेग्रिटो मूल की मनुष्य-द्वेषी तथा खूंखार आदिम जनजाति है जो आज तक आधुनिकता से बेखबर है। यह सभ्य मानवों को अपना जानी दुश्मन मानती है और उनके संपर्क में आना भी नहीं चाहती। ये लोग किसी को भी अपने पास फटकने नहीं देते तथा अपरिचित आगंतुकों पर तीर से हमला कर उसे जान से मार डालते हैं। घने जंगलों के बीच रहने के कारण यह आदिवासी आसानी से किसी को नजर नहीं आते।

अब तक ये सब पूर्णतः नग्नावस्था में ही विचरण करते हैं। उनकी औरतें पेड़ों से निकले रेशे का गुच्छा कमर में बांधती हैं। अंडमानियों की तरह वे हड्डियों के आभूषण नहीं पहनते किन्तु गले तथा हाथों में सीपियों की माला पहनते हैं। अपने बदन पर वे चित्रकारी नहीं करते बल्कि पीली मिट्टी का लेप लगाते हैं।

तीर-कमान इनका मुख्य शस्त्र है। अन्य जनजातियों की अपेक्षा इनके तीर

अंडमान ट्रंक रोड पर उतर आए जारवा

बहुत लंबे तथा कमान बड़ी और अधिक गोलाकार होती है। तीर कमान से ही वे मछली मारते हैं। सभ्य समाजसे बचे रहने के कारण इनकी जीवन-शैली के बारें में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि, यह जारवा आदिवासियों की ही एक प्रजाति है जो पहले 'रटलैंड द्वीप' में रहा करती थी।

शिकार की खोज में भटकते-भटकते ये जारवाओं से अलग होकर 'नार्थ सेंटिनिल' द्वीप में आब से इसलिये अंग्रेजों नेइनको'नार्थ सेंटिनिल' नाम दिया। अब इस जनजाति को केवल 'सेंटिनिल' कहा जाता है।

अंग्रेजो ने कई बार इनसे संपर्क करने के प्रयास किये लेकिन असफल रहे। 1967 के बाद अंडमान प्रशासन ने भी अनेक बार इनसे संपर्क करने का प्रयत्न किया लेकिन विफलता ही हाथ लगी। इनकी घुमक्कड़ी आदतों के कारण इनकी गणना भी मुश्किल है लेकिन इनकी अनुमानित जनसंख्या अब केवल ३९ के आसपास ही बतायी जाती है।

## जारवा

अंदमान के सघन जंगलों में निवास करती 'जारवा' , भी एक खूंखार तथा खतरनाक आदिम जनजाति है। जारवा दक्षिण और मध्य अंडमान के पश्चिमी तट पर निवास करते हैं। यह भी एक शिकारी तथा खाद्य-संग्रह करने वाली यायावर जनजाति है। इनका जीवन जंगल एवं समुद्री संसाधनों पर निर्भर है। अन्य जनजातियों की भांति तीर-कमान ही इनका मुख्य शस्त्र है। सभ्य समाज तथा अंडमान की अन्य जनजातियों को वे अपना दुश्मन मानते हैं। द्वीपों में अंग्रेजों के आगमन के समय वे ग्रेट अंडमानियों के साथ पोर्ट ब्लेयर के निकट निवास करते थे। ग्रेटअंडमानियों की अंग्रेजों से निकटता उन्हें रास नहीं आयी। अतः वे स्थानांतरित हो गये तथा अंग्रेजों और ग्रेट अंडमानियों को अपना दुश्मन समझने लगे। जापानियों ने भी अपने शासन-काल में जंगलों में बमबारी कर अनेक जारवाओं को मार डाला। सभ्य समाज से दूर भागते रहने के कारण उनकी जीवन-शैली की जानकारी प्राप्त नहीं होती। अब उनके बारे में थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त होने लगी है।

जारवाओं का कद पांच से साढ़े पांच फीट के आसपास होता है। बदन गठीला और रंग काला होता है। पूरी तरह नग्नावस्था में विचरण करने वाले यह आदिवासी चेहरे पर मिट्टी का लेप लगाकर अपना चेहरा सजाते हैं। गले में तथा हाथों में सीपियों की एवं जंगली फूलों की माला पहनते हैं। वे अव्वल दर्जे के शिकारी होते हैं। घर का युवक जब तक शिकार में माहिर नहीं होता तब तक वे उसे शादी योग्य नहीं मानते। हिरन उनका प्रिय प्राणी है इसलिये वे उसका शिकार नहीं करते। उनकी बस्तियों के आस-पास बड़ी संख्या मे हिरन पाये जाते हैं। संयुक्त परिवार में वे विश्वास रखते हैं तथा बड़ों का आदर करते हैं। उनकी औरतों को वनौषधियों की अच्छी जानकारी होती है। बाहरी 'और अवैध संबंधों को वे पाप-अधर्म समझते हैं। अंडमान की बची-खुची

आदिम जनजातियों में सर्वाधिक जनसंख्या जारवाओं की है। हाल ही की जनगणना के आधार पर उनकी अनुमानित संख्या करीबन 300 से 350 के आस-पास बतायी जाती है।

## जारवाओं का आरक्षित जंगल

जारवाओं की आक्रामकता व क्रूरता से सभी आतंकित थे। अंग्रेजों के कई प्रयासों के बावजूद उन्होंने मित्रता का हाथ नहीं बढ़ाया। उनके इस रवैये को देख अंग्रेजों ने भी उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया। स्वतंत्रता के बाद उनकी आक्रामकता अधिक तीव्र होती गयी। भारत सरकार ने सन् 1947 के बँटवारे के बाद पूवी पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों को इनके जंगलों में बसाना शुरू किया। इससे क्रोधित होकर वे शरणार्थियों की बस्तियों पर हमला करने लगे। इसके बाद अनेक वारदातें हुईं जिसमें कुछ शरणार्थी और अनेक जारवाओं ने अपनी जान गँवायी। इन हालातों को देख कर सरकार ने सन 1956 में मध्य और दक्षिण अंदमान के 750 कि.मी. जंगल को जारवाओं के लिए आरक्षित कर दिया। जारवाओं तथा शरणार्थियों की सुरक्षा के लिए‘बुश पुलिस’ नामक विशेष पुलिस दल बनाया गया। जंगल के चौतरफा १४ चौकियों का निर्माण कर वहाँ ‘बुश पुलिस’ तैनात कर दी गयी। इस सुरक्षा के बावजूद शरणार्थियों के इलाके में जारवा घुसकर हमले करते ही रहे।

## जारवासंपर्क अभियान

सन् 1952 से ही जारवाओं से संपर्क कर उन्हें मानवी सभ्यता से रू-ब-रू कराने के प्रयास जारी थे। ‘बुश पुलिस’ तथा ‘आदिम जन-जाति विकास समिति’ द्वारा संपर्क अभियानों का आयोजन किया जा रहा था। उन्हें उपहार देकर लुभाने के कई प्रयास नाकाम होते रहे।

अनेक प्रयासों के बाद 1974 में मध्य अंदमान के पश्चिमी समुद्री तट पर उन्होंने पहली बार नारियल और केले का उपहार स्वीकार किया। इसके बाद सरकारी योजना के तहत निरंतरसंपर्क अभियान चलते रहे। नग्न आदिवासियों को देखने की लालच के चलतेअधिकारी तथा कर्मचारियों में इस अभियान में शामिल होने की होड़ मच-सी गयी।

कई शौकीन अधिकारी अपने दोस्त, पत्नी तथा परिवार सहित इसमें शामिल होने लगे थे। आदिवासियों के लिए आबंटित धन राशि में भ्रष्टाचार होने लगा। निम्न गुणवत्ता की उपहार सामग्री आदिवासियों में बँटने लगी। वह सरकारी योजना ही क्या जिसमें भ्रष्टाचार न हो? अतः कुछ दिनों बाद यह योजना समेटली गयी लेकिन इस अभियान से वे सभ्य समाज के संपर्क में आ ही गये।

## ‘अंडमानट्रंक रोड’ जारवाओं के लिए अभिशाप

स्वतंत्रता के बाद शरणार्थियों के साथ-साथ भारत की मुख्य भूमि से भी अनेक लोगों को लाकर यहां बसाया जाने लगा। उत्तर, मध्य और दक्षिण अंडमान में नयी-नयी बस्तियां बसने लगीं तथा जनसंख्या में वृद्धि होने लगी। उन दिनों द्वीपों की यातायात व्यवस्था केवल समुद्री मार्ग तक सीमित थी। बरसात के मौसम में समुद्री तूफान के कारण यातायात व्यवस्था ठप्प हो जाती थी। यातायात की इस समस्या को हल करने के उद्देश्य से सरकार ने उत्तरी तथा दक्षिणी अंडमान को जोड़ने वाली एक सड़क का निर्माण करने की योजना बनायी। 343 कि.मी. लंबी इस सड़क का नाम ‘अंडमानट्रंक रोड’ रखा गया, जिसका निर्माण कार्य 1970 में प्रारंभ हुआ।करीबन 18 साल के बाद 1988-89 में यह रास्ता यातायात के लिए पूरी तरह तैयार हुआ।

यह सड़क जारवाओं के आरक्षित जंगल का विभाजन करते हुए गुजर रही थी। रास्ते के निर्माण हेतु लायी गयी मशीनें, बड़े-बड़े ट्रक और अन्य औजारों से जंगल की शांति भंगहुई। भारी मात्रा में पेड़ काटे गये। सड़क निर्माण हेतु बाहर से मजदूर लाये गये। मजदूरों की अस्थायी बस्तियां जंगल में बसायी गयीं जिन्हें पुलिस सुरक्षा प्रदान की गयी थी। गौरतलब है कि सड़क निर्माण कार्य समाप्ति के पश्चात यह बस्तियां स्थायी रूप से यहीं बस गयीं तथा बाद में वह गाँव बन गया। इस सड़क निर्माण से जारवाओं का एकांतवास भंग हो गया। उपनिवेशी जंगलों में घुस कर हिरन तथा अन्य प्राणियों का शिकार करने लगे थे। हिरन जो उनके प्रिय प्राणी थे उनके शिकार से वे व्यथित व क्रोधित हो जाते थे।

जंगलों के इर्द-गिर्द आबाद होती अन्य बस्तियों से आतंकित जारवा इस सड़क निर्माण कार्य से अधिक क्रोधित हो उठे। उन्होंने इस काम को रोकने का भरपूर प्रयास किया। विरोध प्रकट करते हुए उन्होंने मजदूरों तथा सुरक्षा कर्मियों पर कई बार हमले किये। कई मजदूर मारे गये। पुलिस की गोलीबारी में अनेक जारवाओं की भी मौत हुई। अंत में सड़क निर्माण कार्य रोकने

**पर्यटन की दृष्टि से अंडमान विकसित होने लगा। ‘अंडमानट्रंकरोड’ पर आवाजा-ही बढ़ने लगी। सैलानियों का तांता लगने लगा। यह रास्ता जारवाओं के आरक्षित जंगल में घुसने का महामार्ग ही बन गया। ‘जारवासंपर्क अभियान’ का समापन होचुका था। उनके संरक्षित जंगलों के इर्द-गिर्द बस्तियां बढ़ने लगीं। जंगल कटता गया अतः शिकार की कमी महसूस होने लगी। संपर्क अभियान में बँटने वाले फलों का उपहार भी मिलना बंद हो गया था। जंगल में खाने-पीने की चीजों के अभाव में वेआस-पास के गांवों में घुसकर नारियल, केले तथा अन्य फलों की चोरी करने लगे।जिसमें पुलिस की गोलियों का खतरा था।**

**जारवाओं के संरक्षित इलाके में आसानी से घुसना संभव नहीं था। अंडमान ट्रंक रोड ने उन तक पहुंचने के सारे रास्ते खोल दिये थे जो उनके सर्वनाश का कारण बना।**

की उनकी कोशिशें नाकामयाब हो गयीं। आखिरकार बंदूकों की नोक पर रास्ते का काम पूरा किया गया।

सम्पर्क अभियान चलाया ही जा रहा था लेकिन जारवाओं की आक्रामकता में कोई कमी नहीं आयी। ट्रंक रोड पर यातायात प्रारंभ हुई तो जारवा आते-जाते वाहनों पर आक्रमण करने लगे। शुरूआती दौर में अधिकतर राज्यपरिवहन की बसें ही इस रास्ते पर चलायी जाती थीं। बंदूकधारी पुलिस की निगरानी में ही इन बसों को चलाया जाता था। इनके इलाके से गुजरते हुए दो बसों को एक साथ छोड़ा जाता था जिसमें आगे-पीछे बंदूक धारी पुलिस तैनात होती थी। सन 1991 में राज्य परिवहन की बस से सफर करते हुए मैंने स्वयं इसका अनुभव किया है। इसरास्ते की मरम्मत का काम भी पुलिस की निगरानी में होते हुए देखने का मुझे अवसर मिला है।

पर्यटन की दृष्टि से अंडमान विकसित होने लगा। 'अंडमानट्रंकरोड' पर आवाजाही बढ़ने लगी। सैलानियों का तांता लगने लगा। यह रास्ता जारवाओं के आरक्षित जंगल में घुसने का महामार्ग ही बन गया। 'जारवासंपर्क अभियान' का समापन होचुका था। उनके संरक्षित जंगलों के इर्द-गिर्द बस्तियां बढ़ने लगीं। जंगल कटता गया अतः शिकार की कमी महसूस होने लगी। संपर्क अभियान में बँटने वाले फलों का उपहार भी मिलना बंद हो गया था। जंगल में खाने-पीने की चीजों के अभाव में वेआस-पास के गांवों में घुसकर नारियल, केले तथा अन्य फलों की चोरी करने लगे।जिसमें पुलिस की गोलियों का खतरा था। इन परिस्थितियों में जारवा जब 'अंडमान ट्रंक रोड' पर आने लगे तब सैलानियों के वाहन रोककर उनसे खाने-पीने की चीजों की मांग करने लगे। सैलानी भी गाड़ियाँ रोक कर निर्वस्त्रन आदिवासियों को उत्सुकता से देखते रहते थे। कई पर्यटन प्रतिष्ठान वन्यव प्राणियों की तरह दुर्लभ निर्वस्त्रि मानव प्रजातियों को दिखाने तथा उनसे रू-ब-रू मिलवाने के विज्ञापन भी करने लगे थे। जारवा जैसी दुर्लभआदिम जनजाति को नुमाइश की वस्तु मानकर उनका शोषण करना अमानवीयता की चरम सीमा ही है।

जारवाओं का बाहरी व्यक्तियों से संपर्क बढ़ता गया। अनेक वर्षों से प्राकृतिक परिवेश में जीवनव्यतीत करने वाले आदिवासियों के खान-पान में भी बदलाव आने लगा। उन्हें तमाखू, सिगरेट की लत भी लगने लगी। उन्हें कई संक्रामक बीमारियाँ होने लगीं। सन् 1999 में चेचक फैल गया। इस बीमारी से अनेक जारवाओं की मौत हो गयी।

जारवाओं के संरक्षित इलाके में आसानी से घुसना संभव नहीं था। अंडमान ट्रंक रोड ने उन तक पहुंचने के सारे रास्ते खोल दिये थे जो उनके सर्वनाश का कारण बना। अर्थात अंडमान को आबाद करने वाला 'अंडमान ट्रंक रोड' जारवाओं के लिए अभिशाप ही साबित हुआ।

## जारवा सुरक्षा कानून

इन सारी परिस्थितियों को देख सन् 1999 में जारवाओं की सुरक्षा को लेकर अंडमान स्थित एक वकील ने कोलकाता उच्च न्यायालय मे जनहित याचिका दायर की। सन 2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने जारवाओं के जंगल से गुजरने वाले 'अंडमान ट्रंक रोड' को बंद करने का आदेश दिया था परन्तु यातायात का कोई विकल्प न होने के कारण यह रास्ता बंद नहीं हो सका। सन् 2007 में प्रशासन द्वारा आदिवासी आरक्षित जंगल के इर्द-गिर्द 5 कि. मी. का प्रतिरोधक घेरा बना दिया गया जिसमें प्रवेश करना वर्जित है।

इन सुरक्षा कानूनों के बावजूद भी सन् 2012में विदेशी सैलानियों ने अर्ध नग्न जारवा लड़कियों का विडियो तैयार किया था जिसका जिक्र लेख के प्रारंभ में किया गया है। इस घटना के बाद प्रशासन चौकन्ना हो गया। केंद्र सरकार ने पुराने आदिवासी संरक्षण कानून में संशोधन कर दिया है। अब नये कानून के अनुसार'जारवा आदिवासी सुरक्षित क्षेत्र' के आस-पास 5 कि.मी. के दायरे में पर्यटन करना अपराध माना गया है। इस इलाके में विडियो या फोटोग्राफी करना भी अनधिकृत माना गया है तथा नशीले पदार्थों को साथ रखना व सेवन प्रतिबंधित है।

आदिवासियों के छायाचित्रों का प्रदर्शन अथवा होर्डिंग लगाने पर भी पाबन्दी है। इस कानून का पालन न करने पर सात साल की सजा और दस हजार रुपये तक के जुर्माने का प्रावधान है। इन सुरक्षा नियमों के बावजूद सन् 2014 में फ्रांस के दो फिल्मकारों ने गुप्त तरीके से जंगल में घुसकर जारवाओं पर एक डॉक्यूमेंट्री तैयार की। इन दोनों के खिलाफ 'जारवा' संरक्षित इलाके में जबरन दाखिल होने के आरोप में मामला दर्ज किया गया है लेकिन वे अब तक गिरफ्त से बाहर हैं।

जारवा जैसी दुर्लभ आदिम प्रजातियों को सुरक्षित रखना तथा उनको प्राकृतिक रूप से जीने का अवसर देना सरकार का प्रथम कर्तव्य है। कड़ी कानून व्यवस्था के बावजूद आदिवासियों के प्रति हमारे दृष्टिकोण में बदलाव लाने की आवश्यकता है। अन्यथा वह समय दूर नहीं जब अभिशप्त जीवन व्यतीत करते यह आदिवासी धरातल से पूरी तरह जल्द ही मिट जायेंगे।

**– किरण वाडीवकर**
मोबाईल : 9324845454
kiranwadivkar@gmail.com

डॉ. देवरिया उन्मेष

**मौलिक प्रखरता के अभाव में जो लोग मूल्यानुगत पत्रकारिकता के दौर में लगातार दोयम दर्जे के सिद्ध होते रहे, वे कालांतर में किसी विज्ञापन एजेंसी, अखबार के विज्ञापन विभाग या किसी औद्योगिक अथवा सरकारी संगठन में जनसंपर्क अधिकारी बनकर, धृतराष्ट्रों के बीच तिर्यक राजा के रूप में प्रतिष्ठित होते रहे हैं।**

# संता - बंता पत्रकारिकता और खुशवंत सिंह

खुशवंत सिंह का संबंध भारत में परवान चढ़ी अंग्रेजी पत्रकारिकता की उस पीढ़ी से है जिसके अधिकांश सदस्यों की जीवनी में एक वाक्य साझा तौर पर शामिल रहता था। 'स्वतंत्रता आंदोलन और गांधीवादी आदर्शों की खातिर वे पत्रकारिता से जुड़े।' यह संयोग नही है कि उनकी पत्रकारिता के मूल में ऐसी कोई आदर्शवादी प्रेरणा नहीं थी। पत्रकारिता की मुख्यधारा से उन्हें अलग करने वाली दूसरी बात यह थी कि उनके संपादन में 'इलस्ट्रेटेड वीकली' उस अर्थ में न्यूज-एंड-व्यूज वीकली नहीं रह गई जिस अर्थ में 'टाइम' और 'लाइफ' जैसी पत्रिकाओं में आज भी उक्त श्रेणी में मान्य किया गया है। मूलतः टाइम्स ऑफ इंडिया के साप्ताहिक संस्करण के रूप में प्रकाशित 'वीकली', को 1923 से The Illustrated Weekly नाम से एक पृथक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होने लगी। ब्रिटिश पत्रकार, मिस्टर सीन मंडी इसके पहले संपादक थे जबकि श्री ए. एस. रमन प्रथम भारतीय संपादक। जब खुशवंत सिंह ने तीसरे संपादक के रूप में कार्य संभाला तब पत्रिका की प्रसार संख्या 65000 थी जिसे उन्होंने चार लाख तक
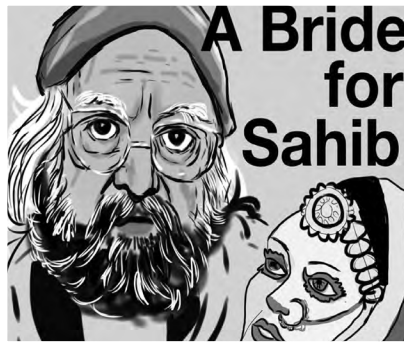
पहुंचाया (1969- 1978)। यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी किंतु इसके लिए Illustrated Weekly को The Il- Iust -treated Weekly बनाना पड़ा।

पूर्वोक्त दो कारणों के अलावा एक और कारण है जो उस दौर की पत्रकारिकता से खुशवंत सिंह को अलग करता है- दैनिक अखबार में यह अनिवार्य है कि बीस तारीख के घटनाक्रम पर इक्कीस तारीख के अंक में तथ्यात्मक विवरण के अलावा त्वरित टिप्पणी या अग्रलेख प्रकाशित हो। साप्ताहिक अखबार अथवा पत्रिका के संपादक को यह सुविधा रहती है कि पिछले छः दिनों के दौरान प्रकाशित सभी महत्वपूर्ण अखबारों के अग्रलेख और टीका-टिप्पणियां उसे उपलब्ध रहती हैं जिन्हें वह अपने शब्दों में दोहरा सकता है। साहित्यिक / अर्ध-साहित्यिक / अथवा महिलोचित पत्रिकाओं में काम और आसान है- वहां इस तरह के कलेवर की जरूरत ही नहीं पड़ती। नतीजतन, हम पाते हैं कि 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के संपादक पद से सेवानिवृत्ति होने तक, अकादमिक तौर पर पत्रकार के रूप में, उन्हें वह मान्यता नहीं मिली जिसकी चर्चा फ्रैंक मोराइस, सदानंद, दुर्गादास, देवदास गांधी, नानपोरिया, एम.वी. कामत, निहाल सिंह, वर्गीज और सुनंद दत्तारे के संदर्भ में की जाती है।

मौलिक प्रखरता के अभाव में जो लोग मूल्यानुगत पत्रकारिकता के दौर में लगातार दोयम दर्जे के सिद्ध होते रहे, वे कालांतर में किसी विज्ञापन एजेंसी, अखबार के विज्ञापन विभाग या किसी औद्योगिक अथवा सरकारी संगठन में जनसंपर्क अधिकारी बनकर, धृतराष्ट्रों के बीच तिर्यक राजा के रूप में प्रतिष्ठित होते रहे हैं। जहां तक खुशवंत सिंह का प्रश्न है, उनकी कुण्डली में 'विपरीत-राजयोग' होने से तृतीय श्रेणी में बी.ए. पास करने के बावजूद अवसरों ने उनके लिए कोई भी दरवाजा बंद नहीं किया। उनकी जीवनी में यह उल्लेख भी मिलता है कि वे

लंदन के इनर-टेंपल में वकालत की पढ़ाई करने से पहले उन्होंने गर्वमेंट कॉलेज लाहौर, सेंट-स्टीफन्स कॉलेज, नई दिल्ली और किंग्स कॉलेज लंदन में भी अध्ययन किया किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि लाहौर से बी.ए. करने के बाद उन्होंने उपर्युक्त दो कॉलेजों से कौन सी डिग्री ली? हकीकत जो भी हो 1938 में वे वकील बन गए और करीब आठ वर्षों तक उक्त पेशे से बंधे रहे।

देश आजाद होने पर खुशवंत सिंह को भी नई सौगात मिली और 1948 में, लंदन स्थित भारतीय दूतावास में वे प्रेस अटैची के रूप में नियुक्त हुए। ऐसा नहीं था कि उक्त पद के लिए कोई बेहतर प्रत्याशी उपलब्ध नहीं था। हकीकत तो यह थी कि खुशवंत सिंह परिवार के अंग्रेजों और नेहरू परिवार से इतने घनिष्ठ रिश्ते थे कि बेहतर प्रत्याशी खोजने की जरूरत ही नहीं पड़ी। इसके मूल में निम्नलिखित घटनाक्रम को समझना होगा।

1911 में जब ब्रिटिश हुकूमत ने भारत की राजधानी, कलकत्ता से दिल्ली ले जाने का निर्णय लिया, तब ल्यूटिन की योजनानुसार दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में व्यापक तौर पर भवनों और सड़कों का निर्माण-कार्य जरूरी हो गया। उस समय, खुशवंत सिंह के दादा श्री सुजान सिंह, तत्कालीन पंजाब के सूबे में सड़क-निर्माण और रेल्वे-ट्रैक बिछाने जैसे कार्यों के ठेकेदार थे। जब अंग्रेज की ओर से उन्हें दिल्ली आने का निमंत्रण मिला, तो उन्होंने काम सिखाने की गरज से, स्कूल में अध्ययनरत अपने बेटे, शोभा सिंह की पढ़ाई छुड़वाकर, उसे भी अपने धंधे में शामिल कर लिया। ये वही शोभा सिंह थे जिन्होंने दिल्ली असेम्बली बम कांड (8 अप्रैल 1929) के आरोपी शहीद भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त की शिनाख्त करते हुए उनके विरूद्ध गवाही दी थी। फलस्वरूप 23 मार्च 1931 को शहीद भगत सिंह और एक अन्य प्रकरण में सुखदेव और राजगुरू को फांसी हुई जबकि बटुकेश्वरदत्त को उम्र कैद। उस समय खुशवंत सिंह की उम्र 15 वर्ष थी।

चूंकि शोभा सिंह पर अंग्रेज मेहरबान थे इसलिए उन्हे आज पॉश समझे जाने वाले, दिल्ली के कई इलाकों में, दो रूपये वर्ग-गज के भाव से सरकारी जमीन खरीदने का मौका मिला। शीघ्र ही लोग उन्हें, 'आधी दिल्ली दा मालिक' के रूप में पहचानने लगे। सरकार के पसंदीदा कॉन्ट्रेक्टर होने की वजह से उन्हे कनॉटप्लेस में मार्केट-कॉम्पलेक्स, आकाशवाणी-भवन, नेशनल म्यूजियम, दयाल सिंह कॉलेज, टी.बी. अस्पताल, मॉडर्न स्कूल, सेंट कोलम्बिया स्कूल, रेडक्रॉस बिल्डिंग और बडौदा-हाऊस जैसे भव्य निर्माण-कार्यों को मूर्त रूप देने का श्रेय मिला। उन्होंने खान-मार्केट के पास, 'सुजान सिंह पार्क' नाम से नई दिल्ली का पहला अपार्टमेंट कॉम्पलेक्स भी बनाया, जहां 1945 तक केवल बंगले थे।

इतना ही नहीं, नागपुर में मेडिकल कॉलेज और हाईकोर्ट बिल्डिंग को भी शोभा सिंह ने ही अंजाम दिया था जबकि कसौली और शिमला के बीच चलनेवाली खिलौना ट्रेन का ट्रैक श्री सुजान सिंह की देखरेख में डाला गया था। कसौली में, 'पाश्चर इंस्टीच्यूट' भवन का ठेका मिलने पर शोभा सिंह ने वहां अपने लिए भी एक बंगला बनवाया था जिसका जिक्र खुशवंत सिंह के लेखों में अक्सर मिलता है। उन्हें दिल्ली म्युनिस्पल काउंसिल का प्रथम भारतीय अध्यक्ष होने का अवसर भी मिला और वे लगातार चार बार इस पद पर आसीन रहे। 1938 में, उन्हें ब्रिटिश एम्पायर ऑर्डर का अफसर बनाया गया जबकि 1944 में नाइटहुड के तहत 'सर' की उपाधि से नवाजा गया।

## खुशवंत सिंह की विकास यात्रा

लंदन स्थित भारतीय दूतावास में खुशवंत सिंह ज्यादा नहीं टिक पाए। प्रत्यक्ष तौर पर इसके दो कारण थे। एक तो यह कि वहां जनसंपर्क अधिकारी के रूप में नियुक्त श्री सुधीर घोष उनके बॉस थे जिन्हे भारतीय उच्चायुक्त श्री वी.के. कृष्णमेनन बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। दूसरा कारण यह था कि करीब आठ वर्ष तक वकालत कर चुके खुशवंत सिंह की पंजाबी फितरत को यह कतई गवारा नहीं था कि वे खुद को, 'यस सर' की सरकारी कार्य-संस्कृति में ढाले। नतीजतन, तीनों एक दूसरे को नीचा दिखाने के अवसर तलाशते रहते थे। कहने को तो खुशवंत सिंह प्रेस-अटैची थे, लेकिन उनका रुतबा, हाई-कमीश्नर से ज्यादा था। नेहरूजी की लंदन यात्रा विषयक जानकारी, मेनन से ब्रिटिश राज परिवार के सदस्यों से नेहरूजी की मुलाकात आदि के दौरान इवेंट-मैनेंजमेंट का पूरा काम खुशवंत सिंह के जिम्मे रहता था। ऐसे में घोष या मेनन की क्या बिसात कि थी कि वे नेहरू या माउण्टबेटन से पंगा लेते? लंदन और ओटावा में करीब तीन वर्षों तक प्रेस-अटैची रहने के बाद 1950 के आसपास खुशवंत सिंह ने स्वयं ही वह नौकरी छोड़ दी।

दिल्ली लौटने पर कुछ समय की मायूसी के बाद, उन्होंने अपने पहले उपन्यास, 'मनो-माजरा' पर काम शुरू किया लेकिन दिल्ली की आपाधापी और पटियाला-पेग की महफिलों ने काम पूरा नहीं होने दिया। तभी उन्हें पता चला कि भोपाल में भी शोभा सिंह का एक बंगला था, जहां बिना व्यवधान के उपन्यास पूरा किया जा सकता था। दरअसल भोपाल के अंतिम शासक, नबाव हमीदुल्ला खां से शोभा सिंह की बहुत अच्छी दोस्ती थी और आजादी के पहले उन्होंने ही तत्कालीन भोपाल में उद्योग लगाने के लिए शोभा सिंह को आमंत्रित किया था। तब उन्हें भोपाल के पुराने रेलवे स्टेशन से लगी 36 एकड़ जमीन एक रुपये प्रति वर्ष की दर से 99 वर्षों की लीज पर दी गई थी। शोभा सिंह ने वहां बर्फ और आइस्क्रीम बनाने की एक फैक्ट्री खोली और नवाब के आवासीय महल से सटे क्षेत्र में 'काशाना-ए-अल्वी' नामक बंगला भी खरीद लिया। इसी बंगले में रहते हुए खुशवंत सिंह ने 'मनो-माजरा' उपन्यास पूरा किया जो 1956 में 'ट्रेन टू पाकिस्तान' शीर्षक से लंदन में प्रकाशित हुआ। उक्त उपन्यास खुशवंत सिंह की ख्याति का पहला सोपान सिद्ध हुआ। इसके पहले 1950 में 'द मार्क ऑफ विष्णु एंड अदर स्टोरीज' नाम से उनका एक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका था, जो उपक्षित रहा। 'ट्रेन टू पाकिस्तान' देश के बंटवारे की त्रासदी पर केंद्रित पहला उपन्यास था जिसमें शामिल हृदय -विदारक प्रसंग

आज भी रुलाते हैं। 'मनो-माजरा' भारत-पाक सीमा पर स्थित एक काल्पनिक गांव है जहां पाकिस्तान से पहुंची पूरी ट्रेन में सिखों और हिंदुओं की लाशों के सिवा कुछ नहीं है। गांव में मुस्लिम और सिख बहुत ही भाईचारे से रहते थे। गांव वालों ने किसी तरह मिट्टी का तेल और लकड़ियां जुटा कर पूरी ट्रेन की लाशों का दाह-संस्कार कर दिया। दूसरी बार फिर जब ऐसी ही लाशों वाली ट्रेन आई, तब गांव वाले के पास इतनी बड़ी तादाद में दाह-संस्कार के लिए न तो लकड़ी थी और न ही कैरोसिन। मजबूरन, गांव से सटी एक खाई में लाशों पर मिट्टी डाल दी गई। दुखी और क्रुद्ध गांव वालों ने जब यह तय किया कि भारत से मुसलमानों को ले जाने वाली ट्रेन जब उनके गांव से गुजरेगी, तब उसे डि-रेल कर, वे बदला, लेंगे। तभी, हत्या और लूटपाट के शक में गिरफ्तार, जुगत सिंह नामक एक आरोपी, सरकारी अफसर के आदेश से रिहा होता है। जब उस गुंडे को पता चलता है कि पाकिस्तान जाने वाली ट्रेन में उसकी मुस्लिम मेहबूबा, नूरां भी है, तो वह ऐन वक्त पर ट्रेन को डि-रेल होने से बचा लेता है और सभी मुस्लिम सकुशल, पाकिस्तान पहुंच जाते हैं लेकिन ट्रेन को बचाने की कोशिश में उस गुंडे की मौत हो जाती है।

इस उपन्यास के माध्यम से खुशवंत सिंह ने दो बातें रेखांकित की हैं: एक तो यह कि बुरे व्यक्ति में भी कहीं अच्छाई का अंश होता है जिसे प्रेम की भावना के कारण अभिव्यक्ति मिलती है। दूसरी बात यह है कि 'सत्यमेव जयते' का संदेश ही सनातन है क्योंकि बुराई की हमेशा हार होती है। साथ ही, अनजाने में दो और बाते स्पष्ट हुई हैं- पहली तो यह कि 'सत्यमेव जयते' केवल भारतीयमूल के जनमानस में चरितार्थ होता है और ट्रेन बचाने अथवा कुंए में जान दे रहीं महिलाओं को बचाने वाला किरदार पाकिस्तान जैसे कृत्रिम देश में काल्पनिक साहित्य में भी नजर नहीं आता। दूसरी और सर्वाधिक अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जब सार्वजनिक आत्मरक्षा के प्रयोजन से आक्रमणकर्ताओं को निष्क्रिय करने का प्रश्न हो, उस समय अचानक ही भारतीय मूल के धर्मावलम्बियों में से किसी न किसी के दिल में या तो बुद्ध अथवा महावीर जागृत हो जाते हैं या फिर, सार्वजनिक सुरक्षा की जोखिम लेने वाला व्यक्ति, किसी नैतिकता की दुविधा में लक्ष्य चूक जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में, स्थाई विषयांतर के लिए यह जरूरी है कि इन पंक्तियों के लेखकों को साम्प्रदायिक करार दिया जाए किंतु विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या दुविधा के शिकार अर्जुन को कृष्ण द्वारा दिया गया ज्ञान साम्प्रदायिक था। बंटवारे के परिप्रेक्ष्य में 'ट्रेन टू पाकिस्तान' एक 'पोलिटिकली करेक्ट' रचना थी। इसे सथ्यू की फिल्म 'गरम हवा' के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। यदि उस फिल्म में बलराज साहनी वाला किरदार पाकिस्तान में फंसे रह गए किसी हिंदू का होता तो क्या वह फिल्म बन पाती? यदि भारत में शूट करते हुए, किसी तरह फिल्म बन भी जाती तो क्या उसे भारत की प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक ताकतों की ओर से किया जा रहा दुष्प्रचार नहीं माना जाता? इस उपन्यास की सफलता से खुशवंत सिंह को पहली बार यह महसूस हुआ कि पिताजी की सिफारिश और नेहरू जी की दरियादिली के

**देश आजाद होने पर खुशवंत सिंह को भी नई सौगात मिली और 1948 में, लंदन स्थित भारतीय दूतावास में वे प्रेस अटैची के रूप में नियुक्त हुए। ऐसा नहीं था कि उक्त पद के लिए कोई बेहतर प्रत्याशी उपलब्ध नहीं था। हकीकत तो यह थी कि खुशवंत सिंह परिवार के अंग्रेजों और नेहरू परिवार से इतने घनिष्ठ रिश्ते थे कि बेहतर प्रत्याशी खोजने की जरूरत ही नहीं पड़ी। इसके मूल में निम्नलिखित घटनाक्रम को समझना होगा।**

बगैर भी कुछ किया जा सकता है। किंतु उपन्यास से न तो पेट भरता है और न ही मासिक वेतन मिलता है। इसलिए, एक बार पुनः राजयोग का सहारा लेते हुए पहले वे ऑल इंडिया रेडियों से जुड़े और फिर वहीं से प्रतिनियुक्ति पर, यूनेस्को के पेरिस स्थित जनसंचार विभाग में पदस्थ हो गए। (1951-56). 1956 में भारत लौटने पर उन्हें पत्रिका, योजना (अंग्रेजी) का संस्थापक -संपादक बनाया गया जहां उन्होंने 1958 तक काम किया। चूंकि सरकारी पत्रिकाओं में रचनात्मकता की गुंजाइश नहीं के बराबर होती है और संपादन के नाम पर केवल परिपत्रों का सारांश ही देना होता है अतः इस दौरान खुशवंत सिंह को वैयक्तिक लेखन और संपादकीय गरिमा से जुड़ी प्रेस-वार्ताओं के माध्यम से अपना प्रभावक्षेत्र बढ़ाने के लिए काफी वक्त मिला। किंतु शीतयुद्ध में प्रासंगिक औपन्यासिक सफलता और सरकारी पत्रकारिकता का पायदान मिलने के बावजूद खुशवंत सिंह को अपनी उपलब्धियों को लेकर कहीं न कहीं कमी महसूस हो रही थी।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पूरी दुनियां में, और खासतौर पर अफ्रो-एशियन देशों में, सामाज्यवाद के विरूद्ध बहुत ज्यादा गुस्सा था। ऐसे में भारत की हर भाषा का रचनाकार, खुद को पिरोगेरसिव (प्रोग्रेसिव) कुनबे का हिस्सा मानने लगा था। यहां तक कि, अंग्रेजी नहीं जानने वाले भी, मुल्कराज आनंद द्वारा लिखित, 'बारबर्स ट्रेड यूनियन' की कहानी से परिचित थे। यह पूंजीवादी खेमे के लिए खतरे की घंटी थी जिसकी वजह से उसे ऐसे लेखकों की दरकार हुई जो इंकलाबी साहित्य से लोगों का ध्यान हटा सकें। ऐसे में, खुशवंत सिंह की महत्वकांक्षा, पूंजीवादी खेमें की अदृश्य बिल्ली के लिए छींका टूटने जैसा वरदान सिद्ध हुई। नतीजतन, अंग्रेजी में लिखने वाले सभी भारतीय लेखकों के हिस्से की शोहरत भी खुशवंत सिंह की झोली में पहुंच गई। इस सबके वाबजूद, वे अपनी उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं थे। ऐसे में, घोषित तौर पर नास्तिक खुशवंत सिंह धर्म की ओर मुड़े और उन्होंने न केवल सिखों के धर्मग्रंथ, 'जपजी' का अंग्रेजी अनुवाद किया बल्कि 'माइंड-टू-

सुपरमाइंड' शीर्षक से गीता पर भाष्य भी लिखा। 'योजना' के संपादक पद से मुक्त होने के बाद उन्होंने अपना अधिकांश समय सिखों के विकास-यात्रा को समझने के लिए ब्रिटेन और अमरीका के कतिपय विश्वविद्यालयों/पुस्तकालयों में बिताया। उनकी मेहनत रंग लाई और प्रिंस्टन तथा ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी के संयुक्त तत्वाधान में A History of Sikh 1469-19641 शीर्षक से उनका शोध -परक ग्रंथ, दो खंडों में प्रकाशित हुआ। कालांतर में इस कार्य के लिए खुशवंत सिंह को खालसा पंथ के सर्वोच्च पुरस्कार, 'निशान-ए-खालसा' से भी नवाजा गया। लेकिन जिन कारणों से इरफान हबीब और रोमिला थापर को साहित्यकार नहीं माना जा सकता, उन्ही कारणों से खुशवंत सिंह की इस रचना को साहित्यिक -कृति नहीं माना जा सकता।

इलेस्ट्रेटेड वीकली और खुशवंत सिंहः 1969 से 1978 तक खुशवंत सिंह उस इस्ट्रेटेड वीकली संपादक रहे जिसे भारत के नकली प्रबुद्ध वर्ग की पत्रिका मानते थे। स्वयं उनके शब्दों में, '... And slowly, the circulation built up till the Illustrated did become a weekly habit of the English-reading pseudo elite of the country''. इलेस्ट्रेटेड वीकली में नौ वर्ष की नौकरी, संभवतः किसी भी पद पर खुशवंत सिंह की सबसे लंबी पारी थी। लेकिन सेवा निवृत्ति की नियत तिथि से एक सप्ताह पूर्व ही दिनांक 25 जुलाई 1978 को प्रबंधकों ने उन्हें तत्काल प्रभाव से सेवा मुक्त कर दिया। हालांकि प्रबंधकों ने उन्हें हटाने का कोई कारण नहीं बताया, लेकिन ऐसा समझा जाता है कि खुशवतं सिंह द्वारा आकातकाल को किए गए समर्थन की वजह से प्रबंधक नाराज थे। ज्ञातव्य हो कि आपातकाल में अखबारों पर सेंसरशिप लागू हो गई थी और टाइम्स ऑफ इंडिया को नियंत्रित करने के लिए वहां सरकारी प्रशासक नियुक्त कर दिया गया था। खुशवंत सिंह, इंदिरा गांधी के करीबियों में से एक थे, इसलिए संभवतः उन्हें इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। हकीकत जो भी हो प्रबंधकों ने उसी दिन, श्री एम.वी. कामत को इलेस्ट्रेटेड वीकली का संपादक नियुक्त कर दिया जो वाशिंगटन में टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रतिनिधि रह चुके थे। ज्ञातव्य हो कि 'वीकली' की नौकरी के दौरान खुशवंत सिंह ने परिवार को मुंबई में शिफ्ट नहीं किया था। शुरू में वे टाइम्स ऑफ इंडिया के गेस्ट हाऊस में रहते थे और कंपनी द्वारा लीज-फ़्लैट की व्यवस्था की जाने के बावजूद काफी समय तक, स्व. रफीक जकारिया के आग्रह पर उनके कोलाबा स्थित आवास में पारवारिक सदस्य के रूप में भी रहे। श्रीमती फातिमा जकारिया पहले से ही इलस्ट्रेटेड वीकली की संपादकीय टीम में थीं।

वीकली से मुक्त होने के बाद खुशवंत सिंह एक बार फिर दिल्ली पहुंच गए। लेकिन1951 के मुकाबले इस बार वे ज्यादा मायूस थे क्योंकि बल्ब में बैठकर सेक्स और स्कॉच की स्कॉलरशिप को पत्रकारिकता समझने वाले संपादक के लिए यह एक बहुत बड़ा झटका था। एक तरह से, 'बड़े बेआबरू हो कर तेरे कूचे से हम निकले' वाला माजरा था। लेकिन वीकली की विदाई के प्रसंग ने सार्वजनिक तौर पर उन्हें कटघरें में खड़ा कर दिया था। जिस तरह इश्क के मारे को दूसरे की शायरी में अपनी दास्तान नजर आती है, उसी तरह खुशवंत सिंह को भी उर्दू शायदी की हसरतों में अपनी हसरतें नजर आने लगी। दरअसल, लाहौर के उर्दू माहौल में अंग्रेजीदां कहलाने वालो को भी शेक्सपियर के मुकाबले गालिब और इकबाल की लाइने ज्यादा समझ में आती थीं। खुशवंत सिंह भी इसके अपवाद नहीं थे। ज्ञातव्य हो कि उनके सपादकत्व में वीकली के किसी भी संपादकीय में टी.एस.इलियट, एजरा पाउंड अथवा समकालीन अंग्रेजी कवियों को लेकर गंभीर विवेचन कभी नहीं हुआ, जबकि रोमन में उद्धरित उर्दू अशार पढ़ कर पाठकों को कई बार ऐसा लगा मानों वे उर्दू की शायरी को समर्पित पत्रिका पढ़ रहे हों। लाहौर की उर्दू विरासत का नतीजा यह हुआ कि मायूसी के दौर में उन्हें अल्लामा इकबाल की लम्बी कविता, 'शिकवा' में अपनी हसरतों का औचित्य नजर आने लगा। उक्त कविता इकबाल का एक लंबा एकालाप है जिसमें उन्होंने अल्लाह से यह शिकायत की है कि उसने काफिरों को दौलत और हूरों से नवाजा, जबकि मुसलमानों से इस बारे में सिर्फ वादा किया गया। साथ ही इकबाल इस बात से भी दुखी हुए कि अल्लाह को लोग मुसलमानों की वजह से जानते हैं फिर भी अल्लाह ने उन्हें नवाजने में कोताही की है, इसलिए अल्लाह भी हरजाई (संदिग्ध निष्ठावाला/वाली/कुलटा) है। शायद उस दौर में खुशवंत सिंह को भी यह लगा कि इकबाल की तरह, उनकी शान में भी कोई कमी रह गई थी। हकीकत जो भी हो, खुशवंत सिंह 'शिकवा' में इतने डूबे कि उन्होंने अल्लामा की इस भड़ास का अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया। कहते हैं, कि इस कविता से कट्टर मुसलमान इकबाल से नाराज हो गए थे और उनके विरूद्ध कलकत्ता में फतवा भी जारी हुआ था। नतीजतन, इकबाल ने 'जवाब-ए-शिकवा' नाम से एक और कविता लिखकर किसी तरह, फतवे से पीछा छुड़ाया। बादवाली कविता में मुसलमानों की कुछ खामियों का भी उल्लेख है। दुनियावी

तकाजे को समझते हुए, खुशवंत सिंह ने उक्त दूसरी कविता का भी अनुवाद किया और दोनों कविताएं, अंग्रेजी अनुवाद सहित, एक ही खंड में प्रकाशित हुईं (1981)। खुशवंत सिंह के दामाद, रविदयाल उस समय ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की भारतीय इकाई के सर्वे-सर्वा थे, इसलिए मूलतः अंग्रेजी में लिखित पांडुलिपियों को अविलम्ब लौटाने में निष्णात ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस को भी, अनुवाद प्रकाशित करने में कोई असुविधा नहीं हुई। इस परिप्रेक्ष्य में दो तथ्यों पर ध्यान देना जरूरी हैः एक तो यह कि इकबाल के जीवन पर्यंत (उनका निधन 1938 में हुआ था) मनोविज्ञान में इतनी प्रगति नहीं हुई थी कि भारतीय मूल की किसी भी रचना का मूल्यांकन लेखकीय मनोविश्लेषण के संदर्भ में किया जाए। दूसरा, यह कि खुशवंत सिंह स्वयं अपने चिंतन में उतने वस्तुनिष्ठ नहीं थे जितना कि किसी संपादक से अपक्षित होता है। वस्तुस्थिति यह है कि टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिलने (1913-14) के बाद से ही इकबाल दुखी रहने लगे थे। उनका मानना था कि अल्लाह ने अपने नेक बंदे को छोड़कर एक काफिर को 'नोबेल' से नवाजा? सब्जेक्टिव/व्यक्तिनिष्ठ चिंतन के दायरे में वे गलत नहीं थे लेकिन वस्तुनिष्ठ चिंतन का तकाजा था कि वे टैगोर के युगदृष्टा स्वरूप को समझने की कोशिश करते। इस बात को इकबाल के निम्नलिखित शेर से समझा जा सकता हैः

**जिंसे-नायाब मुहब्बत को फिर अरजां कर दे/ हिंद के दैर-नशीनों को मुसलमां कर दे।**

अर्थात इकबाल का चिंतन इस्लाम के दायरे में सीमित था और चाहते थे कि अल्लाह पूरी मानवजाति को मुसलमान बना दे, क्योंकि वे अन्य धर्मावलम्बियों के मुकाबले मुसलमानों को सुपीरियर मानते थे। इस श्रेष्ठता-ग्रंथि के मूल में नीत्शे का 'सुपरमैन' था जिसका अध्ययन उन्होंने अपनी पी.एच.डी. थिसिस के लिए किया था। उन्हें लगता था कि नीत्शे जिन खूबियों की बदौलत 'सुपरमैन' का इंतजार कर रहा था मुसलमानों में वे खूबियां पहले से ही हैं जिनकी बदौलत उन्होंने अपने आक्रामक अभियानों से पूरी दुनियां को हिला दिया। चूंकि सामी (सेमेटिक) धर्म मूलतः prescriptive हैं और वे अपने अनुयायियों को अलोचना या समीक्षा का अधिकार नहीं देते, अतः कोई भी समझदार व्यक्ति यह उम्मीद नहीं करता कि इकबाल अपनी सोच में ज्यादा वस्तुनिष्ठ रहे। लेकिन जब खुशवंत सिंह जैसा व्यक्ति इकबाल के सुर में सुर मिलाता है तो लगता है कि सिखों के इतिहास को उसने समझा ही नहीं। सिख-पंथ मूलतः सनातन धर्म का सिविल डिफेस विंग था जिसका गठन हिंदुओं को मुस्लिम शासकों की क्रूरता और जबरन धर्म-परिवर्तन से बचाने के लिए हुआ था। दरअसल जिस सोच के तहत इकबाल सभी हिंदुस्तानियों को मुस्लिम के रूप में देखना चाहते हैं, वही सोच औरंगजेब की भी थी। ऐसे में खुशवंत सिंह की वस्तुनिष्ठ बौद्धिकता पर भी कई प्रश्न लगते हैं।

इस स्यापे के दौरान एक बार फिर, उन्हें गांधी/नेहरू परिवार से मदद मिली। संजय गांधी की शादी सिख परिवार में होने से वे इंदिराजी के ज्यादा करीबी हो गए थे। अतः मैडम ने उन्हें न केवल 'नेशनल हेराल्ड' का संपादक नियुक्त किया (1980) बल्कि राज्यसभा का सदस्य भी बनाया (1980-86)। आपातकाल के बाद इंदिराजी की करारी हार ने सबको आश्वस्त कर दिया था कि वे दोबारा कभी सत्ता में नहीं आएंगी इसलिए लगभग सभी अखबारों ने उनके विरुद्ध खबरें छापने में कोई कोताही नहीं की। लेकिन जनता पार्टी टूटने पर जब वो दोबारा सत्ता में आईं तो उनसे रिश्ते सुधारने की सभी अखबारों को जल्दी थी। 'राजयोग' की वजह से खुशवंत सिंह को दोबारा इसका फायदा मिला। 'नेशनल हेराल्ड'में संपादक नियुक्त होने के कुछ समय बाद ही बिडला ग्रुप ने उनसे इस आशय का अनुरोध किया कि वे 'हिंदुस्तान टाइम्स' का संपादक पद स्वीकार कर लें। सरदार साहब के लिए यह 'Paradise Regained' जैसा अवसर था जिसे उन्होंने तत्काल स्वीकार कर लिया। जून 1980 में संजय गांधी की आकस्मिक मृत्यु की वजह से बहुत से समीकरण बदल गए। नतीजतन, राज-परिवार में खुशवंत सिंह का वह रसूख नहीं रहा जिसकी के.के. बिडला को दरकार थी। दृश्य बदला और 1983 में खुशवंत सिंह 'हिंदुस्तान टाइम्स' से बाहर हो गए। 1984 में 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' हुआ जिसके विरोध में खुशवंत सिंह ने पद्मभूषण पुरस्कार लौटा दिया। यह एक अप्रत्याशित कदम था क्यों कि घोषित तौर पर, वे नास्तिक थे और उन्होंने भिंडरावाले सहित सभी सिंख आतंकवादियों के विरूद्ध आवाज भी उठाई थी जिसकी वजह से देश के कुछ हिस्सों में सिख विरोधी दंगे हुए और जिस सनातन धर्म की रक्षा के लिए सिखों ने तलवार उठाई थी उसी के मानने वाले कुछ तथाकथित हिंदुओं ने धर्म को कलंकित करते हुए, अपने ही भाइयों की जान ले ली। सिख-विरोधी दंगों से पूरा देश आहत था। उस समय खुशवंत सिंह के पास कोई संपादकीय दायित्व नहीं था लेकिन कई अखबारों में प्रकाशित होने वाले अपने सिंडीकेटेड कॉलम के जरिए चिंता जताते हुए उन्होंने लिखा था कि वे इतना असुरक्षित महसूस कर रहे थे कि मानो हिटलर कालीन जर्मनी में निवासरत यहूदी हों। इंदिराजी और संजय की मौत ने उन्हें पहले ही तोड़ दिया था लेकिन किसी तरह उन्होंने मानसिक संतुलन बनाए रखा। इस घटना के बाद खुशवंत सिंह लगातार अप्रासंगिक होते गए, हालांकि नेत्रज्योति क्षीण होने के बावजूद, कुमकुम चड्ढा की मदद से उन्होंने अपना साप्ताहिक कॉलम अंत तक जारी रखा। 20 मार्च 2014 को उन्होंने अंतिम सांस ली। अब वे हमारे बीच नहीं हैं लेकिन प्रहसन को पत्रकारिकता के रूप में समुन्नत करने तथा दैनंदिन जीवन के संता-बंता प्रसंगों की वहज से वे हमेशा याद किए जाएंगे। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे!

**डॉ. देवरिया उन्मेष**
मो. 9669144161

आलेख

**लाल्टू**

**कुछ साल पहले का उदाहरण लें। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण (एनसीईआरटी) की 2006 में तैयार की गयी ग्यारहवीं की राजनीति शास्त्र की पाठ्य पुस्तक में कोई तीस कार्टून डाले गये। इसके पीछे मासूम-सा तर्क था कि बच्चे कार्टून का मजा लेते हुए पाठ के विषय-वस्तु में रुचि लेने लगेंगे।**

# आधुनिकता-भावनात्मकता प्रतिरोध

जेएनयू के छात्र उमर खालिद ने हाल में कोलकाता में भारतीय संघ के भवन में छत्तीसगढ़ की समस्याओं पर व्याख्यान दिया। सभागार के बाहर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद यानी एबीवीपी के कार्यकर्ता विरोध प्रदर्शन कर रहे थे। इसकी वजह से ट्रैफिक में कुछ समस्याएं हो रही थीं। एक बस में किसी सवारी ने पूछा, यहाँ क्या हो रहा है। किसी दूसरे ने जवाब दिया, अरे वह उमर खालिद है न, जिसने देशद्रोही नारे लगाये थे, वह आया हुआ है। किसी तीसरे ने कहा, अरे उसे अभी तक गिरफ्तार नहीं किया। एक युवा स्त्री ने कहा कि आप लोग क्या कह रहे हैं, आपको पता नहीं कि यह सब झूठ है। जाली वीडियो दिखलाकर यह झूठ फैलाया गया था, तो कई लोग चिल्ला उठे कि इसे पीट कर गाड़ी से उतार दो।

इस घटना में एक तर्कशीलता है, जो आधुनिक पूँजीवाद और सामंती समाज की गड्ड-मड्ड संस्कृति से निकलती है। कई लोग हैं, जो इस बात के प्रति उदासीन हैं कि हमारे समाज में कई लोगों को या तो उमर खालिद से या उसके मुसलमान नाम से नफरत है, पर वे हम आप जैसे भले और सचेत भी दिखना चाहते हैं, तो वे कहेंगे कि यह सब आधुनिकता की वजह से, अंग्रेजों की वजह से, औपनिवेशिक शासन की वजह से है। यानी कि उस दिन उस वक्त बस में उस युवा स्त्री को एक बुजुर्ग ने सँभाल न लिया होता तो उसकी पिटाई और पता नहीं जो कुछ भी हो सकने की संभावना थी, उसे भूल जाएँ और अंग्रेजों को कोस लें तो सब ठीक दिखने लगेगा। जिस तर्कशीलता के साथ मैं अपने मित्रों की आलोचना कर रहा हूँ, यह भी आधुनिकता से ही आई है। ऐसी अलग-अलग युक्तियों में से हम कोई एक पक्ष चुनते हैं और उसे अपने तर्कों के साथ आगे बढ़ाते हैं। मित्रों को लगता है कि वे ठीक हैं, मुझे लगता है कि मैं ठीक हूँ। अक्सर दोनों पक्षों में से कोई एक ही सही होता है, पर यह ज़रूरी नहीं कि हमेशा ऐसा हो और अगर हो भी तो पूरी तरह यानी सौ फीसद सही हो। अपने पक्ष की सीमाओं को समझने में हमें लंबा समय लग सकता है और कभी-कभी तो हम उसे कभी नहीं समझ सकते।

**ईमानदारी से हम मौजूदा स्थिति के बारे में सोचें तो हम देख सकते हैं कि आंबेडकर का घोंघे पर सवार होना किसी सवर्ण बच्चे को हास्यास्पद लग सकता है। वह इस कार्टून का इस्तेमाल किसी दलित बच्चे को तंग करने के लिए कर सकता है। आंबेडकर के ठीक पीछे नेहरू का चाबुक लिए खड़े होना कार्टून को और भी जटिल बना देता है।**

कुछ साल पहले का उदाहरण लें। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण (एनसीईआरटी) की 2006 में तैयार की गयी ग्यारहवीं की राजनीति शास्त्र की पाठ्य पुस्तक में कोई तीस कार्टून डाले गये। इसके पीछे मासूम-सा तर्क था कि बच्चे कार्टून का मजा लेते हुए पाठ के विषय-वस्तु में रुचि लेने लगेंगे। वैसे तो यह सही बात है कि इस तरह के शैक्षणिक प्रयोग पिछली सदी के आखिरी दशकों में दुनिया भर में हुये हैं। किताब में एक अध्याय भारत के संविधान पर था और यह समझाने के लिए कि संविधान के लिखे जाने में तक़रीबन तीन साल लग गये, प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट शंकर का 1949 में छपा एक कार्टून डाला गया था। इसमें दिखलाया गया था कि भारत की जनता एक गोल चक्कर के बाहर अधीरता से इंतज़ार कर रही है कि संविधान जल्दी तैयार हो  और अखाड़े में संविधान लिखने वाली समिति के अध्यक्ष आंबेडकर एक घोंघे पर बैठे हुए हैं। पीछे से उन दिनों की

कार्यकारी सरकार के प्रमुख जवाहरलाल नेहरू एक चाबुक लेकर खड़े हैं कि घोंघे को जल्दी दौड़ाया जाये। जाहिर है कि इस कार्टून के पीछे अंग्रेजी का 'स्नेल'स पेस' (घोंघे की चाल) वाला मुहावरा था कि भई अब कामकाज की गति बढ़ाओ, कब तक लोग इंतजार करेंगे। इस कार्टून पर 2010 से पहले कुछ और जल्दी ही बड़ी तादाद में लोगों ने आपत्ति जतानी शुरू की। 2012 तक ऐसा लगने लगा कि भारतीय बौद्धिक समाज दलित और गैर-दलित, दो तबकों में बँट गया है। दलितों और गैर-दलितों के बीच बृहत्तर समाज में जो संकट का संबंध है, वह बौद्धिकों में तीखी बहस बन कर सामने आ गया। दलित और गैर-दलित चिंतकों के बीच ध्रुवीकरण बढ़ता चला गया। अखबारों में, टीवी चैनलों पर जम कर बहस हुई। एनसीईआरटी की पाठ्य-पुस्तक समिति के सदस्य जागरुक और सचेत लोग थे, बाकी समाज के लिए पथ-प्रदर्शक थे, फिर भी बहस चली। इसके एक दशक पहले प्रेमचंद की कहानियों पर भी ऐसा ही विवाद काफी तीखे तेवरों के साथ हुआ था।

आखिर कार्टून में पाठ को बेहतर ढंग से पढ़ाये जाने के अलावा और क्या पक्ष हो सकता था? कल्पना कीजिए कि देश के एक आम स्कूल में यह पाठ पढ़ाया जा रहा है। अध्यापक पाठ के मुताबिक समझा रहे हैं कि देश का संविधान कैसे बना। बच्चे पाठ में बनी तस्वीरों की तरह शर्ट निकर के साथ टाई पहने भी हो सकते हैं। मान लें कि कक्षा में सवर्ण और दलित दोनों पृष्ठभूमि के बच्चे हैं। ईमानदारी से हम मौजूदा स्थिति के बारे में सोचें तो हम देख सकते हैं कि आंबेडकर का घोंघे पर सवार होना किसी सवर्ण बच्चे को हास्यास्पद लग सकता है। वह इस कार्टून का इस्तेमाल किसी दलित बच्चे को तंग करने के लिए कर सकता है। आंबेडकर के ठीक पीछे नेहरू का चाबुक लिए खड़े होना कार्टून को और भी जटिल बना देता है।

प्रताड़ित जन की प्रतिक्रिया कैसी होती है, विश्व इतिहास में इसके बेशुमार उदाहरण हैं। साठ के दशक में, जब अमेरिका में काली चमड़ी के लोगों को बराबरी का नागरिक अधिकार देने का आंदोलन शिखर पर था, जिसमें कई लोग गोरे भी शामिल थे, प्रसिद्ध अफ्री-अमेरिकी कवि इममु अमीरी बराका (मूल ईसाई नाम : लीरॉय जोन्स) ने लिखा, ''ब्लैक डाडा निहिलिसमुस। रेप द व्हाइट गर्ल्स। रेप देयर फादर्स। कट द मदर्स थ्रोट्स।'' कोई भी इस हिंसक कविता को सभ्य अभिव्यक्ति नहीं कहेगा। सिर्फ जाति नहीं, आर्थिक वर्ग आधारित उत्पीड़न भी हिंसक प्रतिक्रिया पैदा करता है। अभी हाल तक कोलकाता शहर में दीवारों पर भट्टाचार्य की ये पंक्तियां पढ़ी जा सकती थीं -

'आदिम हिंस्र मानविकतार आमि यदि केऊ होई, स्वजन हारानो श्मशानो तोदेर चिता आमि लूलबोई'

बराका की हिंसात्मक अभिव्यक्ति आज भी यू-ट्यूब पर संगीत के साथ सुनी जा सकती है। गोरे लोगों के समाज ने इसका विरोध किया या नहीं, इसका कोई दस्तावेज नहीं है, पर अफ्रो-अमेरिकी स्त्रियों ने प्रतिवाद किया, यह इतिहास है। एलिस वाकर ने तो इस पर कहानी, उपन्यास तक लिखे- उनके उपन्यास 'मिरीडियन' में यह दिखलाया गया है कि किस तरह काले लोगों के अधिकारों के लिए लड़ने आयी एक गोरी लड़की का एक काला युवक ग़लत फायदा उठाता है।

बहरहाल हमें गैरतार्किक लगती स्थितियों तक कोई कैसे पहुँचता है, इस पर बेशुमार साहित्य लिखा गया है। 1949 में ही एक अफ्रो-अमेरिकी कवि लैंग्स्टन ह्यूज़ ने लिखा था, ह्वाट हैपेन्स टू अ ड्रीम डिफर्ड? दरकिनार किये गये सपने का क्या हश्र होता है? क्या वह किसमिस के दाने की तरह धूप में सूख जाता है ? या वह घान बन पकता रहता है? क्या उसमें सड़े माँस जैसी बदबू आ जाती है? या वह मीठा कुरकुरा बन जाता है...? शायद उसमें गीलापन आ जाता है और वह भारी हो जाता है या वह विस्फोट बन फूटता है?

प्रसिद्ध इतिहास लेखक ज़िन ने अपनी किताब में एक अमेरिकी कहावत का ज़िक्र किया है, ग़रीब की आह हमेशा न्याय संगत हो, यह जरूरी नहीं, पर अगर तुम उसे नहीं सुनोगे, तो तुम जान ही नहीं पाओगे कि न्याय क्या है?

तो हम कैसे तय करें कि सही और ग़लत क्या है? सच यह है कि हममें से बहुत सारे लोग कभी नहीं जान पायेंगे कि दो विरोधी धारणाओं में से सही क्या हो सकता है। जीवन की तमाम प्रताड़नाएँ और असुरक्षाएँ हमारी इंसानियत को थोड़ा-थोड़ा कर खाती रहती हैं और हममें से कई इसे इस हद तक खो बैठते हैं कि हम वापस पूरे इंसान नहीं बन सकते हैं। अच्छी बात यह है कि हम में से अधिकतर लोग इस बीमारी से निदान पा सकते हैं। वक्त के साथ इंसान में सहनशीलता और विरोधी धारणाओं के साथ जीने की क्षमता बढ़ी है। पिछली सदी के बीच के दशकों तक यह माना जाता था कि तर्कशीलता ही हमें सही राह पर ले जा सकती है। पर यह स्पष्ट हो तो गया कि विरोधी धारणाओं के अपने-अपने तर्क होते हैं और तर्कशील सोच हमें सही या ग़लत दोनों तरह के निष्कर्षों पर ले जा सकती है। मेरी अपनी तर्कशीलता मुझे बतलाती है कि राष्ट्रवाद, सांप्रदायिकता या इंसान को इंसान से बाँटने वाले सिद्धांत मानसिक बीमारियाँ हैं पर औरों पर तर्कशीलता उन्हें यह नहीं, बल्कि भावनात्मकता भी सत्य की ओर जाने का एक रास्ता है। जाहिर है कि भावनात्मक होना भी अक्सर हमें ग़लत दिशा में भी धकेलता है, पर कम से कम इतना तो कहा जा सकता है कि भावनात्मकता के साथ हम विरोधी विचारों के लोगों के साथ इंसानी रिश्ते बनाने में काबिल हो सकते हैं और उनकी सोच को जगह देने के काबिल होते हैं और मिलजुल कर आगे बढ़ने की कोशिश कर सकते हैं। असमंजस की स्थिति में समझदारी यह है कि हम उनकी सुनें, जो उनकी उत्पीड़ित है। बाद में यह निर्णय ग़लत भी निकले, तो उससे घबराना नहीं चाहिए, आज तक सामाजिक-राजनैतिक अखाड़ों में जिन निर्णयों को सही माना जाता रहा है, उनमें से अधिकतर बाद में ग़लत साबित हुए हैं।

जिसे आमतौर पर आधुनिकता कहा जाता है, सत्रहवीं सदी के बाद से यूरोप में प्रबोधन-काल (इनलाइटेनमेंट) से आये औपचारिक बदलावों के उस समूह में आधुनिक वैज्ञानिक तर्कशीलता पर जोर बढ़ता रहा। आधुनिक विज्ञान की यह ताकत भी है और कमजोरी भी कि इसमें सिद्धांततः भावनात्मकता के लिए कोई जगह नहीं है। पर वैज्ञानिक तो आखिर इंसान है, इंसान सामाजिक प्राणी है, इसलिए विज्ञान के पेशे में वे सारे पूर्वाग्रह मौजूद हैं, जो वर्ग, जाति, लिंग आदि आधारित भेदभावों से भरे बृहत्तर समाज में है। इसलिए अगर हमारी सोच सिर्फ वैज्ञानिक तर्कशीलता पर आधारित हो और भावनात्मक रूप से विज्ञान के पेशे की सीमाओं को नहीं पहचान पाते, तो हम सामाजिक पूर्वग्रहों से कभी मुक्त नहीं हो पायेंगे। यह विरोधाभास सा लगता है, क्योंकि भावनात्मकता से रहित विज्ञान से यह अपेक्षा होती है कि वह हमें सामाजिक पूर्वग्रहों से ऊपर ले जाये, पर ऐसा नहीं है। दरअसल बौद्धिक कर्म करने वालों की अलग-अलग जमातों में वैज्ञानिक ही संभवतः सबसे अधिक संरक्षणशील होते हैं। इसलिए दुनिया भर में इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि उच्च स्तर पर विज्ञान और तकनीकी शिक्षा लेने वालों को जहाँ तक हो सके समाज शास्त्र और मानविकी (अदब समेत) भी पढ़ाया जाये। बगैर पर्याप्त भावनात्मक विकास के एक वैज्ञानिक महज एक मशीन है।

यूरोपी आधुनिकता और इसकी तर्कशीलता से जो और बातें आयी हैं, उनमें आधुनिक 'राष्ट्र' की धारणा प्रमुख है। यह एक ऐसी अजीब धारणा है, जो हमें अपने ही अंदर दुश्मन ढूँढने को कहती है। जो भी मुख्यधारा की भाषा, संस्कृति, मजहब का नहीं है, वह मेरा दुश्मन है। राष्ट्र की यह धारणा हमारी इंसानियत को बड़ी तेजी से खत्म करती है।

यह कहा जा सकता है कि आज समूची दुनिया में हर मुल्क के लोग इस आधुनिक बीमारी से ग्रस्त हैं। इसलिए एक मुल्क का नागरिक दूसरे मुल्क के नागरिकों के साथ भावनात्मक रूप से नहीं जुड़ पाता, यहाँ तक कि अपने ही मुल्क में अल्पसंख्यकों में हम भावनात्मक रूप से नहीं जुड़े पाते। एक-दूसरे को मार कर अपने मृत को शहीद और दूसरे को दुश्मन कहते हैं, जबकि सच है कि मरने वाले तो मर जाते हैं, उनके बच्चे अनाथ हो जाते हैं। लगता ऐसा है कि लोग भावनात्मकता में बह जा रहे हैं, पर दरअसल होता यह है कि राष्ट्र आधारित हमारे भावनात्मक अस्तित्व को खा चुकी होती है। इसका फायदा उठाकर मुनाफाखोर पूँजीपति और फिरकापरस्त राजनैतिक गुटबंदियां अपना स्वार्थ सिद्ध करती हैं। सरकारें जनता को भूखी और ग़रीबी की हालत में रखे अरबों-खरबों के शस्त्र खरीद कर जंग की तैयारी और दमन-तंत्र को मजबूत करती है।

इतना तो कहा ही जा सकता है कि सामाजिक सह-अस्तित्व का मनोविज्ञान जटिल है। इस जटिलता में हमारी भागीदारी क्या और कितनी है, हम यह समझ लें तो गैर-बराबरी की इस दुनिया में हम अपनी मुक्ति की ओर बढ़ सकते हैं और दूसरी ओर जो विस्फोट हैं, उनको झेलने की ताकत हममें हो, इसकी कोशिश हम कर सकते हैं। अपनी मुक्ति के बिना किसी और की मुक्ति का सपना कोई अर्थ नहीं रखता। इसलिए आधुनिकता के उन पक्षों को जो हमें सत्ता और समाज पर सवाल खड़े करने की ताकत देते हैं, उनको पहचानने, जानने और अपनाने की जरूरत है। इस प्रतिरोधी प्रवृत्ति का भी एक भावनात्मक पक्ष है, जिसे हमें मजबूत करना होगा। उमर ख़ालिद इसी प्रतिरोधी प्रवृत्ति का नायक है और भरी भीड़ की हिंसक मानसिकता के खिलाफ खड़ी होती युवा स्त्री भी।

**लाल्टू**
Laltu10@gmail.com

# चिट्ठियां

**प्रिय भाई**

‘ चिंतन-दिशा’ 21-22 अंक मिला। आपने अपने सम्पादकीय में जो चिन्ताएं व्यक्त की हैं, कमोवेश वे हमारी चिन्ताएं हैं। इसमे कोई संदेह नहीं कि हम जिस समय में रहे हैं जिस निजाम में सांस ले रहे हैं वह एक बर्बर समूह द्वारा संचालित हो रहा है। इतिहास को बदलने का क्रम जारी है। पाठ्यक्रमों में नये मध्यकालीन नायकों को जगह दी जा रही है जिन्होने इस देश के समय को बदलने का कार्य किया उन्हें पाठ्यकर्मों से बाहर किया जा रहा। मुझे हिटलर का एक कथन याद आ रहा है। उसने कहा था-मुझे पाठ्यक्रम बदलने दो मैं राज्य को बदल दूंगा। यह बात हम देख रहे हैं। इतिहास -धर्म और संस्कृति को वे अपनी सुविधानुसार बदल रहे हैं। धर्म की शाखाएं-प्रतिशाखाएं त्वरित गति से बढ़ रही है। राजनीति और धर्म को मिलाकर ऐसा आसव तैयार किया जा रहा जो अफीम से भी खतरनाक है।

रमेश राजहंस का लेख हमें सोचने पर विवश करता है। निलय एक यायावर कवि है। इधर गद्य में उनका आना हमे आश्वस्त करता है.नदियों की तिजारत करनेवाले राजनेताओं से बड़ा कद स्वामी निगमानद का रहा है। ऐसी कथायें हमारे सामने आ नही पाती क्योकि मीडियां के लिये ये मूल्यवान नही है। इससे उन्हें कोई व्यवसायिक फायदा नही है। यह पूंजीबादी हत्यारे लाभ- हा.नि में यकीन करते हैं। प्रिय कवि मित्र वीरेन पर सुधीर विद्यार्थी..नरेंद्र मोहन -सिकंदर एव फिरोज अफरफ का लेख मुझे वीरेन भाई के साथ बितायें दिनों की याद दिलाता है जब मैं अस्सी के दशक में मुरादाबाद में पदास्थापित था। उनसे खूब मुलाकातें होती थीं। वे सरापा कवि थे और मनुष्य तो उससे बेहतर। मृत्यु हमे किसी न किसी रूप में छूती रहती है। हम अपने प्रियजनों से साथ थोड़ा-थोड़ा मरते रहते है। मीरा जी का जाना उनके प्रिय जनों के लिये इसी तरह का दारूण अनुभव है। शैलेश ने इसे हमे बताने की कोशिश की है, इस लेख को पढ़ कर मुझे मित्र कवि विनोद कुमार श्रीवास्तव के अकेलेपन की याद आती है ।

रामजी यादव ने बनारस को नये ढंग से पहचानने की कोशिश की है, वे घूमंतू लेखक हैं। उनके भीतर लोकरस बहता है। आधुनिक समय में इसका निरंतर लोप होता जा रहा है। इंतजार हुसेन की कहानी --खाली पिंजरा-- हिला गयी। इस अंक में बेहतर सामग्री है। आप लोग बड़े श्रम के साथ इसे निकाल रहे है।

इधर कुछ नये तरह से लिखने का प्रयत्न किया है। यह एक तरह से लिखने के ऊब से छुटकारा पाने का प्रयास है। मैटर मिलने पर एस.एम.एस. कर दें ताकि मिलने का यकीन हो। आप सभी लोगों को मेरा आत्मीय अभिवादन..

**-स्वप्निल श्रीवास्तव**

वर्ष : 7 अंक : 21-22

मूल्य : 30 रुपये

चिंतन दिशा

साहित्य और समाज विमर्श का त्रैमासिक



अग्रलेख - अधिनायकवादी-फासीवादी प्रवृत्तियों का बढ़ता हुड़दंग
समाज विमर्श - देश में बुद्धिजीवियों की प्रतिष्ठा का रोना
हरिद्वार में खनन माफिया की काली करतूतों का आंखों देखा हाल - निलय उपाध्याय
दिवंगत कवि वीरेन डंगवाल पर सुधीर विद्यार्थी और नासिर अहमद सिकंदर के स्मृति लेख
डॉ. महीप सिंह पर डॉ. नरेंद्र मोहन का संस्मरण
मरहूम उर्दू कथाकार इंतज़ार हुसैन की कहानी - खाली पिजंड़ा
शरद कोकास, विश्वनाथ सचदेव, प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएं
राकेश शर्मा, मुस्तहसन अज़्म की ग़ज़लें, राजसुमन के गीत
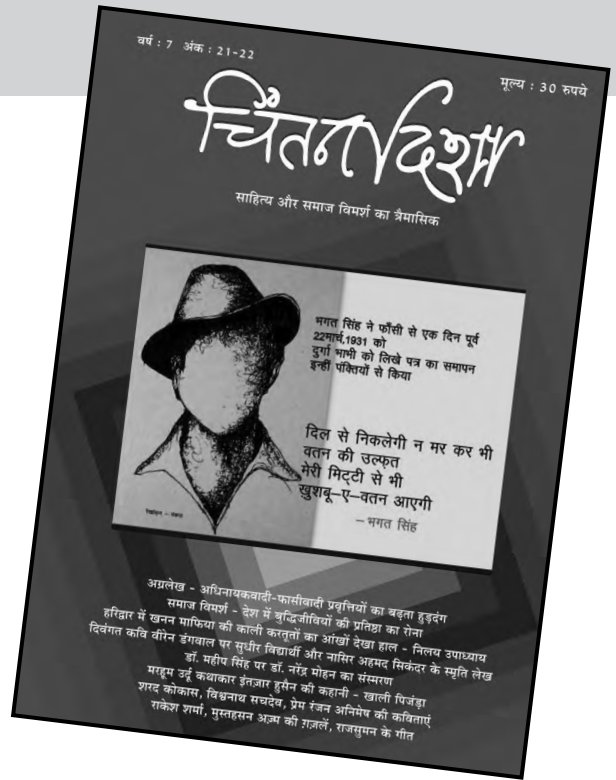
चिंतन दिशा के अंक मिलते रहे हैं। मुंबई में आपसे मिलकर मैं थोक में कृत्तज्ञता ज्ञापित करते हुए कुछ बातचीत करने के लिए उत्सुक था। बहुत फोन किया। आप शायद तब कहीं व्यस्त रहे होंगे। अभी अंक 21-22 मेरे सामने है। यह बहुत ही कसा हुआ एक शानदार और जानदार अंक है। कहा अनकहा में आपने मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य और उसकी त्रासदी पर बहुत सूक्ष्मता से दृष्टिपात किया है। बनारस में पगलाने का समय और निलय जी की आंखन देखी इस अंक की थाती है। विश्वनाथ सचदेव की कवितायें मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक हैं। बधाई एक सारगर्भित सार्थक अंक के लिए। सधन्यवाद

**– जयनंदन**

---

**चिंतन दिशा के अक्तूबर 15-मार्च 2016 अंक में 'आर.पी.शर्मा महर्षि**

‘गजल छंदशास्त्र के महर्षि’ लेख शामिल करके आपने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि यह पत्रिका एक वर्ग विशेष या विचारधारा तक ही सीमित नहीं है। इस पत्रिका के माध्यम से एक ऐसे निःस्वार्थ और सच्चे कर्मयोगी को सच्ची श्रद्धांजलि दी गई है, जिसने वस्तुतः अपनी आखिरी सांस तक अपने कार्य को समर्पित रखी। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि अपनी भीषण बीमारी के समय में भी वे अपनी आखिरी पुस्तक ‘गजल लिखना सीखें’ के प्रूफ देखते रहे। बिडंबना यह रही कि वे इस पुस्तक को प्रकाशित रूप में नहीं देख सके क्योंकि तमाम प्रयासों के बाद भी यह पुस्तक उनके जाने के बाद पांचवे दिन प्रकाशक से प्राप्त हुई।शैलेश सिंह जी ने स्वतः-स्फूर्त रूप से जो कुछ लिखा है, वह उनके मन की गहराइयों से निकला है। लेख का शब्द-शब्द इस बात का गवाह है कि यह लेख मात्र औपचारिकता के लिए नहीं है। महर्षि जी के बारे में लिखने की सोचना और फिर उसे इतने सहज लेकिन कारगर रूप में शब्दबद्ध करना हमारे अंतर्मन को छू गया है। हम नम आंखों से शैलेश जी के प्रति और चिंतन दिशा के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। सादर!

**– रमाकांत शर्मा एवं समस्त महर्षि परिवार**

समाज विमर्श

रमेश राजहंस

# विश्व में संदेह और अविश्वास का बढ़ता घेरा

**पूरी दुनिया में मुसलमानों में आधुनिक मुक्त चिंतन और दूरदर्शिता का अभाव है। इनके नेतृत्व बुरी तरह दकियानूस हैं। अफगानिस्तान और इराक में इनके इस्तेमाल का पश्चिमी महाशक्तियों को व्यावहारिक अनुभव भी है। इसलिए ये उनके मोहरे आसानी से बन सकते हैं क्योंकि इनके पास कोई नई विश्व दृष्टि नहीं है।**

मैं पिछले कई महीने से चिंतित हूं मुसलमान बंधुओं के लिए। सिर्फ हिंदुस्तान के ही नहीं, बल्कि पूरी दुनियां में फैली मुस्लिम आबादी के लिए। दुश्चिंताए कभी-कभी मुझे बुरी तरह घेर लेती हैं। दुनियां में वे अशांत हैं और उन्हें भारी मार-काट और फजीहत का सामना करना पड़ रहा है। दुनियां में सक्रिय मुस्लिम आतंकवादी गुटों की हरकतों के कारण यूरोप और एशियाई देशों में हो रही निर्दोष लोगों की हत्याओं से नहीं चाहते हुए भी आम लोगों में मुसलमानों के प्रति संदेह और अविश्वास घर करता जा रहा है, जिसे सुरक्षा व्यवस्था कर्मियों के व्यवहार के रूखेपन और अनादर में देखा जा सकता है। संभ्रात शिक्षित/मध्यमवर्गीय परिवारों में ऐसे समाचारों पर चर्चा के दौरान भी इस संदेह और अविश्वास को जड़ पकड़ते सूंघा जा सकता है। दुर्घटनाओं के दुर्दिन भरे विपरीत समय की आंधी में भी मनुष्यता के उदारता, सौहार्द और परस्पर सहयोग जैसे आधारभूत गुणों पर अडिग रहने के लिए जो दृढ़ता, साहस और विश्वास चाहिए , आम लोगों के चरित्र में इनका पर्याप्त इजाफा होना अभी बाकी है।

पिछले दिनों डेनमार्क, फ्रांस, ब्रिटेन, टर्की, पाकिस्तान आदि देशों में पैगम्बर महोदय के काटूर्नों पर उनकी प्रतिक्रियाओं और बम बिस्फोटों और उनके आक्रामक रवैये फिर इराक और सीरिया में इस्लामी राज्य की घोषणा और विशुद्धतावादी इस्लामी संगठनों ने मुसलमानों के प्रति एक नकारात्मक मानसिकता और माहौल के निर्माण और उन्हें हवा देने में सहयोग दिया है। इससे मामला जटिल होता जा रहा है और ऐसा लगता है कि इक्कीसवी सदी इस्लाम बनाम डेमोक्रेसी के खूनी संघर्षों की सदी न बन जाये। ऐसा इसलिए भी संभव लगता है कि हिंदू और ईसाई जैसे दुनिया में प्रमुख धर्मों में धार्मिक राज्यों की परिकल्पना भी कभी नहीं रही है। वहां राजनीति और शासन के नियंत्रण के खेल में बाहर से धर्म रेफ्री की भूमिका अदा करता है, परोक्ष रूप से अधिकतर निर्णायक शक्ति भी रहा है। पर इस्लामी राज्य की अवधारणा जैसी कोई चीज उनके यहां देखने को कहीं नहीं मिलती।

आज दुनिया के अधिकांश देशों की आर्थिक व्यवस्था सघनपूंजी आधारित उद्योग प्रधान है या वे इस दिशा में उन्मुख हैं। यूरोपीय देशों ने औपनिवेशिक शासन के दौरान पिछले कई सौ वर्षों में प्रजातांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था और बुद्धिवादी शिक्षा व्यवस्था का तंत्र फैला रखा है। इतना ही नहीं, निर्यात आधारित अर्थव्यवस्था नीति के तहत उन्होंने अपने उपनिवेशों से आजाद हुए देशों को अपनी अर्थव्यवस्था का परोक्ष रूप में गुलाम बना रखा है। इस तरह आज पूरे विश्व के देशों में अमरीका और यूरोपीय देशों का आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक नियत्रंण और वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। यूरोप अपने यहां सामंतवाद को दफनाकर विश्व से उसका नामोनिशान मिटाने पर उतारू है। सऊदी अरब जैसे इस्लामी राजतंत्र दकियानूसी सामंती ढांचे के पोषक और हिमायती हैं। इसलिए उनकी बर्बरता और क्रूरता प्रत्यक्ष दिखती है जबकि प्रजातंत्र की ओट में दमन और क्रूरता का खेल आंखों में उतना गड़ता नहीं है, बहुत कुछ जायज लगता है। याद रहे कि आज की दुनिया को देखने की सामाजिक आंख मीडिया है जो पूर्णतः महाशक्तिशाली यूरोपीय समाचार एजेंसियों के कब्जें में हैं। मार्क्स के दर्शन से कम्युनिस्ट जितना फायदा नहीं उठा पाये, पूंजी के खिलाड़ियों ने पूंजी के केन्द्रीकरण से पैदा होने वाले सार्वजनिक असंतोष और अराजक लक्षणों और उनसे पैदा होने

वाले तीक्ष्ण वर्ग संघर्ष की संभावना जिसकी मार्क्स ने अपने लेखों में विशद विवेचना की है उसकी भ्रुण हत्या के लिए/ यूएनओ की छत्रछाया में पूरी दुनियां में अवाम की तथा कथित सशक्तिकरण और दुख-दर्द पीड़ा नाशक उपचार के निमित्त लाखों-लाख, गैर-सरकारी संस्थाएं खड़ी कर दी हैं और उनके वित्तपोषण के लिए हजारों फोर्ड, राकफेलर, माइक्रोसॉफ्ट जैसे फाउण्डेशन और संस्थाएं उदार अनुदान दे रहीं हैं। वास्तव में ये असली और जनकल्याणकारी होने का विश्वास दिलाने का काम कर रही हैं। इसलिए ये संस्थाएं मार्क्सवाद के प्रभाव और प्रसार को नियंत्रित और नियमित करने के लिए विश्वविद्यालयीन और अन्यथा शोध संस्थानों को उन पर शोध के लिए भी दिल खोलकर सहायता देती हैं ताकि उनसे उपलब्ध सूचना के आधार पर उनके प्रसार की रोक-थाम की बुनियादी व्यवस्था की जा सके और इसमें वे बहुत हद तक सफल रही हैं। यूरोप में गैर-कानूनी ढंग से एक देश से दूसरे देश में रोजगार की खोज में जाने वाले मजदूरों की संख्या में मुसलमानों की संख्या चूंकि ज्यादा है और वहां उनकी अपनी धार्मिक पहचान के अलावा कोई और पहचान नहीं है, जिसे सुरक्षित रखने के लिए वे यदा-कदा आक्रामक रूख अख्तियार कर लेते हैं तो उन्हें इस्लाम का आक्रामक और अमानवीय चेहरे के रूप में यूरोपीय मीडिया पूरे विश्व को दिन-रात दिखाता रहता है।

इस्लाम के कुछ अवगुण उनकी इन हरकतों को विश्वसनीयता प्रदान करते हैं। इस्लाम एक ऐसा धर्म है जिसमें आप एक बार दाखिल हुए तो बाहर नहीं निकल सकते। बाहर निकलना धर्मद्रोह है और ऐसे काफिर की सजा मौत है। अब ऐसे समुदाय की हालात समझ सकते हैं जहां धर्म का अर्थकर्ता और नियंत्रक उनका पुरोहित वर्ग यानी मौलवी समुदाय है। आम मुसलमान को धर्म का गहरा अध्ययन कर विशेषज्ञता प्राप्त करने और व्याख्या करने का अधिकार नहीं है। वे सिर्फ अनुयायी हैं और अंध अनुयायी होना ही उनकी नियति है। दूसरी संस्कृति के लोगों के साथ ताल-मेल बैठाने और सामाजिक मेल-जोल बढ़ाने की खुली छूट उन्हें नहीं है, जिसके कारण वे स्थानीय रूप से भी एक बस्ती बनाकर रहते हैं जिसकी दुनिया वहां के मूल निवासियों की दुनियां से अलग और गुप्त होती है और अनेक प्रकार के अटकलों को जन्म देती है। उनके धर्मगुरू आधुनिक शिक्षा के विरोधी हैं क्योंकि आधुनिक शिक्षा का आधार यूरोपीय बुद्धिवाह और तार्किकता है जो राजनीति और सामाजिक सरोकारों में वैयाक्तिक स्वतंत्रता, संविधान आधारित नियम-कानून और न्याय व्यवस्था का पक्षधर है। इसलिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षित मुसलमान वैज्ञानिक, प्राध्यापक, न्यायविद भी उनके  इन अवगुणों के सुधार के प्रति मुखर नहीं होते क्योंकि उन्हें कट्टरपंथियों द्वारा हत्या का भय हर घड़ी सताता रहता है। उनके ज्यादातर फतवे आधुनिक समाज को हास्यापद और अप्रासंगिक लगते हैं। औरतों के प्रति उनके रवैये संकीर्ण और प्रतिगामी है। इस्लाम की यह रूढ़िवादिता स्थानीय आबादी के रूढ़िवादी तबकों में भी जातीय अस्मिता की भावना को प्रतिक्रिया स्वरूप उकसाती है जिसका उदाहरण हमें कुछ वर्ष पहले नारवे के एक अतिवादी युवक के पिकनिक के दौरान मुस्लिम छात्रों पर गोलीबारी के रूप में मिलता है। रूस में, चीन में, फांस में भी यदा-कदा मुस्लिमों और गैर-मुस्लिमों के बीच दंगों की वारदातें दिखाई दिये। आज इराकी और सीरियाई इस्लामी राज्य के आतंकवादी गुटों द्वारा किये जा रहे जातीय संहार, बलात्कार और हत्याओं का यूरोपीय मीडिया जिस तरह इस्लाम विरोधी माहौल तैयार करने में लगा है, उसका अगर पढ़े-लिखे मुसलमानों द्वारा विश्व स्तर पर कारगर सकारात्मक हस्तक्षेप नहीं किया गया तो आगे विश्व को बहुत ही विस्फोटक स्थितियों का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि विश्व की पूंजी केंद्रित दमनकारी शक्तियां इनके मुकाबले के लिए हर तरह की दक्षिधपंथी शक्तियों को उभारेंगी और इस्तेमाल करेंगी।

विश्व में पूंजी का केन्द्रीकरण इतना तेजी से बढ़ रहा है कि पुराने उपनिवेशवादी और उन्नत औद्योगिक देशों की अर्थव्यवस्था खोखली होती जा रही है। आज उनके शासन के अधीन उपनिवेश नहीं हैं कि वे अपनी समस्याएं उनके ऊपर थोप दें। आज का नियंत्रण परोक्ष है। इसलिए वे अपने नव आर्थिक उपनिवेशों में राजनैतिक और सामाजिक उपद्रव और आंदोलन के माध्यम से अपने समर्थकों को गद्दी पर बैठाकर अपना हित साधने का प्रयास करते हैं। उनके वैश्वीकरण का यही निहित अर्थ और राज है।

पूरी दुनिया में मुसलमानों में आधुनिक मुक्त चिंतन और दूरदर्शिता का अभाव है। इनके नेतृत्व बुरी तरह दकियानूस हैं। अफगानिस्तान और इराक में इनके इस्तेमाल का पश्चिमी महाशक्तियों को व्यावहारिक अनुभव भी है। इसलिए ये उनके मोहरे आसानी से बन सकते हैं क्योंकि इनके पास कोई नई विश्व दृष्टि नहीं है।

**ईमानदारी से हम मौजूदा स्थिति के बारे में सोचें तो हम देख सकते हैं कि आंबेडकर का घोंघे पर सवार होना किसी सवर्ण बच्चे को हास्यास्पद लग सकता है। वह इस कार्टून का इस्तेमाल किसी दलित बच्चे को तंग करने के लिए कर सकता है। आंबेडकर के ठीक पीछे नेहरू का चाबुक लिए खड़े होना कार्टून को और भी जटिल बना देता है।**

ध्यान से देखें तो पृथ्वी का मानव समुदाय धीरे-धीरे अपने-अपने क्षेत्रीय पूर्वग्रहों से मुक्त होकर एक होने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। ये आसान नहीं है। अनेक शक्तियां परस्पर विरोधी हितों में सक्रिय हैं, पर पूरी मानवजाति में एकता की भावना का विकास भी काफी तेजी से हो रहा है। स्वास्थ्य, प्रदूषण प्रकृति के संरक्षण आदि जैसी समस्याओं से निपटने के लिए ज्ञान का परस्पर आदान-प्रदान और सहयोग की आवश्यकता को सभी महसूस कर रहे हैं, इस दिशा में सक्रियता बढ़ती जा रही है। यह भी महसूस किया जा रहा है कि पृथ्वी के संसाधनों के उपयोग में मितव्ययता बरती जाये। व्यक्ति का कोई भी दुख उसका सिर्फ अपना निजी दुख नहीं है, वह पूरी समष्टि का दुख है। जब तक पूरी समष्टि दुखों और तकलीफों से निजात नहीं पाती, कोई व्यक्ति भी तब तक दुख मुक्त नहीं हो सकता।

ऐसे में धर्म आधारित देशों की स्थिति अप्रासंगिक होती गयी है। वे इतने अशांत और अराजक हो गये हैं कि वे असफल राष्ट्र दिखते हैं। उदाहरण स्वरूप इजराइल और पाकिस्तान का नाम लिया जा सकता है। ये प्राकृतिक राज्य नहीं हैं। इनका जन्म ही वैमनस्य, विद्वेष और घृणा से हुआ है। इनके अस्तित्व को लगभग एक सदी होने को आया है, ये अशांत हैं और आत्म विघटनकारी क्रियाओं में लिप्त हैं। इसलिए चिंता होती है कि आखिर उनका क्या होगा जिन्होंने कभी अपने जीवन के उन्नत होने और समता का स्वप्न देखते हुए इन धर्मों को अपनाया था।

**रमेश राजहंस**
मो. 9820035673

रपट

# नरेन्द्र मोहन के सम्मान में गोष्ठी

गत दिनों हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि, आलोचक, नाट्यकार नरेन्द्र मोहन चिंतन दिशा के कार्यालय में पधारे। उन्हें सुनने व मुंबई के कवियों को सुनवाने का एक दुर्लभ अवसर अचानक हाथ लग गया। इस पुनीत अवसर पर डॉ. रामेश राजहंस की अध्यक्षता में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। नरेन्द्र मोहन ने दो सत्रों में तकरीबन बीस कविताओं का पाठ किया। उनकी कविताओं में यथार्थ और भावनाओं का बिंबात्मक संयोग अद्वितीय है। यही उनकी विशिष्टता है। अल्पकालिक सूचना के वाबजूद मुंबई के कवियों ने उनको सुनने के लिए न सिर्फ अपनी उपस्थित दर्ज कराई बल्कि सर्वश्री डॉ. रमेश मिलन, जुल्मीराम सिंह यादव, विभारानी, अशोक नीरद, मुस्तहसन अज्म, हरिमृदुल, प्रेमरंजन अनिमेष, राकेश शर्मा, रमन मिश्र, शैलेश सिंह, किरण वाडीवकर, संजय भिंसे, राजकुमार तृषित आदि ने अपनी-अपनी कविताओं का पाठ किया। इस अवसर पर सलाम विनरजाक, परवेज असलम, अजय रोहिला, मनोज मौर्या, एम.जे. दुवे भी गोष्ठी में उपस्थित रहे। गोष्ठी का संचालन हृदयेश मयंक ने किया। शैलेश सिंह ने आभार व्यक्त किया।

सलाम विन रजाक, नरेन्द्र मोहन, रमेश राजहंस, हृदयेश मंयक, माइक पर अजय रोहिला, असलम परवेज, अशोक नीरद, विभारानी, किरण वाडीवकर

– प्रस्तुति : अमरजीत सिंह (8286827311)

# मधुकर गौड़ गीत विधा के कवच– डॉ. रामजी तिवारी

'जिसमें सृजनशीलता, शब्द संपदा, क्षमता है, वही गीत लिख सकता है, ये साधना है जो ईश्वर प्रदत्त है। यदि गहन संवदेना नहीं है तो गीत नहीं बनेगा। इस कसौटी पर मधुकर गौड़ खरे उतरते हैं', ये विचार वरिष्ठ साहित्यकार डॉं. रामजी तिवारी ने सुप्रसिद्ध गीतकार मधुकर गौड़ के गीतों पर केंद्रित ग्रंथ 'गीताम्बरी' के लोकार्पण के अवसर पर कहे। मरुधारा एवं सार्थक साहित्य अकादमी के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित कांदिवली में संपन्न इस समारोह में संवेदनशील वरिष्ठ साहित्यकार विश्वनाथ सचदेव ने कहा कि 'गीत कभी समाप्त नहीं हो सकता, गीत मनुष्यता के साथ जुड़ा हुआ है गीतात्मकता कभी जीवन में खत्म नहीं हो सकती, कारण गीत मन, मस्तिष्क और जिंदगी का अनिवार्य हिस्सा है। वास्तव में गीत का संबंध अंतर्मन और आस्तित्व से है। मधुकर गौड़ गीत के पुरोधा हैं जिनकी जिद ने गीतों का एक आंदोलन चलाया। आज उनके सृजन को प्रणाम करने का दिवस है। आज भी उनके गीत ग्राह्य और स्वीकार्य हैं क्योंकि उनमें विविधता है। उन्होंने यह भी कहा कि संगीत गीत को व्यापकता देता है।' इस अवसर पर डॉं रमेश राजहंस, हृदयेश मंयक, नवीन चतुर्वेदी व अखिलेश मिश्र ने भी अपने विचार रखे। संचालन अनंत श्रीमाली ने किया।

## गीताम्बरी का लोकार्पण
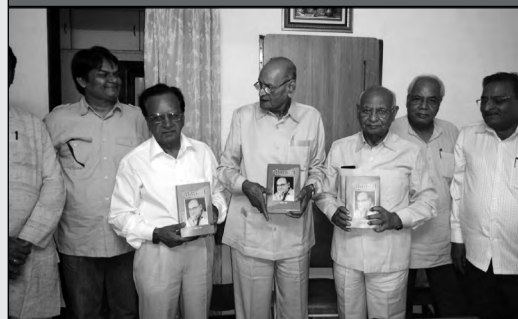
विश्वनाथ सचदेव, मधुकर गौड़, डॉ. रामजी तिवारी, डॉ. रमेश राजहंस, हृदयेश मयंक, व अनंत श्रीमाली

**कौशल किशोर**
(संस्मरण एवं कविता)

# मुद्राराक्षस
## अवसान सांस्कृतिक योद्धा का

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कथाकार, नाटककार व चिन्तक मुद्राराक्षस का निधन ऐसे समय में हुआ जो भ्रमों व उलझाव से भरा है। इस दौर के बारे में उनकी टिप्पणी थी कि यह जटिल व उलझा हुआ समय है। इसमें मनुष्यता के लिए खासतौर से उस समाज के लिए जिसे हाशिए पर ढकेल दिया गया है, ज्यादा बड़ा संकट है। वे इस हालत से असंतुष्ट थे पर जीवन की अन्तिम बेला में भी हताश-निराश कतई नहीं थे। कहते थे बदलाव होगा, पर यह समझना गलती होगी कि यह स्वतः स्फूर्त होगा। नहीं, इसके लिए विशेष कोशिश, सचेतन प्रयास करने होंगे, हमें अपने तौर-तरीके बदलने होंगे। मुद्रा जी में बदलाव के लिए ऐसी ही दृढ़ प्रतिबद्धता थी, अटूट संकल्प था और यही उनके सृजन का आधार था। यही कारण है कि संस्कृति की दुनिया में उनकी पहचान अपने प्रखर विचारों के लिए जाने वाले योद्धा की थी जिसका होना प्रकाश पुंज की तरह था जिससे लोगों को रोशनी मिलती थी। वे कितने जनप्रिय थे यह 14 जून 2016 को लखनऊ के विद्युत शवदाह गृह में देखने को मिला जब साहित्य व संस्कृति के क्षेत्र ही नही बल्कि समाज के दलित-शोषित सहित विभिन्न हिस्से के लोग बड़ी संख्या में आये और उन्हें अन्तिम विदाई दी।
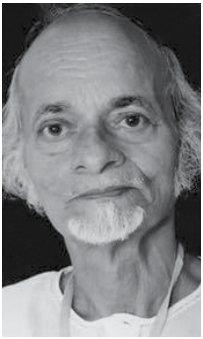
पिछले काफी अरसे से मुद्रा जी अस्वस्थ थे। शरीर साथ नहीं दे रहा था। कहीं आ-जा नहीं पा रहे थे। उनके रक्त में शुगर की मात्रा बढ़ जाती। रक्त चाप भी सामान्य नहीं रहता। अर्थात मौत दरवाजे पर लगातार दस्तक दे रही थी। पर मुद्रा जी उससे हार मानने को तैयार नहीं दिखते। दो-दो हाथ करने व उसे पटकनी देने के मूड में रहते। और इसमें सफल भी हो जाते। इस साल मई की बात है। मौत जिद कर बैठी थी।

बलरामपुर अस्पताल के डाक्टरों ने जवाब दे दिया। उन्हें मेंडिकल कॉलेज लाया गया। लगा मुद्रा जी बचने वाले नहीं। लगा मौत परास्त करके ही मानेगी। उनकी हालत बहुत खराब हो गयी थी। वे अचेत थे। बेहोशी की हालत थी। पर दूसरे दिन से मुद्रा जी चैतन्य होने लगे और चार दिनों के अन्दर घर आ गये। लेकिन इस बार वे मेडिकल कॉलेज भी नहीं पहुंच पाये। रास्ते मे ही.....। जिन्दगी और मौत के बीच जो जंग चल रही थी, 13 जून 2016 को उस पर विराम लग गया। हम उनका हाथ थामे रहे पर मुद्रा जी हाथ छुड़ा चल दिये किसी अनजाने सफर की ओर.....।

इस साल जून महीने की 21 तारीख को मुद्रा जी का 83वां जन्मदिन था। पिछले साल उनके जन्मदिन पर 'मुद्रा जी अपनों के बीच

**मुद्रा जी ने कलम को बुलेट की तरह इस्तेमाल किया। वे अक्सर कहते कि यह ऐतिहासिक पाप होगा, अगर हम चुप रहे। बदलाव का इतिहास रचने के लिए लड़ाई में उतरना जरूरी है। हमें इसलिए लिखना है ताकि जो लड़ रहे हैं, उनका भरोसा न टूटे। सामाजिक बदलाव की जो लड़ाई है, मुद्रा जी इसके विशिष्ट रचनाकार रहे, सांस्कृतिक योद्धा। न जाने कितने रूपों में अपने व्यक्तित्व को ढाला, तरह-तरह के हथियार गढ़े। कभी लेखक, चिंतक, रंगकर्मी, तो कभी आंदोलन के कार्यकर्ता और फिर चुनाव मैदान में उतर कर अपने हथियारों को आजमाना। आलोचना भी हुई।**

शीर्षक से एक बड़ा आयोजन लखनऊ में किया गया था। लेकिन इस बार हालत ऐसी नहीं थी कि उन्हें घर से बाहर ले जाया जाय। तय किया गया कि इस बार का आयोजन उनके घर पर ही किया जाय। उस दिन लोग जुटे। यहीं बाटी चोखा बने। वैसे मुद्रा जी इसके पक्ष में कभी नहीं थे कि उनके ऊपर कोई आयोजन हो। वे समझ रहे थे कि यह हमलोगों का स्नेह है इसलिए हमारे प्रस्ताव पर न तो हां कहा और ना। बस, मुस्कारा दिया। लेकिन हमारे दिल की भावना अन्दर ही रह गयी। एक सप्ताह पहले ही उन्होंने विदा ले लिया।

मुद्राराक्षस का जन्म लखनऊ के पास बेहटा गांव में 21 जून 1933 को हुआ था। उनका मूल नाम सुभाष चन्द्र आर्य था। परन्तु बातचीत के क्रम में उन्होंने बताया था कि उनका मूल नाम सुभाष चन्द्र वर्मा है। लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने एम. ए. किया। छात्र जीवन से ही वे वामपंथी आंदोलन व साहित्य व संस्कृति से जुड़ गये। सांस्कृतिक माहौल उन्हें विरासत के रूप में अपने घर में ही मिला। उनके साहित्यिक जीवन की शुरुआत कविता-लेखन से हुई। आरम्भिक दिनों में उन पर छायावादी कवियों का प्रभाव था। खासतौर से निराला की काव्य-शैली में उन्होंने कविताएं लिखी। पंत जी को पढ़ते हुए यह समझ बन गयी कि लेखन एकान्तवास की चीज है और उसका संबंध तंग गलियों व गंदी बस्तियों से नहीं बल्कि बाग-बगीचों से होना चाहिए। इसीलिए वे भीड़भाड़ वाले अपने मोहल्ले को छोड़ रचना के लिए वोटानिकल गार्डेन की झाड़ियों में आ जाते। घंटों यहीं रमे रहते। धीरे-धीरे यह भ्रम टूटता गया। इस दौरान पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन किया जिनमें टी एस इलियट, काफ्का, विलियम कालार्स आदि प्रमुख थे। यह दौर था जब हिन्दी साहित्याकाश में प्रयोगवाद व 'तार सप्तक' के प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय शीर्ष पर थे अर्थात हिन्दी साहित्य की सत्ता अज्ञेय के हाथों में थी। इसी काल में सुभाष चन्द्र आर्य मुद्राराक्षस बने जिसकी कथा बड़ी रोचक है।

उन्हीं दिनों सुभाष चन्द्र आर्य ने अज्ञेय के प्रयोगवाद के विरोध में तथा तथ्यगत उदाहरणों से अपनी प्रस्थापना को पुष्ट करता हुआ 'प्रयोगवाद की प्रेरणा' शीर्षक से लेख लिखा जिसमें प्रयोगवाद की प्रवृतियों की पड़ताल करते हुए यह स्थापित किया गया कि अज्ञेय के 'प्रयोगवाद' पर न सिर्फ पश्चिम का प्रभाव है बल्कि यह उसका अंधानुकरण व नकल है। यह आलेख उन दिनों लखनऊ से प्रकाशित पत्रिका 'युगचेतना' में छपा। इसका संपादन डा देवराज, हर्षनारायण और कृष्ण नारायण कक्कड़ करते थे। पत्रिका के संपादकों की समझ थी कि यदि यह लेख युवा सुभाष चन्द्र के नाम से छपा तो इसका न तो अज्ञेय पर खास असर होगा और न साहित्य के क्षेत्र में इसकी नोटिस ली जायेगी।

इस लेख को किसी ऐसे नाम से छापा जाय जो सबों का ध्यान आकर्षित कर सके। इसके लिए विशाखादत्त के सुप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस' नाम को उपयुक्त समझते हुए वह लेख इसी नाम से छपा। छपते ही यह न सिर्फ हिन्दी साहित्य जगत में काफी चर्चित हुआ बल्कि मुद्राराक्षस नाम भी चर्चा का विषय बना। इस तरह मुद्राराक्षस नाम अस्तित्व में आया और आगे मुद्रा जी इसी नाम से लिखने लगे। साहित्य की दुनिया में यह नाम लोकप्रिय हो गया। बाद में मुद्राराक्षस ने अज्ञेय के प्रयोगवाद पर कटाक्ष करते हुए 'अज्ञेय चालीसा' जैसी कविता लिखी। ये चंद बातें इसके उदाहरण हैं कि मुद्राराक्षस जनूनी तबियत के शख्स थे और उनके अन्दर बहुत शुरू से परजीवी विचारों का प्रतिवाद जैसी विशेषता रही जो बाद में सत्ताओं के विरोध में प्रकट हुई। वह सत्ता चाहे साहित्य की हो, सामाजिक सत्ता हो या राजनीतिक सत्ता, इनके प्रति आलोचनात्मक रुख मुद्रा जी की रचना और विचार के केन्द्र में आता गया जो उन्हें गहरे अध्ययन और चिंतन-मनन की ओर ले गया। इसी दौर में वे कविता के साथ कहानी व अन्य विधाओं की ओर मुड़े। उन्हें यह महसूस हो रहा था कि जो वह कहना चाहते हैं, उसके लिए कविता पर्याप्त नहीं है। 'सुबह, दुपहर और शाम' इसी दौर की कहानी है जो 'प्रसाद' में 1953 में छपी जिसका संपादन अमृत लाल नागर ने किया था।

मुद्राराक्षस ने 1950 के आसपास लिखना शुरू किया था। इस तरह उनकी सृजन यात्रा काफी लम्बी रही जिसे देखते हुए उनके रचनात्मक जीवन में तीन मोड़ को लक्षित किया जा सकता है। पहला मोड़ है साहित्य की दुनिया में प्रवेश और फिर जब वे लखनऊ से 1955 में कोलकता गये। वहां उन्होंने 1958 तक 'ज्ञानोदय' में बतौर सहायक संपादक काम किया। फिर 1958 से 60 तक कोलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका 'अणुव्रत' का संपादन किया। उनका पहला उपन्यास 'लिबिडो' तथा पहला नाटक 'डमी उवाच' इसी दौर में लिखा गया। 1962 के आसपास वे दिल्ली आ गये और 1976 तक वे आकाशवाणी, दिल्ली में नौकरी की। इसे उनके जीवन का दूसरा मोड़ माना जा सकता है। जहाँ उन पर मार्क्सवाद, नक्सलवाद, अमरीकी साम्राज्यवाद के खिलाफ वियतनामी जनता के अदम्य संघर्ष का गहरा प्रभाव पड़ा, वहीं एस. ए. डांगे व एच एल परवाना जैसे वामपंथी नेताओं और राम मनोहर लोहिया जैसे समाजवादी विचारकों का संग-साथ मिला जिसकी उनके वैचारिक व्यक्तित्व को गढ़ने व निखारने में बड़ी भूमिका थी। उन्होंने प्रसारण संस्थान में पहला मजदूर संगठन बनाया। कलाकारों, लिपिकों, चतुर्थ श्रेणी व तकनीकी कर्मचारियों की मांगों को लेकर आंदोलन चलाया। इमरजेन्सी के दौरान यह काम उनकी साहसिकता का परिचायक है।

मुद्राराक्षस ने शुरुआती दिनों में एब्सर्ड कहानियां लिखी। मध्यवर्गीय जीवन बोध, शहरी जीवन की आपाधापी व खोखलेपन और स्त्री-पुरुष संबंध इनकी कहानियों के मुख्य विषय थे। कहानियों में भाषा और शिल्प के स्तर पर चौंकाने वाली मुद्रा प्रधान थी। 'नी' और 'हैंगर' ऐसी ही कहानियां थीं जिनकी चर्चा तो खूब हुई पर बाद में मुद्रा जी स्वयं मानने लगे कि ये सतही यथार्थ की कहानियां हैं। लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक और ट्रेड यूनियन आंदोलन तथा देश-दुनिया के संघर्षों से उनका जुड़ाव बढ़ता गया, उनके कथा साहित्य की विषय-वस्तु

में भी परिवर्तन हुआ। उन्हीं दिनों व्यवस्था से मोहभंग, सत्ता के दमन और प्रतिरोध के यथार्थ को सामने लाती उनकी चर्चित कहानी 'दांत या नाखून या पत्थर' 'सारिका' में छपी। इसी दौर में उन्होंने 'भगोड़ा' जैसा उपन्यास लिखा। 'शांतिभंग' की मानसिक पृष्ठभूमि भी तैयार हुई।

1976 में मुद्राराक्षस की घर वापसी हुई। वे आकाशवाणी से त्याग पत्र देकर लखनऊ आ गये। जब लखनऊ से कोलकता गये थे, उस वक्त वे 22 साल के युवा लेखक थे लेकिन जब लखनऊ लौटे, इस समय वे 43 साल के प्रौढ़ लेखक बन चुके थे। उनकी कई कहानियां, उपन्यास व

नाटक आदि छप चुके थे। वे अपने नाटक 'मरजीवा' के निर्देशन के द्वारा निर्देशन व अभिनय के क्षेत्र में भी प्रवेश कर चुके थे। अर्थात जब उनकी लखनऊ घर वापसी हुई उस वक्त काफी चर्चा अर्जित कर चुके थे। उसके बाद से यह शहर उनकी कर्मभूमि बन गया। यहां के सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों के केन्द्र में रहे। यह उनके जीवन का तीसरा पर अत्यन्त महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ।

गौरतलब है कि इमरजेन्सी के बाद लोकतांत्रिक आकांक्षाएं जिस प्रबल ढंग से अभिव्यक्त हुई थी, उसने नयी सामाजिक शक्तियों के अभ्युदय की जमीन तैयार की। स्त्री-विमर्श और दलित विमर्श जैसे नये विमर्शों की शुरुआत हुई। इसमें मुद्राराक्षस की हस्तक्षेपकारी भूमिका थी तथा मार्क्सवाद व आम्बेडकरवाद के सहमेल से रेडिकल आम्बेडकरवादी रचनाकार के रूप में उनकी पहचान बनी। दलित मुक्ति का प्रश्न, ब्राहमणवाद का विरोध, धर्मग्रन्थों की मीमांसा जैसे विषय उनके चिन्तन में केन्द्रीयता ग्रहण करते गये। यह ऐसा मोड़ था जब समाज की आलोचना का सार संकलन आलोचना के समाजशास्त्र के रूप सामने आया जहां मुद्राराक्षस परम्परावादियों व कर्मकाण्डियों के लिए अपच का कारण तो बने ही, पारम्परिक प्रगतिशील आलोचना के लिए भी उन्होंने चुनौती पेश की। यहां इस बात की चर्चा करना प्रासंगिक होगा कि यही मोड़ है जब मुद्राराक्षस उस बिरादरी की भी कड़ी बने जिसे हिन्दी कथा साहित्य में त्रयी के रूप में जाना जाता है।

इलाहाबाद जहां निराला, पंत और महादेवी से बनी हिन्दी कविता की त्रिवेणी के रूप में ख्यात है, वहीं, लखनऊ हिन्दी कथा साहित्य की त्रयी के लिए मशहूर रहा है जिसमें यशपाल, अमृतलाल नागर और भगवती चरण वर्मा शामिल रहे। यहां की विशेषता है कि त्रयी की यह परम्परा श्रीलाल शुक्ल, कामतानाथ और मुद्राराक्षस के रूप में आगे बढ़ी।

जैसे यशपाल, भगवती चरण वर्मा और अमृतलाल नागर ने कथा साहित्य को अपनी अमर कृतियों से समृद्ध किया, उसी तरह श्रीलाल शुक्ल, कामतानाथ और मुद्राराक्षस का भी अवदान रहा। कामतानाथ का उपन्यास 'कालकथा' तथा श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' हिन्दी साहित्य की कालजयी कृतियां हैं। भले ही मुद्राराक्षस के नाम ऐसी कृतियां न हो परन्तु उन्होंने 'शांतिभंग, दण्डविधान, हम सब मंसाराम जैसी औपन्यासिक कृतियों के साथ दर्जनों कहानियों की रचना की जो खासे चर्चित रहीं। 'शांतिभंग' इमरजेन्सी के दौर की कथा है जब लोकतांत्रिक अधिकारों का अपहरण कर लिया गया था। वह इस भ्रष्ट व जनविरोधी तंत्र के ताने-बाने का पर्दाफाश करती है। वहीं, उनका उपन्यास 'हम सब मंसाराम' और 'दण्डविधान' दलितों-वंचितों की दारूण स्थितियों का चित्रण ही नहीं करता बल्कि सत्ता व सामंती व्यवस्था को बदल देने का आख्यान और मुक्ति - स्वप्न भी रचता है।

मुद्राराक्षस इस मायने में अपनी त्रयी में थोड़े अलग व विशिष्ट नजर आते हैं कि उन्होंने कथा साहित्य के साथ अन्य विधाओं में भी सृजन किया। कहानी व उपन्यास के साथ कविता, आलोचना, पत्रकारिता, संपादन, नाट्य लेखन, मंचन, निर्देशन जैसे रचना व विचार के विविध क्षेत्रों में उनका अवदान रहा। जातिवाद व साम्प्रदायिकता जैसे ज्वलंत सवालों पर विचारोत्तेजक लेखन किया।

धर्म ग्रन्थों की मीमांसा के साथ उसका पुनर्पाठ प्रस्तुत किया। समाज की आलोचना करते हुए आलोचना का समाजशास्त्र विकसित किया। शहीद भगत सिंह के जीवन पर उन्होंने अदभुत रचनाएं की। चित्रकला, मूर्तिकला एवं संगीत में उनकी रुचि थी। अनेक नाटकों, वृतचित्रों का निर्माण और निर्देशन उन्होंने किया। अनगिनत कृतियों की रचना की। मुद्राराक्षस के रचना संसार पर गौर करें तो पाते हैं कि वे सृजन को कर्म के जिस धरातल तक विस्तार देते हैं, वह हिन्दी समाज में अपवाद जैसा है। इसकी वजह ही उनकी जनप्रियता साहित्य के दायरे को लांघ जाती है। वह समाज के बड़े दायरे में अपने

पाठक व प्रशंसक तैयार करती है।

मुद्राराक्षस के सृजन और विचार के केन्द्र में आम आदमी है जो दलित, शोषित, वंचित, कामगार है, जिसे सत्ता का शिकार बनाया जाता है। गैरबराबरी की इस व्यवस्था में उसे लगातार अपमान, दुख व जातिदंश झेलने पड़ते हैं। सब कुछ उसके श्रम से निर्मित होता है पर वह हाशिए पर ढकेल दिया गया है, वह विस्थापित है। पर वह निरीह नहीं बल्कि संघर्षरत, युद्धरत आदमी है जिसके अन्दर बदलाव की उत्कट आकांक्षा है। इसी बुनियाद पर खड़े होकर उन्होंने समाज को देखा, परखा, समझा और व्यक्त किया।

अपनी कहानियों में मुद्रा जी जहां एक तरफ व्यवस्था के चरित्र, उसकी अमानवीयता व क्रूरता को सामने लाते हैं, वहीं आम आदमी के अन्दर पनप रहे विद्रोह और प्रतिरोध के साथ बदलाव की उत्कट चाह को अभिव्यक्त करते हैं। दुबले पतले और छोटी कद-काठी वाले मुद्रा जी के अन्दर जिस आग और ताकत का हम अनुभव करते हैं, वह इसी आदमी की है। इस जांबाज योद्धा सर्जक के पास जबरदस्त मेधा और मजबूत कलेजा था जो 'चूहे' , 'गुरिल्ला', 'युद्ध', 'विस्थापित' और 'मुठभेड़' जैसी कहानियों का सृजन ही नहीं करता बल्कि सत्ता और समय से मुठभेड़ भी करता है। भारतीय सत्ता के जितने भी मॉडल हैं, नेहरू से लेकर मोदी तक, मुद्रा जी ने इनका क्रिटिक रचा। जिन प्रलोभनों व पुरस्कारों के लिए साहित्यकार व बौद्धिक अवसरवादी समझौता करते हैं, मुद्रा जी ने उन्हें ठेंगा दिखायां।

उन्होंने पुरस्कारों की परवाह नहीं की और हमेशा मुक्तिबोध के शब्दों में 'सत्य के साथ सत्ता का युद्ध' में वे सत्य के लिए जनता के पक्ष में अडिग रहे। उनका दलित विमर्श अस्मिता व पहचान से बहुत आगे वर्ग और वर्ण के समूल उन्मूलन पर आधारित था और उनकी इस मामले में साफ समझ थी कि भारतीय व्यवस्था जिस वैचारिक व दार्शनिक आधार पर खड़ी है, वह ब्राहमणवाद है। इस पर चोट किये बिना बराबरी के समाज की दिशा में एक कदम भी नहीं बढ़ाया जा सकता।

'धर्मग्रन्थों का पुनर्पाठ' और 'आलोचना का समाजशास्त्र' जैसी कृतियां उनके इसी वैचारिक संघर्ष की देन है। अपने इसी संघर्ष की वजह गैर दलित होने के बावजूद मुद्राजी दलितों के बीच सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित रहे। वे गिने-चुने या कहिए अकेले गैर दलित लेखक थे जिन्हें दलित समाज अपना गौरव मानता था, अत्यधिक स्नेह रखता था तथा उन्हें दलित रत्न और शूद्राचार्य जैसे अनगिनत सम्मानों से विभूषित किया।

मुद्रा जी ने कलम को बुलेट की तरह इस्तेमाल किया। वे अक्सर कहते कि यह ऐतिहासिक पाप होगा, अगर हम चुप रहे। बदलाव का इतिहास रचने के लिए लड़ाई में उतरना जरूरी है। हमें इसलिए लिखना है ताकि जो लड़ रहे हैं, उनका भरोसा न टूटे। सामाजिक बदलाव की जो लड़ाई है, मुद्रा जी इसके विशिष्ट रचनाकार रहे, सांस्कृतिक योद्धा। न जाने कितने रूपों में अपने व्यक्तित्व को ढ़ाला, तरह-तरह के हथियार गढ़े। कभी लेखक, चिंतक, रंगकर्मी, तो कभी आंदोलन के कार्यकर्ता और फिर चुनाव मैदान में उतर कर अपने हथियारों को आजमाना। आलोचना भी हुई। पर परवाह नहीं। उनकी वैचारिकी इसी संघर्ष से निर्मित हुई। उनकी यह लड़ाई बदलाव के लिए थी, एक बेहतर समाज व्यवस्था की लड़ाई थी। अपनी बेबाक राय के लिए मशहूर रहे।

कई बार वे प्रगतिशीलता के पारम्परिक चिन्तन से टकराते हुए दिखते हैं। प्रेमचंद की आलोचना करते हुए उन दलितवादी चिंतकों के साथ खड़े हो जाते है और प्रेमचंद की कृतियों को जला देने के दलित लेखकों के अभियान का समर्थन तक कर डालते हैं। अपने अतिरेक और इस प्रक्रिया में वे जो नया गढ़ते हैं, हमारी उनसे असहमति हो सकती है लेकिन इस वैचारिकी से निसन्देह प्रगतिशील चिन्तन के क्षितिज को नया विस्तार मिला। अपनी इन्हीं खूबियों की वजह से मुद्राराक्षस जन प्रतिपक्ष के ऐसे रचनाकार रहें जो हमारे लिए न सिर्फ महत्वपूर्ण थे बल्कि जरूरी भी।

यह मुद्रा जी के व्यक्तित्व के भीतर की लोकतांत्रिकता थी कि तमाम मुद्दों पर गंभीर मतभेद के बावजूद कभी वह मनभेद नहीं बन सका। बीते चार दशक के उनके साथ के दौरान उनसे खूब बहसें हुईं, पत्र-पत्रिकाओं में अखाड़े के पहलवानों की तरह हम भिड़े, एक-दूसरे के विचारों का खण्डन-मण्डन किया, हमारे बीच अनेक बार ऐसे वाद-विवाद के मौके आये जब लगा अब संवाद बन्द हो जायेगा। लेकिन अगले क्षण या अगले दिन तक सब सामान्य जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यही कारण है कि हम सभी उन्हें बेहद प्यार करते और उससे भी ज्यादा उनका स्नेह हमें मिलता। भले ही उनका अपना परिवार बहुत बड़ा न हो, उसमें जीवन संगिनी इन्दिराजी, बेटे रोमी शिराज व रोमेल शिराज, बहू ऋतुपर्णा व पोते-पोती और उनका कुत्ता जिसे वे बेहद प्यार करते थे, शामिल हों लेकिन उनके इर्द-गिर्द अपने लोगों, संघर्ष के साथियों, विशाल पाठकों व प्रशंसकों, रचनाकार मित्रों से बनी बड़ी दुनिया थी।

दुर्विजयगंज की वह गली जहां मुद्रा जी का घर है और जहां से उनकी अन्तिम यात्रा शुरू हुई, बीते एक साल से हमारी दिनचर्या का हिस्सा बन गई थी। याद आता है उनका अन्दाज कि हम जब भी उनके घर पहुंचते वे आगे बढ़कर अभिवादन करते, पूरे जोश से हाथ मिलाते। उस वक्त उनके चेहरे पर गजब का उत्साह, अदभुत चमक देखी जा सकती। विदा करते समय का साथीपन की भरपूर उष्मा से भरा भाव - चलने-फिरने की तकलीफ के बावजूद उनका गेट तक आना और प्यार से लबरेज बंधी मुट्ठी के साथ दहिना हाथ उठाना - तो जैसे भूलता ही नहीं।

**कौशल किशोर**
मो. 8400208031

## कविता...

मुद्राराक्षस की यह कविता बलबीर सिंह के संपादन में दिल्ली से निकलने वाली पत्रिका 'प्रतिबद्ध कविता' के पहले अंक में छपी थी। यह अंक सितम्बर 1976 जो पाब्लो नेरूदा की तीसरी पुण्यतिथि थी, उस अवसर पर प्रकाशित हुआ था।

# मेरा शब्द

वह मेरा ही था
मेरा अपना एक शब्द
जाने कब
बगावत पर आमादा हो गया था।
एक समूची लड़ाई मुझे लड़नी पड़ी
अपने उस शब्द से।
एक बार ऐसा लगा
अगर मैं हावी न हुआ
तो वह मुझे मार लेगा।
वह सचमुच मुझे मार लेता
इसीलिए
एक बेहद खूनी लड़ाई
मुझे लड़नी पड़ी उससे।

हैरत है
उस लड़ाई में
वह कितना अकेला था
और तमाशाई
कंधों से कंधा भिड़ाए
इस छोटी सी
लेकिन निर्णायक जंग को
घेरे से बाहर
न निकलने देने के लिए
पूरी तरह चैकन्ने।

शायद उसने आखिरी बार
फिर उठने की कोशिश की हो
उफ कितनी जान होती है
किसी दुबले से दुबले
शब्द की पसलियों में
कितनी आग होती है
एक नन्हें से लफ्ज का
सूज गई आँखों में –
कितनी अपराजेय दृष्टि !

शायद उसने आखिरी बार
बेदम होने से पहले
थूका हो
भले ही खून –
हैरत है
उस मासूम से दिखने वाले
एक नन्हें से शब्द से
कितनी हिंसक लड़ाई मुझे लड़नी पड़ी
तभी वह गिरा।

तमाशाई छट गए।
लड़ाई में रौंदी हुई घास पर
फटी हुई कमीज की
एक आस्तीन
घिसी हुई चप्पलों की एक जोड़ी
और मेरा वह हारा हुआ शब्द
मुट्ठियों में
नुची हुई घास का गुच्छा दबाए
और गहरी खामोशी–
और–
खामोशी फिर उसी के पास बैठी है !

यह सब शायद
उस दिन शुरू हुआ
जिस दिन
एक नए कोट की आस्तीन में
बाँह डालने के लिए
मैंने उसकी मदद चाही।
मैंने उसके नाम से पुकारा,
वह हिला नहीं।
मैंने सोचा
शायद वह अपना नाम भूल गया हो
या अपनी औकात !
बहुत झकझोरने पर/सिर्फ
एक बात उसने कही –
जिस तरह यह कोट
तुम्हारी मजबूरी है
उसी तरह मेरी लाचारी है
यह खामोशी
तुम्हें शायद पता नहीं,

मैंने उस जिद्दी शब्द को समझायाः
खामोशी/हुक्म उदूली से ज्यादा बड़ा जुर्म है
क्योंकि खामोशी
अक्सर बगावत की संकेत लिपि होती है।
मैंने समझा
इतने पर जरूर डरेगा वह जिद्दी
लेकिन वह हँसा और फिर खामोश हो गया।

मैं शर्मिन्दा हूँ कि
इतनी छोटी लड़ाई मैंने लड़ी
और वह भी
सिर्फ एक अदना से लफ्ज की
खामोशी के खिलाफ
और अब जबकि वह जिद्दी लफ्ज
घायल पड़ा है
मुझे लगता है
एक थकावट मुझे भी घेर रही है
या एक खामोशी !

नहीं, मैं उस शब्द के साथ नहीं हूँ
मैं शपथ लेकर कह सकता हूँ
मैं उस जिद्दी लफ्ज का दुश्मन हूँ !
यकीन करो
भीड़ में खड़े लोगों,
मैं उसका दुश्मन हूँ
लेकिन मैं करू क्या
इतनी बड़ी दुनिया में
मुझे हारा हुआ
वही एक जिद्दी शब्द मेरा था
कुसूर मेरा नहीं
शब्द का है
क्या आप यकीन करेंगे ?

– मुद्राराक्षस

**हृदयेश मयंक**
(संस्मरण, कहानी एवं कविताएं)

# मीरा श्रीवास्तव

## एक विरले व्यक्तित्व का जाना

**मीरा जी एक बड़े अधिकारी पिता की पुत्री और उतने ही सक्षम अधिकारी की पत्नी थीं पर उनके व्यक्त्वि पर उन रुतबों का तनिक भी प्रभाव नहीं था। उनकी सहजता और मितभाषिता उनके व्यक्त्वि का अनोखा पक्ष था। अमूमन अधिकारियों की पत्नियां अधिकारियों से कम रुआबदार नहीं होतीं। इस दुनियां में रुतबे के प्रदर्शन की होड़ देखी जाती है। (पर मीरा जी को प्रदर्शनप्रियता छू नहीं पायी थी) दरअसल वे दोनों पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक के रूप में ही दिखे। जो है उसी में तृप्त व संतुष्ट गृहिणी परिवार की लक्ष्मी मानी जाती है।**

मैंने उन्हें जब से देखा और जाना उन्हें एक विरल गृहणी व गंभीर ममत्व भरी भारतीय स्त्री के रूप में पाया। वे जितनी उदार व व्यवहार कुशल महिला थीं उनके पति उतने ही ढृढ़ अनुशासन के पाबंद व्यक्ति के रूप में मिले। मैं व्यक्तिगत रूप से भाई विजय का आभारी हूं जिन्होंने विनोद कुमार श्रीवास्तव व कमलाकांत त्रिपाठी के मुंबई ट्रांसफर होकर आने की प्रथम खबर दी। उन दिनों पी.बी. एच. में हम मुंबई जनवादी लेखक संघ के साथी नियमित गोष्ठियां करते थे। हमारे आमंत्रण पर वे दोनों उस शनिवार पीपल्स बुक हाऊस पधारे।

हिंदी, उर्दू, मराठी के अनेक कवि, कथाकार नियमितरूप से उस गोष्ठी में आया करते थे। मुझे याद है कि गोष्ठी की अध्यक्षता विनोद कुमार श्रीवास्तव ने की थी और कमलाकांत त्रिपाठी जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। उस दिन से लेकर आज तक दोनों मूर्धन्य लेखकों का रिश्ता हम मुंबईवालों के साथ अटूट सिद्ध हुआ। मुंबई की अन्य गोष्ठियों, साहित्यिक समारोहों में यह रिश्ता प्रगाढ़ होता गया। साहित्य से शुरू हुआ यह संबंध धीरे-धीरे व्यक्तिगत सुखों-दुखों का रिश्ता बन गया। दोनों मुंबई के साथियों की ताकत और उम्मीद बनते गये। जब हम श्रीवास्तव जी के घर जाते मीरा जी का आतिथ्य भरा प्रेम छलक जाया करता। हमे थका हुआ देख वे तरह-तरह के नाश्तों से स्वागत करतीं और सपरिवार घर आने का दावत देतीं। घर में बीमार सासु की सेवा-टहल करते हुए किसी अधिकारी की बीवी की भूमिका व साहित्यिकों के जमावड़े का भार वे कैसे वहन करतीं, इसका भान हमें उन्होंने कभी नहीं होने दिया। हम झिझकते, पर वे हमारे मन के भाव को पहुंचते ही पढ़ लिया करतीं। श्रीवास्तव जी समय के पाबंद व वायदे के पक्के की भूमिका में हमेशा मिलते। हम लोग उनसे उतनी दूरी बनाये रखते जितनी प्रायः रखी जाती है, छोटे और बड़ों के बीच। विनोद जी निहायत कर्तव्यपरायण अधिकारी, पर एक मददशील इंसान के रूप में हमारे मन के गहरे तक स्थान बनाते गये। उनकी कर्तव्यपरायणता के किस्से साहित्य जगत में फैलते रहे पर साथ में यह भी कि जब कोई भी बड़ा लेखक मुंबई में होता था वह पता करने पर विनोद जी के घर पाया जाता। मीरा जी लेखकों को भरपूर स्नेह देतीं, यही कारण था कि लोग निःसंकोच उनके डेरे पर पहुंच जाते और प्रवास के सारे दिन आनंदित होते रहते। बहुत दिनों तक हम यह जान भी नहीं पाये कि मीरा जी में एक कवि, कथाकार भी है। विनोद जी की कविताएं हमें प्रिय थीं उन्हें हम पढ़ते रहे चर्चा भी करते रहे। उनके पिताजी जब मुंबई आये तो उनकी कहानियों पर चर्चा गोष्ठी रखी गई। उन्ही दिनों हमें पहली बार पता चला कि मीरा जी कवियत्री हैं और कथाकार भी। उनकी कहानी कथादेश में छप चुकी थी। पिता जी की कहानियों पर मुझे आलेख लिखना था। मीरा जी ने मुझे बताया था कि पिता जी प्रारंभिक जीवन से ही न सिर्फ कहानियां लिखते रहे हैं बल्कि उन्होंने राम लीलाओं में भूमिका भी अदा की थी। कहानियों पर बातचीत के दौरान उनकी साहित्यिक

अभिरुचि व विचारों से मैं अवगत हुआ। चिंतन दिशा का वे एक-एक शब्द पढ़तीं और अपनी महत्वपूर्ण राय से हमें अवगत करातीं। विनोद जी हमेशा कमियों पर चर्चा करते पर वे साधनविहीनता के वाबजूद जो कुछ संभव हो रहा था उसकी तारीफ करतीं। विनोद जी जब भी कड़क होते वे सामने तो कुछ नहीं बोलतीं पर विनोद जी से बाद में चिट्ठियों का जिक्र करतीं और चिंतन दिशा की तारीफ में आये पत्रों को पढ़कर सुनाया करतीं। हम जब भी उनसे मिलते वे बच्चों का हालचाल पूछतीं और मेरी कविताओं और लेखन पर चर्चा करतीं। हमारे बेटे की शादी में न सिर्फ शरीक हुईं बल्कि बहू देखने भी घर आईं। चिंतन दिशा के लिए तमाम अनुनयों के बाद उनसे सिर्फ एक बार कुद कविताएं व एक कहानी हम हासिल कर सके।

नोएडा में रहते हुए भी हम उनसे संपर्क में रहें। जब बीमार पड़ीं तब न चाहते हुए भी उन्हें मुंबई आना पड़ा। बीमारी की गंभीरता और परिणाम से वाकिफ होते हुए भी उन्होंने अपने चेहरे पर सिकन नहीं आने दिया। हमारे पहुंचते ही वे बिस्तर से उठकर सामान्य दिखते हुए बाहर हम लोगों के साथ बैठ जाया करतीं। श्रीवास्तव जी से अक्सर कहतीं कि उनके जीवन में 17 तारीख का बड़ा महत्व है। उनका जन्मदिन,उनकी शादी का दिन और अब तो निर्वाण दिवस भी 17 ही हो गया। 16 तारीख की शाम जब वे गंभीर अवस्था में हॉस्पिटल ले जाई गईं, विनोद जी विफर पड़े 'वो तो 16 को ही जा रही हैं ऐसा कैसे हो सकता है।?' वे उनके सिर पर हाथ रख उन्हें सहज जाने की अनुमति भी दे आये। उन्होंने आंखे खोल विनोद जी से आंखों ही आंखों में संवाद भी किया संभवतः कुछ हटवाने का संकेत भी।

मुझे 17 तारीख को मुंबई से बाहर जाना था। 16 तारीख की रात 12 बजे तक हम असमंजस में झूलते रहे। पर वे अपने विश्वास के बल पर 16 तारीख ले गईं और जब हम रास्ते में ट्रेन में थे उनके निधन की दुखद खबर विनोद जी ने दी। मीरा जी एक बड़े अधिकारी पिता की

मीरा श्रीवास्तव
(17.5.1952-
17.11.2015)

पुत्री और उतने ही सक्षम अधिकारी की पत्नी थीं पर, उनके व्यक्तित्व पर उन रुतबों का तनिक भी प्रभाव नहीं था। उनकी सहजता और मितभाषिता उनके व्यक्तित्व का अनोखा पक्ष था। अमूमन अधिकारी की पत्नियां अधिकारियों से कम रुआबदार नहीं होतीं। इस दुनियां में रुतबे के प्रदर्शन की होड़ देखी जाती है। दरअसल वे दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में ही दिखे। जो है उसी में तृप्त व संतुष्ट गृहिणी परिवार की लक्ष्मी मानी जाती है। वे वाकई गृह लक्ष्मी थीं। विनोद जी के जीवन में दुख और तकलीफों का एक सिलसिला प्रारंभ से ही चलता आ रहा था। बहन की बीमारी, फिर मां का बिस्तर पर चले जाना, और वह भी कई वर्षों तक, उन्होंने परिवार की सेवा का गुरुत्तर भार स्वयं अपने कंधों पर उठा रखा था। सौरभ व गौरव की पढ़ाई व उनकी देखभाल का जिम्मा उन्हीं पर था। अब जब दोनों बेटे सक्षम व बहुएं सेवाभावी हैं, उनकी देखरेख के लिए उपलब्ध थीं तब उनका इस तरह चुपचाप जाना पूरे घर को पीड़ित कर गया।

पिछले पांच छः वर्षों की यातना को वे बहुत धैर्यपूर्वक सहती रहीं। उनका चुप रहना विनोद जी की पीड़ा को और भी बढ़ाता रहा। जसलोक और न जाने कहां-कहां उनका इलाज होता रहा यह जानते हुए भी कि बीमारी लाइलाज है। बेटों, बहुंओं की निगरानी व सच को जानते हुए भी स्वीकार न कर पाने की पीड़ा उनके चेहरों से साफ झलकती थी। स्वस्थ रहते हुए उन्होंने आवासीय महिलाओं के बीच एक अलग तरह की लोकप्रियता हासिल की थी। सार्वजनिक समारोहों की संयोजिका व कुशल वक्ता के रूप में महिलाएं उनका बड़ा आदर करतीं थीं। उनमें उनके सेवक हरी के प्रति उतना ही स्नेह था जितना दोनों बेटों पर। हरी को बचपन से उन्होंने पास रखा था। उसे गले की किसी बीमारी के इलाज के लिए उसके मां-बाप श्रीवास्तव जी के पास छोड़ गये थे। हरी परिवार का हिस्सा हो गया था। कभी वह रूठता तो वे उसे भी मनातीं।

आज जब मीरा नहीं हैं उनको गुजरे तकरीबन एक वर्ष बीत रहा है हम उन्हें याद कर रहे हैं और उनकी डायरी से कुछ कविताएं व कहानी चुनने के दौरान उन्हें देख रहे हैं, तब ज्ञात हो रहा है कि मीरा जी एक सफल कवियत्री व कथाकार भी थीं। उनके इस पक्ष को भी उन्होंने कभी हावी नहीं होने दिया। वे यदि चाहतीं तो उस दौर की ऐसी कोई पत्रिका नहीं थी जिसमें वे न छप सकती थीं। सारे संपादक, कवि, समीक्षक उनकी मेहमाननवाजी के कायल हो चुके थे। उन्होंने न तो परिचय का लाभ उठाया और न ही श्रीवास्तव जी के रिश्तों का इस्तेमाल ।ऐसा वही कर सकतीं थीं। न जाने वे कौन सी मीरा थीं जिनकी आंखों में लगा ममीरा सब को प्रेम व ममत्व से देखने को विवश करता था। उनकी आत्मा की शांति की मैं चिंतन दिशा परिवार की ओर से कामना करता हूं।

# नित्यकर्म

रोज की तरह दिन के नित्यकर्म पूजा-पाठ निपटाए जाने से शुरू हुए। स्नान-ध्यान की क्रिया नियमपूर्वक पंडित रविशंकर ने सपंन्न की। विष्णु के वे परम भक्त थे। अतः धूप-दीप, नैवेद्य, पूजा अर्चना के अभिन्न अंग थे। विष्णु सहस्रनाम का पाठ नियमपूर्वक करते थे। भोलू उनकी इस दिनचर्या का खास ख्याल रखता था। व्यवधान होने पर क्रोध की जगह पंडित जी दुखी ज्यादा होते थे। अतः भोलू दिन की शुरुआत किसी भी तरह किसी को दुख देकर नहीं करना चाहता था। इसलिए हमेशा सावधान रहता था।

छोटे-बालकों को हिंदी, संस्कृत व्याकरण पढ़ाने का काम पंडित जी किया करते थे। वही उनकी रोजी-रोटी का सहारा था। एक तो विद्या दान का कार्य, दूसरे नित्य अबोध बालकों के साथ ने उनमें स्वतः ही एक अनजानी आचरण की दृढ़ता का संचार कर दिया था। अनाचार अत्याचार, अन्याय का विरोध करने के अपने ही तरीके उन्होंने ईजाद कर लिए थे। वैसे भी सांसारिक ऊहापोह से वे मुक्त हो ही चुके थे। पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था। बच्चे बड़े होकर अपनी-अपनी दुनियां में रम गये थे। उनका संसार इस छोटे से घर व बच्चों में सिमटकर रह गया था। बच्चों की किलकारी, संसार से उनका अपने अबोध अस्त्रों से साक्षात्कार व उनका पूजा पाठ यही उनकी पूंजी थी। इस सबमें भोलू उनका नित्यप्रति का साथी था। वातावरण व साथ के असर ने उस पर भी अपना प्रभाव डाला था।

पंडितजी के साथियों में कृपाशंकर, भोलाराम, राममनी राय आदि प्रमुख थे। चूंकि ये सब अपने संयुक्त परिवारों में रह रहे थे अतः एक तरह से निवृत्त गृहस्थाश्रम में बने हुए थे। कभी पत्नी की समस्या तो

कभी नाती-पोतों की समस्या तो बड़ी उम्र में हुए पुत्र-पुत्रियों की समस्या, परंतु फिर भी चारों में बड़ा सौहार्द था। दिन भर में जब तक घंटा भर साथ बैठकर दुनियां के हालात पर तप्सरा नशत नहीं कर लेते थे चैन नहीं पड़ता था। फिर पंडित जी के घर में पत्नी की नाराजगी या बहू-बेटियों का कसमसाना भी तो अनुपस्थित रहता था।

पंडितजी के बगल वाला प्लाट खाली था। उसमें खोदखादकर बच्चे थोड़े फूल उगाते थे व बाकी जगह उनके खेलने के काम आती थी। पर इधर कुछ दिनों से पंडितजी ने देखा था कि गांधी टोपी लगाए कुछ कार्यकर्ता कभी-कभार उस प्लाट पर खड़े होकर उसका जायजा लेते थे। कभी उड़ती उड़ती खबरें सुनाई पड़ती कि, यहां पार्टी का दफ्तर बनेगा। दिल ही दिल में तो पंडितजी व बच्चे चाहते थे कि यहां कुछ न बने। जगह की कमी ने शहर के लोगों में अजीब से मानसिक उद्वेग को जन्म दे डाला है। थोड़ी भी खाली जगह यदि किसी के घर के पास में है तो चाहे वह कानूनन ही किसी की जमीन हो सभी चाहते हैं कि वहां उसका घर या दुकान न बने। जबकि ऐसा होता नहीं है।

पता नहीं कैसे सभी सोचते थे कि उनके घर की धूप हवा उसी जमीन से होकर उनके पंडित जी के घर आती है। और यदि वहां मकान बन गया तो ये सब आना बंद हो जायेगा। कुछ हद तक यह सच भी था।

मकर संक्रति बीत चुकी थी। हल्की फागुनी बयार ने जन्म लेना शुरू ही किया था। आसमान रोशनी से नीली आभा लिये सूरज की रोशनी से चमक रहा थी। पंडितजी के विष्णुसहस्त्रनाम उनके होंठो से निकलकर छोटी छोटी माइक्रोवेवी तरंगे बनकर हवा में फैल रहे थे। भगवान विष्णु ने अपनी शेषनागी शय्या से करवट बदलकर नीचे देखा। उन्हें भी पृथ्वी आज साफ नीली रोशनी से अद्‌भुत दिखाई दे रही थी। मन में उन्होंने भी सोचा कि सूर्य के उत्तरायण होते ही पूजा पाठ की मनुष्यों में बाढ़ सी आ जाती है कभी एकादशी तो कभी करवाचौथ तो कभी शिवरात्री तो रामनवमी। चैन से बैठने नहीं देते। किन दुर्बल क्षणों में मानव को मंत्रों का ऐसा अमोध पुलिंदा उन्होंने थमा दिया था कि सब उतनी दूर भी बैठे-बैठे देवताओं तक को बांध लेते हैं। गलती सिर्फ आदमी से ही थोड़े ही होती है देवता भी हममें शामिल हैं। फिर विद्या की देवी तो स्त्री ही हैं। ज़रा में प्रसन्न तो जरा में उदासीन। कनखियों से उन्होंने लक्ष्मी को देखा। साजश्रृंगार तो आश्वस्त ही करने वाला था। खूब फैलकर प्रभु ने अंगड़ायी ली। शेषनाग लक्ष्मी सभी आश्वत हुए। कानों में मंत्र बराबर पड़ रहा था

उदभवः सुंदरः सुन्दो रत्ननामः सलोचनः

अर्की वाजसनः श्रृंगी जयंतः सर्वविज्जयी

सुवर्णबिन्दुरक्षोम्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः

महाह्लदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः

प्रभु ने सोचा जब तक कोई इच्छा नहीं कही है तो पंडित का मंत्र जाप कितना सुंदर लगता है- उन्होंने भी दोहराया-

कम्रदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोविलः

अभिताशोमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोन्मुखः वाह रे श्लाघा

आज ट्रक से थोड़े मजदूर कुदाली, फावड़ा, तसला लेकर उतरे। पीछे-पीछे साइकिल से मिस्त्री आया। आते ही मजदूरों ने बीड़ी सुलगाई व सबने हाथ पैर सीधे किये। मिस्त्री ने पूछा इंजीनियर साहब नहीं आए। तभी मोटर साइकिल पर गुप्ता साहब आते दिखे। सभी सावधान हो गए। पंडितजी को भी लगा जैसे पाठ के बीच में किसी ने पटाखा चलाया हो। भोलू ने नजरों से ही चमकती मोटर साइकिल को सहलाया फिर उचककर देखने लगा। गुप्ता साहब ने कपड़े सीधे किये। बड़ी ही होशियारी से चारों तरफ का जायजा लिया। फिर छोटी सी डिक्की से नक्शा निकालकर मिस्त्री से बतियाने लगे। पंडित जी तुलसी चौरे में जल डालकर बाहर निकले तो यह नजारा देखा। हृदय की दो धड़कने तेज हुई। बच्चों की लगाई क्यारियों में दो एक नन्हें नन्हें फूल मुस्कुराने लगे थे। मजदूरों को भी समझ में अभी कुछ आ नहीं रहा था। लिहाजा वे भी अपनी गैंती-फावड़ा उन फूलों से दूर रख कर ही खड़े हुए थे। परंतु गुप्ता जी के जूतों के नीचे जरूर गेदें का नन्हा सा पौधा अपने नन्हें से फूल के साथ दबा पड़ा था। पंडितजी को लगा जैसे उनकी नन्हीं उंगली में जूते से दबने का दर्द उठा हो। वहीं से चिल्लाए- अरे भाई जरा जूता संभालकर रखिये- आप फूल के पौधे पर खड़े हैं। गुप्ताजी ने अचकचाकर अपना पैर पीछे हटाया। पौधा विचारा दब चुका था। एक मजदूर ने उसे हाथ से सीधा करने की नाकाम कोशिश की। अब पंडितजी ने गुप्ता जी को जरा ध्यान से देखा। महंगे कपड़ों, जूतों व चश्मे से सरकारी अफसर तो दिख ही रहा था परंतु साथ ही उसके व्यक्तित्व के तेज-तर्रार होने के भाव ने पंडितजी को थोड़ा सहमाया था। क्या ये मेरा पड़ोसी बनने जा रहा है। उनके दिमाग में बच्चे, फूल, हवा, धूप, पार्टी कार्यकर्ता सब गड्डमड्ड हो गए। थोड़ा जब संभले तो उन्होंने देखा कि इंजीनियर साहब ने नाप जोख का फीता निकाल लिया था व मिस्त्री उनका साथ दे रहा था। पंडितजी जी अंदर चले गए। दूध व दलिया का नाश्ता भोलू ने पहले ही तैयार कर रखा था। परंतु धुकधुकी बदस्तूर जारी थी। भोलू से उन्होंने कहा कि नापजोख वाले साहब से कहना कि काम खत्म कर अंदर आएंगे। बच्चों के भी पढ़ने आने का समय हो रहा था इसलिए वह भी दिमाग पर भारी था। थोड़ी ही देर में गुप्ता साहब अंदर आए। घर

**कभी कभार बच्चों का हुजूम भी इकट्‌ठा होने लगा जिन्हें जलसों या जुलूसों में इस्तेमाल किया जाना होता था। शाला के बच्चों के लिए उससे अच्छा दिन नहीं होता था । पर अचरज तो उन्हें तब होता था जब उनके साथ आए आदमी उनमें से एक को भी अपनी जगह से हिलने तक न देते थे। पंडित जी भी सोचते इतने बालक कहां से सी उदासी। न बच्चों सी हलचल न वैसी शरारत।**

के अंदर की शांति, सफाई व धूपबत्ती की खुशबू ने थोड़ा उन्हें अचकचायी। एक बार सोचा जूते उतार दें फिर वैसे ही बैठ गए। पंडितजी ने अभिवादन के बाद पूछा कि वहां क्या बनने जा रहा है। गुप्ता जी ने उन्हें सविस्तार समझाया कि पार्टी के छोटे से कार्यालय के भवन को बनाए जाने की योजना को मूलरूप देने के लिए उन्हें जिला ईकाई अध्यक्ष ने विशेष रूप से ये कार्यभार सौंपा है। कैसे ये छोटा प्लाट इकाई अध्यक्ष ने पार्टी को दान देने की महानता दिखाई थी। वैसे उन्होंने अपनी तरफ से पंडितजी को आश्वत किया कि वे निर्माण भवन के दौरान उन्हे किसी भी तरह से असुविधा नहीं होने देंगे। परंतु ये फूल पौधे व बच्चों की खेलने की जगह अभी आधे वाक्य ही मुंह से निकले थे कि गुप्ता साहब ने दोनों हाथ जोड़कर लाचारी दिखाई और कमरे से निकल गए। पंडित जी पहले तो उसे जाते देखते रहे फिर आंख बंद कर बोले 'हे प्रभु हे दीनानाथ' भगवान विष्णु ने शय्या से नीचे झांका व पूछा 'क्या है' उनके शब्द वायुमंडल की ऊपरी परतों में ही खो गए। पंडितजी तक क्या पहुंचते, प्रभु ने करवट बदली। मीडियम वेव, तरंगे वैसे भी थोड़ी दूर जाने के बाद हवा में धुल ही जाती है। प्रभु ने भी सोचा कि कलियुग है। ब्रह्मा जी से पूछकर प्रकृति के जेनेटिक कोड बदले जा चुके है। फिर भी कहीं न कहीं अपवाद निकल ही आता है। अब इस पंडित को ही देखो। कैसे नियमपूर्वक पूजापाठ मंत्र जाप करता है। थोड़ा बंधन तो महसूस होने ही लगता है। अन्यथा तो अब काम सभी देवी-देवताओं का काफी हल्का हो गया है। विज्ञान की तरक्की के नाम पर मनुष्य ने अपनी काफी कठिनाइयां आसान कर ली है। अब न तो हर वर्ष कहीं न कहीं से वर्षा की गुहार लगाए जाने पर यज्ञों के मंत्रों से इंद्र को परेशान होना पड़ता है। पृथ्वी के मौसम की जानकारी उसे उपग्रह आदि से निरंतर प्राप्त होती रहती है। पूरी पृथ्वी पर हथेली पर रखे आंवले की भांति नजर घुमाई जा सकती है। कलम दवात थमाने के यज्ञोपवीती संस्कार सब कही गुम हो गए हैं। कहीं विद्यादाता का स्मरण होता है। दिनरात इसे नर्सरी स्कूलों का खाका दिमाग में घूमता रहता है जो आगे चल कर बड़े स्कूलों में प्रवेश की सम्मानित कुंजी साबित हो। न ही माताएं बालक व परिवार के कल्याण के लिए नित्य व्रतादि अनुष्ठान में जुटी रहती हैं। जैसे-जैसे सत्गुणों का ह्रास हो रहा है। वैसे-वैसे ऊपर देवताओं में चैन बढ़ रहा है। कारण व कार्य के सिद्धांत ने कलियुग में सब कार्य सरल कर दिया है। पर न जाने क्यों कभी-कभी मन में कुछ उत्सुकता सी जगती है कि कही देवता भी तो अपने चैन की निरंतरता बनाए रखने के लिए इसमें सहयोग नहीं कर रहे। अगले मीटिंग में किसी से पूछूंगा जरूर। आखिर स्वर्ग में भी तो व्यवस्था बनाए ही रखनी पड़ती है। दिन बड़ी तेजी से बीतने लगे थे। भवन निर्माण के कार्य ने तेजी पकड़ ली थी। फूल पत्ती बच्चे सब हाशिए पर आ गए थे। पढ़ने-पढ़ाने के कार्य में भी निरंतर बाधा रहने लगी थी। कभी मिट्टी का ट्रक तो कभी गिट्टी का, कभी सीमेंट का कभी लोहे का वातावरण को आक्रांत किए रहते थे। धूल धक्कड़ की तो पूछो ही मत। बच्चे भी रहते रहते अनमने से हो जाते। फिर भी पंडित जी के मन के कोने में एक बरगदी जड़ जमने लगी थी कि इतनी सरलता से थोड़े ही ये सब तिरोहित होने देंगे। पठन-पाठन पूजन सब कुछ इसी नियमितता से चलना चाहिए। भोलू पर भी नजर रखने का काम बढ़ गया था। बगल के मिस्त्री मजदूरों से कब उसका भाईचारा बन जाए व बीड़ी सिगरेट की लत लग जाए कुछ कहा नहीं जा सकता न। नन्हें बच्चे भी मिट्टी व रेत के ढेर पर खेलने के लिए ज्यादा लालायित रहते थे। बगिया तो कब की उजड़ कर कहीं बिला गई थी। पर बच्चों पर इसका बहुत दिन असर नहीं रहा। उनके लिए तो दूसरी स्थिति ज्यादा मनमाफिक थी कि इतने लोगों का आना जाना बराबर लगा रहता था। कुछ दिनों बाद पंडित जी भी सोचने लगे कि जल्दी ही मकान बने तो इस सबसे छुट्टी मिले। उनकी इच्छा भगवान ने सुनी। रात-दिन लगातार काम होकर वह दो मंजिला मकान धनाढ्य व्यक्ति की तरह अकड़ा-अकड़ा फैला फैला अपनी उपस्थिति को दर्ज करता हुआ पूरा हो ही गया। मकान तो बनने के बाद सुंदर लगने लगा था। साफ-सुथरी रेलिंग, नई चमकती खिड़कियां, दरवाजे, नया रंग-रोगन सब एक बार नजर को बांधते ही थे। कुछ दिनों में बालकनी पर बरामदे में आगे के छोटे से लॉन में फूल पत्तियां भी दिखाई देने लगीं। जिस दिन पहला फूल खिला पंडित जी की नजर में तुरंत जा अटका 'अरे तुम सब फिर आ गए, मैने तो सोचा था कि तुम सब अब न मिलोगे।' नजरों से ही पंडित जी ने उसे सहलाया। बड़ी देर से उसका हिलना देखते रहे। बच्चों व भोलू की नजर से भी वह छुपा न रह सका। परंतु अब तो वह दूसरे के घर का फूल था। चौकीदार तो गेंद उठाने भी अंदर नहीं जाने देता, फूल क्या छूने देगा। खैर धीरे-धीरे वह मकान अपने पूरे वजूद के साथ इन लोगों की दिनचर्या में शामिल हो गया। धूल-धक्कड़ से भी मुक्ति मिल गई थी। एक दिन सुबह से ही मकान को सजाया गया। पार्टी कार्यकर्ता जुटे। पानी का छिड़काव हुआ। फूल मालाएं लगीं। मंत्रोच्चार के साथ पार्टी अध्यक्ष ने गृहप्रवेश की क्रिया संपन्न की साथ ही ये एलान भी कि यहां पार्टी का दफ्तर खोला जाएगा। जो महिलाओं व बच्चों

---

सुबह अखबार पढ़ते समय पंडित जी की नजर कोने में छपी एक छोटी सी खबर पर अटक गई। शहर में अनाथालय में हो रही अनियमितताओं की खबर। लिखा था कि वहां से कुछ बच्चे मार पिटाई व खाना न दिए जाने के कारण अनाथालय से भाग गए थे। उनमें से छोटे पकड़ लिए गए थे पर बड़ों की खोज जारी थी।

---

के लिए चलाए जाने वाले पार्टी के कार्यकर्ता का मुख्यालय होगा। दूसरे दिन से ही वहां लोगों का आना-जाना बढ़ गया। महिला कार्यकर्ता भी दिखाई देने लगीं। कभी कभार बच्चों का हुजूम भी इकट्ठा होने लगा जिन्हें जलसों या जुलूसों में इस्तेमाल किया जाना होता था। शाला के बच्चों के लिए उससे अच्छा दिन नहीं होता था । पर अचरज तो उन्हें तब होता था जब उनके साथ आए आदमी उनमें से एक को भी अपनी जगह से हिलने तक न देते थे। न बच्चों सी हलचल न वैसी शरारत। पर उनके साथ आए व्यक्तियों के चेहरों की कठोरता उन्हें कुछ पूछने न देती थी। महिलाएं भी जो जुलूसों के लिए आती थीं उनका भी कुछ-कुछ ऐसा ही हाल रहता था। कुछ तो बहुत ही गरीब होती थीं। पर सब कुछ यंत्रचलित सा संपन्न होता रहता था। ट्रक या बस आती थी सबको भर कर ले जाती थी। साथ ही वे लोग भी चले जाते थे जो सबों को निरंतर हिदायतें देते रहते थे। सुबह से ही देवी सरस्वती भूलोक में भ्रमण कर रही थी। पंडितजी भी सरस्वती पूजन की तैयारी में व्यस्त थे। पीले फूल, सफेद फूल, दीप-धूप सभी कुछ तो देवी सरस्वती के चित्र के आगे रख लिया गया था। सिर्फ बच्चों का इंतजार था। उनके आने पर ही पूजन आदि शुरू होता। भोलू भी पीला कपड़ा पहने अंदर-बाहर में व्यस्त था। बच्चे घर से पंडित जी के लिए लड्डू आदि प्रसाद लेकर आए थे। बड़ी ही विधिवत पूजन संपन्न हुआ। बड़ों की तन्मयता से सरस्वती वंदना गाई जा रही थी कि तभी बच्चों की जोरों से चिल्लाने व रोने की आवाज सुनाई दी। आरती कर रहे हाथ ठिठके, वंदना कर रहे होठ झिझके, तन्मय मन खिसका-अरे ! हाथ जोड़े बच्चों ने भी थमकर गहरी सांस ली। आपस में नज़रे मिलीं, उत्तर न पा इधर-उधर भटकीं। फिर पंडित जी के चेहरे पर आ घिर गई मानों भय से निजात पाई हों। पंडित जी ने भोलू को देखा, भोलू ने हाथ जोड़े-जोड़े कंधे उचका कर अनभिज्ञता जाहिर की। छिटक गई एकाग्रता को फिर इकट्ठा कर पंडित जी ने आरती खत्म की। पर कुछ उखड़ सा गया था जो कहीं खटक रहा था। सबने आरती ली। बच्चे बाहर भागे। वह बच्चा अभी भी जोर-जोर से रो रहा था। पास ही एक आदमी उसे डांट-डांट कर चुप करा रहा था। 'क्यों रो रहा है' समवेत स्वर में बच्चों ने पूछा। उस आदमी ने बड़ी कठोर दृष्टि से उन सबको देखा। पूछने वाले बच्चे भी सहम गए। दौड़े हुए अंदर भागे। पंडितजी को देख कर थोड़े आश्वस्त हुए। पंडित जी ने सबको अपनी-अपनी जगह बैठकर किताबें निकालने को कहा, मन किसी का भी नहीं लग रहा था। बच्चे की भी आवाज अब सुनाई नहीं दे रही थी। कामकाज खत्म करने के बाद भोलू जब चौकीदार से कारण जानने पहुंचा तो वहां तो कोई भी नहीं था। चौकीदार ने कुछ गोल मोल सा जवाब दिया कि वो बच्चा तो उसी आदमी का था- कहना नहीं मान रहा था इसीलिए उसकी पिटाई हुई थी। पर इतनी जोर से चिल्लाया तो, भोलू कुछ समझ नहीं पाया। पंडित जी भी कुछ न अर्थ लगा पाए। पर कहीं कुछ था जो भांय से खाली हो गया था।

सुबह अखबार पढ़ते समय पंडित जी की नजर कोने में छपी एक छोटी सी खबर पर अटक गई। शहर में अनाथालय में हो रही अनियमितताओं की खबर। लिखा था कि वहां से कुछ बच्चे मार पिटाई व खाना न दिए जाने के कारण अनाथालय से भाग गए थे। उनमें से छोटे पकड़ लिए गए थे पर बड़ों की खोज जारी थी। 'क्या करते हैं सब एक छोटा सा अनाथालय भी नहीं चला पाते...'। सरकार से तनख्वाह लेते हैं- दान की मोटी राशि लेते हैं- गाहे बगाहे चंदा झटके लेते हैं- फिर भी अनियमितता! अकर्मण्य हैं ससुरे सब। दूसरे दिन पंडित जी ने फिर पढ़ा- आज महिला आश्रम की अनियमितताओं के बारे में छपा था। ये सब क्या हो रहा है। मन को मथने वाले सवाल उठने लगे। एकाएक ध्यान आया क्यों न बगल के दफ्तर में चलकर पूछताछ की जाए। आखिर इसी पार्टी की तो सरकार चल रही है। पता तो होगा ही सबको। पार्टी की सरकार बनने पर तो छोटे से छोटा कार्यकर्ता भी अपने को किसी अधिकारी से कम नहीं समझता। ऐसा लगता है जैसे शहर की नब्ज़ उसी से पूछकर ही तो धड़कती है बहरहाल।

दफ्तर के गेट पर जैसे ही पंडित जी पहुंचे चौकीदार ने अदब से उन्हें सलाम किया। अंदर पहुंचने पर पंडित जी ने पाया कि बड़े ही व्यवस्थित ढंग से कार्यालय में फर्नीचर आदि रखा था। दो चार लोग उन पर आसन जमाए आज का अखबार खोले उसकी खबरों का जायजा ले रहे थे। पंडित जी को देखकर सब खड़े हुए। नमस्कार पंडित जी- आशीर्वाद- पंडित जी सबके साथ बैठे। न जाने क्यों पंडित जी को सब चोर उचक्को की तरह लगे। नहीं-नहीं पंडितजी ने अपने सरल मन को समझाया। अरे क्या प्रभु सहज ही थोड़े सबको सुदर्शन व चरित्रवान बना देते हैं। हो सकता है अपनी अपनी जाति के अनुरूप चेहरे मोहरे से ऐसा लग रहा है। 'आप सबने आज ये खबर पढ़ी है?' कल भी अनाथालय के बारे में निकला था- क्यों ऐसा हो रहा है। जिला इकाई अध्यक्ष कोई कदम क्यों नहीं उठाते? उन कठुआए चेहरों पर एक भाव आया एक गया। अब इन पंडित जी को दुनिया जहान का गणित क्या समझाएं, फिर भी पूछे हैं तो उत्तर देना ही पड़ेगा। 'पंडित जी ऐसा है कि अपने देश में लोगों ने काम न करने की कसम खा रखी है। अध्यक्ष जी ने अभी पीछे ही इसके एक कर्मचारी को निकलवाया था। बदमाश, राशन में ही हेराफेरी कर रहा था। देखिये किसी संस्था को एक दिन में तो ठीक किया नहीं जा सकता। अध्यक्ष जी लगे हुए हैं। ये अखबार वाले तो उनके पीछे पड़े रहते हैं। अरे भाई अनियमितता है तो ठीक की जा रही है। उसे नित्यप्रति अखबार में छापकर तो ठीक किया नहीं जा सकता।'

पंडित जी ने सिर हिलाया। उन सबने सोचा चलो कुछ समझ में आ गया- इनको भी कहां की चिंता ने घेरा- पर पंडित जी उठे नहीं। लगता है एकाध ग्लास पानी पिलाना पड़ेगा। 'अरे किशन एक ग्लास पानी हाथ धोकर ला' थोड़ा आसन बदलते हुए एक ने गुहार लगाई। छोटा सा पांच छः साल का बच्चा पानी का गिलास लेकर पंडित जी के पास खड़ा हुआ। पंडित जी ने नजर घुमाई । 'अरे कितना सुंदर बच्चा है? कहां से ले

आते हैं सब ऐसे बच्चे।' पानी का ग्लास हाथ में लेकर बच्चे के सिर पर हाथ फेरा। बच्चे की नजरें पंडितजी के चेहरे पर गड़ी हुई थी। पानी पीकर ग्लास थमाते समय उसके हाथों व गालों पर लगे खरोंचों के निशान अब दिखाई दिए। सोचा बालक है शैतानी करता होगा। पर प्रभु, कैसे सुंदर खाचे से इसे बनाया- गोरा रंग, घुंघराले बाल, काली कजरारी सुंदर आंखे, हाथपैर भी कितने सुंदर। पर गरीबी जिसने ऐसे अनमोल खजाने पर धूल की पर्त जमा दी थी। कभी कभार भेज दिया करिए, बच्चों के साथ मिल बैठकर थोड़े अक्षर सीख जायेगा। इसका भी जन्म सुधर जाएगा। पंडित जी ने उठते हुए कहा व बालक की ओर देखा। उसकी दृष्टि की एकाग्रता ने उन्हें बांधा। क्या चाहिए उसे मुझसे उन्होंने सोचा। उन्हें इस प्रकार ठिठका देखकर एक कार्यकर्ता टोपी सभांलता उठ खड़ा हुआ। पास आकर बोला- 'अनाथ है बेचारा। अनाथ।'

पंडित जी के दिमाग में कुछ अटका। इसीलिए रोटी कपड़े यहां पर रख लिया गया।

कजरारी आंखों ने पीछा करना नहीं छोड़ा था- अदब से चौकीदार ने उठकर दरवाजा खोला व नमस्कार किया। कितनी खलबली मच गई थी दिमाग में। घर आकर बड़ी देर तक तखत पर बैठे रहे। दो और दो का उत्तर चार क्यों नहीं आ रहा है।

दूसरे दिन अखबार में महिला आश्रम की फिर खबर थी। लिखा था कि आश्रम की लड़कियां पैसा लेकर बाहर भेज दी जाती हैं निश्चित काल के लिए। बाकायदा पिछले दो सालों से ऐसा चल रहा था। इसमें एकाध पार्टी कार्यकर्ता व आश्रम की अध्यक्षा रमा देवी का मिलाजुला हाथ था। ईश्वर कितना अनाचार फैला है इस कलियुग में। अरे ये संस्थाएं तो विवश महिलाओं व अनाथ अबोध बालकों की सहायता के लिए खोली गईं थीं। कितना अनाचार चाहिए मन के कोने में ऐसी अपराध करने के लिए। हत्या से बड़ा दुरापराध है किसी दुर्बल को सताना। प्रभु तो कहते हैं कि जब जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ता है वे जन्म लेते है- निर्बल के बल राम होते हैं कहीं भी यह सब नहीं दिखाई देता। क्यों किसी को ऐसी लाचार अवस्था में पहुंचाते हो। देव मंथन जारी था। मन ने ही उत्तर दिया। कर्म फल तो सभी को भुगतने होते हैं। नहीं तो ऐसी जगह जन्म ही न ले कोई । सब बकबास है आदमी आदमी को सताए और फिर कहे अपने कर्मो का फल भुगत रहे हैं। विष्णु आप हैं कहां- मन जोर से चीखा।

प्रभु ने नीचे झांका। क्यों पंडित इतना उद्वेलित हैं। ओह तो ये बात है किशन और तिनकी का कष्ट देखकर। मुझे कुछ करना ही पड़ेगा। आखिर मेरा भक्त ठहरा।

पंडित जी इसी परेशानी में बाहर खुली हवा में सांस लेने निकले तो देखा किशन उनके फाटक पर खेल रहा था। पंडित जी को देखकर सहमा फिर प्रणाम किया। पंडितजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। बिल्कुल बालकृष्ण का रूप। पास आए बोले- काम खत्म हो गया।

'नाही पंडित जी'

'क्यों?

'आज शाम के कुछ मेहमान आवे के है। त उनकी खातिर चना चबैना लाने चौकीदरवा गया है। तब ही हम चुपके ही निकल आए।'

'कौन आने वाला है। पंडितजी को अच्छा लग रहा था उससे बात करना।

'कौनो रमा दीदी हैं वही आवे वाली हैं और कौनो अध्यक्ष जी भी रात मा इहां ठहरिहे कौनो तकलीफ थोड़े है इहां पंडित जी। सब इंतजाम पक्का है।'

रमा दीदी पार्टी अध्यक्ष

अखबार में  का सारा घोटाला निकल कर मेरे पड़ोस में इकट्ठा होगा। ये क्या हो रहा है यहां।

तब तक चौकीदार आता दिखा व किशन भाग गया।

पंडित जी के कान तो खड़े हो ही गए थे। अंदर जाकर प्रभु की मूर्ति के आगे खड़े हुए 'नहीं मेरी शांति ऐसे न भंग करो।' एक दुर्बल याचना मन में उभरी।

प्रभु के आराम करने का समय था। अतः इस याचिका पर गौर करने के लिए लक्ष्मीजी ने प्रभु को उठाना उचित नहीं समझा।

संध्या करते पंडितजी के कान में गाड़ियों के आने जाने का  शोर पड़ा। अभिवादन स्वागत जारी रहा था। आवाजें बराबर आ रहीं थीं। तभी उन्होंने सुना एक लड़की तेरा क्या नाम है? नाम स्पष्ट नहीं सुनाई दिया। उत्तर में नारी स्वर उभरा- बड़ी अच्छी लड़की है। मेरा बड़ा कहना मानती है। आश्रम में नई है लड़की यहां क्यों आई- आश्रम की है तो आश्रम में रहना चाहिए। काम के लिए तो उसकी जरूरत है नहीं। किशन तो है ही। पंडित जी का दिमाग दौड़ रहा था। ये क्या हो गया है मुझे, पूजा पाठ की एकाग्रता जैसे शिथिल हो रही है। नहीं ऐसे नहीं चलेगा। पंडितजी संध्या खत्म कर बाहर आए। और आज सभी कमरों में बत्ती जल रही थी। कुछ बड़ी चहल पहल सी थी। तभी रमा जी बाहर निकलीं, पीछे-पीछे एक लम्बा चौड़ा मूछों वाला व्यक्ति निकला। आपस में सब बड़ी ही धीमी आवाज में बातें कर रहे थे। फिर रमा जी गाड़ी में बैठकर चली गईं। थोड़ी ही देर बाद एक अजीबो-गरीब सन्नाटा उस मकान में फैल गया जैसे वहां कोई हो ही न। पंडित जी की रात भगवान का स्मरण करते बेचैनी में कटी। सुबह भगवान भी बड़े अनमने थे। लक्ष्मी के कारण पूछने पर बोले आज पता नहीं क्यों शैय्या बड़ी कष्टकर लगी। लगता था जैसे कोई उसे हिला रहा हो। शेषनाग भी चकित हुए। अपनी तई उन्होंने कोई अपराध तो नहीं किया था।  हां नीचे पंडित रविशंकर जरूर प्रभु को सारी रात याद करते रहे थे। उन्होंने झांका कि कारण क्या था? किशन चुपके से चौकीदार की नजर बचा भागकर पंडित जी के पास सुबह-सुबह आया हुआ था।

'अरे किशन तुम इतनी सुबह! आओ-आओ'

'नहीं-नहीं पंडित जी हम आपको बताने आए हैं। कल जो एक लड़की हमरे इहां आई थी न रमा दीदी के साथ। वो अध्यक्ष जी के साथ कमरे में रात भर बंद रही। खूब जोर-जोर से चिल्लावत रही और गिड़गिड़ावत रही। पर किसी ने भी दरवाजा नहीं खोला। हम तो डर के मारे चौकीदार

पास दुबककर लेटे रहे। मुंह अंधेरे अध्यच्क्ष जी और ई चौकीदार उसे ल्हास समान गाड़ी में डालकर ले गए। आप किसी से कहिएगा नहीं। अब हम जा रहे हैं।' कह कर किशना भाग गया। पंडित जी को तो जैसे सांप सूंघ गया। उनसे तो न हिला गया न डुला गया। दो दो, चार-चार, आठ -आठ-आठ सोलह एक झटके में जैसे सब समझ में आ गया। तभी किशना के भी जोर जोर से चीखने की आवाजे आने लगी। 'माई रे-माई रे मार डाला रे, अरे कोई जान बचाओ रे'। 'और बाहर जायेगा', फिर धप से मारने की आवाज आती फिर किशन और ऊंचे जोर से चीखता यही कोई पंद्रह-बीस मिनट, तक ये नाटक चलता रहा। सिसकियां तो उसकी देर तक आतीं रहीं। अब पंडित जी अपने को समेट कर व जैसे कोई निश्चय कर उठे। नहा धोकर जब पूजा करने बैठे तो विष्णु सहस्त्रनाम का जाप जिस एकाग्रता से उन्होंने किया, उस पर उन्हें खुद आश्चर्य हुआ। उन्होंने तय किया कि अब वे सिर्फ एक वक्त भोजन करेंगे व सुबह शाम चण्डी पाठ भी करेंगे।

पूजा पाठ नियम और कठोर हो गए। बच्चे भी जो पढ़ने आते उनका वे खास ध्यान रखते कि वे सब कक्षा के बाद यथाशीघ्र घर लौट जाएं। भोलू पर भी नजर कड़ी कर दी। किशना तो दो-चार दिन नहीं आया। एक दिन फिर भाग कर आया। और दो चार दिन में फिर जो कुछ घटा था उसका सविस्तार ब्यौरा पंडित जी को सुना कर चला गया। हरे कृष्ण हरे कृष्ण पंडित जी का रात दिन का चैन गायब हो गया था। परंतु जाप का एकाग्रता व निरंतरता बढ़ती गई। अनके साथियों का भी आना इधर कम हो गया था। क्यों कि जब जाओं तो वे पूजा पाठ में तल्लीन मिलते।

प्रभु का हाल भी बहुत अच्छा नहीं था। वे बेसब्री से इन्द्र के अवकाश से लौटने का इंतजार कर रहे थे। नारद जी को भेजकर उन्होंने मंगवा ही ली थी। अनाचार तो हो ही रहा था। जल्दी ही उन्होंने सभी देवी-देवताओं की मीटिंग बुलवाई। सभागृह में पंडित जी का जाप जोर-जोर से गूंज रहा था। पल में सबको सब समझ में आ गया। सबसे पहले प्रभु जी ने ब्रह्मा जी को तलब किया। 'महोदय जब आपका दिन पूरा होने वाला होता है तो क्यों आप इतनी उधम बरपा कर डालते हैं।' देखिये जरा क्या हो रहा है। फिर मैने आपसे कहा था कि जैनेटिक कोड बदल डालिये।

अपने आप ही मारकाट मचाकर सब कुछ खत्म हो जाएगा। फिर आप क्यों नहीं सुनते। ब्रह्मा जी अपना पोथीपत्रा जल्दी-जल्दी पलटने लगे। कहां गड़बड़ी हो गई। तब तक पंडित जी ने चंडी पाठ शुरू कर दिया था। अब बैचेन होने की बारी दुर्गा की थी। प्रभु ये क्या करवा रहे हैं आप। मेरा वाहन तो उनके घर के ऊपर से गुजरते वक्त ऐसे थम जाता है। जैसे रिमोट से रोका जाता है। ऐसे नहीं चलेगा। कोई उपाय करिये। 'अब गणपति आगे आए। ' उन्होंने सबके सामने एक उपाय रखा जो सभी को पसंद आया। फिर वे तुरंत ही पृथ्वी की यात्रा पर निकल पड़े।

जब तक वे पहुंचे तब तक गणपति उत्सव की तैयारियां शुरू हो चुकी थी। जहां मूर्तियां तैयार की जा रही थी वहां पहुंचने पर उन्होंने देखा कि मूर्तिकार तरह-तरह से उसमें जीवन भरने की काशिश कर रहे थे। एक युवा मूर्तिकार एक बड़ी सी मूर्ति के आगे खड़ा कुछ सोच रहा था। यह मूर्ति पार्टी अध्यक्ष जी के क्षेत्र में जानी थी।

उनकी हिदायत थी कि मूर्ति सबसे सुंदर होनी चाहिए। गणपति ने उसके कंधे पर हाथ रखा। तुरंत उसके मन की उलझने सुलझ गई। उसने सोचा अबकि प्रभु का फरसा मैं टीन के गहरे पतरे से बनाऊंगा। जब उस पर रोशनी पड़ेगी तो कितना वास्तविक दिखेगा। फिर तो जैसे यंत्रचलित उसके हाथ चलने लगे। तैयार मूर्ति की जीवंतता देखते ही बनती थी। गणपति के कार्य का पहला चरण खत्म हुआ था। मूर्ति लेने अध्यक्ष महाराज स्वयं पधारे थे। साथ ही रमा जी भी थाल लिए आई थी। परंतु जब मूर्ति उठाने के लिए अध्यक्ष जी ने उसे छुआ तो अजीव से भय ने उन्हें सिहराया। यह कैसी मन की भावना है। ऐसा तो पहले कभी नहीं लगा। आलीशान पंडाल में मूर्ति स्थापित की गई। स्थापना के लिए पंडित जी से अच्छा और कौन व्यक्ति हो सकता था। फिर उन्होंने सोचा कि वे तो इस काम के लिए सम्मानित ही महसूस करेंगे। पंडित जी ने आठ दस दिन उस मूर्ति की बड़ी ही तन्मयता से पूजा अर्चना की। पर प्रतिदिन वे उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े होते थे। 'प्रभु न्याय करो-प्रभु न्याय करो।' इतने दिव्यास्त्र हाथ में पकड़े हो फिर भी अनाथ इन बालक-बालिकाओं पर किए जा रहे अत्याचार को नहीं मिटा सकते। अध्यक्ष जी व रमा दी पंडाल में उमड़ी भीड़ को देखकर बहुत प्रसन्न होते। भीड़ भी इस अद्‌भुत मूर्ति को देखकर चकित थी। विसर्जन का दिन जैसे -जैसे नजदीक आ रहा था नीचे पंडित बेचैन थे, ऊपर प्रभु। 'क्या कर रहे हैं गणपति... मूर्ति बनवाने गए थे क्या। 'पर देर है अंधेर नहीं पर ख़ुद ही भरोसा करना पड़ा।

मूर्ति बाजे गाजे के साथ ट्रक पर उठा कर दी गई। महिला आश्रम की लड़कियां व आनाथ आश्रम के बच्चे सभी उसके आगे नाचते गाते चलने लगे। रास्तें में उमड़ी भीड़ का हर व्यक्ति कहता अबकि का पुरस्कार तो यही मूर्ति जीतेगी। पंडित जी थोड़े निराश से मूर्ति के चरणों में बैठे प्रसाद बांट रहे थे। अध्यक्ष जी व रमा दीदी अगले हिस्से में बैठे भीड़ का जायजा ले रहे थे। जैसे ही समुद्र किनारे वह मूर्ति पहुंचने वाली थी कि ऊपर जाते बिजली के तारों से वह फरसा टकराया। जब तक सभी संभालते तब तक तो पूरी मूर्ति अपने चमकते फरसे के साथ ट्रक पर भहराकर गिर पड़ी।

पंडित जी जो किसी को प्रसाद देने के लिए ट्रक की रोलिंग पर झुके हुए थे किसी तरह बच गए थे। फरसा सीधे अध्यक्ष जी की गर्दन दो चाक करता नीचे गिर पड़ा था व रमा दीदी का भी सिर उस मूर्ति के सिर से टकरा कर एक तरफ झूल गया था। एम्बुलेंस, पुलिस सबके शोर के बीच कहीं से आकर किशना ने पंडित जी की उंगली पकड़ ली थी। मूषक हवा की गति से आसमान में उड़ा जा रहा था।

कहानी : **मीरा श्रीवास्तव** की डायरी से

# कृतिका

कृतिका आज जल्दी-जल्दी अपने घर की सफाई व कामकाज में लगी हुई थी। आज उसकी बेटी चंदा अपने तीन महीने के पुत्र के साथ जो आ रही थी। एक ही तो लड़की थी उसकी। बेटा तो जल्दी ही विदेश पढ़ने चला गया। इससे और भी उसका ध्यान बेटी के ही चारों ओर केन्द्रित था। रिटायर हुए पति के साथ बड़े संतुष्ट मन से उसने इस छोटे शहर में आकर अपनी गृहस्थी जमा ली थी। वैसे भी इस शहर में आए ज्यादा दिन नहीं हुए थे। लेकिन इस शहर की थोड़ी सुस्त रफ्तार उसे अच्छी लगी थी। पति-पत्नी दोनों ने सोचा था कि अब शरीर की बची शक्ति वे दोनों उन सब कामों में लगाएंगे, जिन्हें करने का अवसर, घर दफ्तर की भाग दौड़ वाली जिंदगी ने उन्हें नहीं दिया था। खूब सारी मनचाही किताबें, शहर के दो एक क्लबों की मेंबरशिप, एकाध स्वयं सेवी संस्थाओं की सदस्यता, सब कुछ उन्होंने आते ही इस शहर में ले ली थी।

लेकिन आज तो कृतिका के जीवन का नया दिन था। बेटी अपने नन्हें बच्चे के साथ आ रही थी। उन्हें समझ में ही नहीं आ रहा था कि सत्ताइस साल बाद अब कैसे एक नन्हे शिशु के स्वागत की तैयारी करें। कमरा साफ करवाया, चादर, तकिया-तौलिए सब साफ सुथरे बिछवाए। बच्चे की बोतलें, उबालने के लिए नया बर्तन, कपड़े धोने के लिए नया टब, नई मच्छरदानी सब कुछ दिमाग पर जोर डाल-डालकर उसने खरीदे। बाकी जब कुछ समझ में न आया तो उसने सोचा कि आखिर चंदा अपने ही घर तो आ रही है अपना बच्चा लेकर। तो फिर वह क्यों इतना परेशान हो रही है। चंदा खुद ही सब संभाल लेगी।

दरवाजे की घंटी बजते ही जैसे ही कृतिका दरवाजा खोलने के लिए दौड़ी तो साड़ी में पैर उलझकर गिरते-गिरते बची। उसके पति ने थोड़े गुस्से से कहा- थोड़ा संभलकर चला करो। नहीं तो इस उम्र में हड्डी टूटने पर जल्दी जुड़ती नहीं। आने वाले सभी जानते हैं कि हम तुम किस उम्र के हैं थोड़ा धैर्य भी दिखाते हैं।

दरवाजा खुला सामने चंदा खड़ी थी। बाहों में छोटा सा बंडल लिए चेहरे पर ढेर सारा ममत्व का उजास लिए। कृतिका ने उसे बाहों में भर लिया। कलेजे में जैसे ठंडक सी पहुंच रही थी। हाथों का बंडल कुनमुनाया। चंदा को छोड़कर उसने बच्चे को लेकर छाती से लगाया। नए पैदा हुए बच्चे की गंध उसके नथुनों में भर गई। बिल्कुल वैसे ही जैसे पहली बार चंदा को गोद में उठाया था। मन प्राणों में एक स्पंदन आज भी छातियों में कल्लोल आज भी। क्षणांश में कृतिका सत्ताइस सालों का अंतराल पार कर वर्तमान में आ खड़ी हुई।

'चलो बेटी अंदर चलो। रास्ते में कोई दिक्कत तो नहीं हुई। गाड़ी टाइम पर आ गई थी ना।' चंदा के पास जबाव देने की फुर्सत नहीं थी। अंदर आकर सामान वगैरह एक तरफ पटककर पहले तो अपने पापा से लिपट गई। मां बनी बेटी को जैसे पापा ने और गुरु गंभीर तरीके से दुलराया। पापा से छूटकर चंदा किशोरी की तरह पूरे घर में घूमती फिरी।

कृतिका हाथों में बच्चा लिए उसे पूरा घर उसका कमरा सब दिखाती रही। आखिर उसने कहा कि वह अपना बच्चा पकड़े तो वह उसे चाय पानी दे। पर चंदा को फुर्सत नहीं थी मायके आकर दोबारा से बचपन वाली आजादी महसूस करने में। जल्दी से बोली 'पापा को दे दो।'

'पापा को ' कृतिका के समझ में नहीं आया। पापा इतने छोटे बच्चे को कैसे पकड़ेगे। शू शू कर दे तो। लेकिन चंदन ने थोड़ा समझदारी दिखाते हुए आगे बढ़कर बच्चे को ले लिया। कृतिका की ओर देखकर कहा- 'नाना ऐसे ही थोड़े ही बनूंगा।'

बच्चा बदले हुए स्पर्श को महसूस कर थोड़ा चैतन्य हो चला था। नाना की गोदी में जाते ही उसने उनके कपड़े गीले कर दिए। चंदन थोड़ा चिहुंके - चंदा -

चंदा दौड़ते हुए आई।

'क्या हुआ?' पापा का चेहरा देखते ही समझ गई- 'नॉटी ब्वॉय। नाना को आते ही प्रसाद दे दिया।' बच्चे को गोदी में ले कपड़े बदलने लगी। चाय नाश्ता करने के साथ-साथ कृतिका ने उसके ससुराल वालों का हालचाल पूछा फिर खाना बनाने चल दी। पापा ने जरूर पूछा कि उसकी मैटरनिटी लीव कब खत्म हो रही थी। चंदा ने बताया कि पंद्रह-सत्रह दिन और बाकी थे।

नहाना धोना खाना पीना निबटा कर जब सभी गपशप कर रहे थे तो चंदा ने अपनी समस्या अपने माता-पिता को बताई कि अब वह इतने छोटे बच्चे के साथ ऑफिस कैसे जाया करेगी। सास तो उसकी वैसे ही हमेशा छोटी-मोटी बीमारियों में घिरी रहतीं हैं। उस बड़े शहर में नौकर बाई भी

मुश्किल से ही मिलते हैं। क्रेश में बच्चा वह छोड़ना नहीं चाहती थी। कृतिका व चंदन ने एक साथ पूछा-

'फिर'

'मम्मी कुछ दिनों के लिए आप इसे अपने पास रख लीजिये। थोड़ा सा बड़ा कर दीजिये। मैं लगातार हर छुट्टी में आती रहूंगी। आया खोजकर रखकर तभी जाऊंगी। मम्मी-पापा प्लीज।' मम्मी के कंधे पर लुढ़कते हुए सा चंदा बोली। मम्मी-पापा मेरा करियर, बच्चा .. मैं नहीं संभाल पाऊंगी सब कुछ इकट्ठा।

'तुमने आलोक से पूछा'- दोनों एक साथ बोले।

'हां वे तो एकदम तैयार हो गए।' कृतिका और चंदन ने एक दूसरे को अविश्वास से देखा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद चंदन बोले।

'बेटे रखने के लिए, तुम्हारी मदद के लिए हम हमेशा तैयार हैं। लेकिन बच्चे शादी के बाद बच्चा पति-पत्नी के बीच एक दूसरे ही विश्वास संयम व प्रेम का संसार रखता है। स्वस्थ वैवाहिक जीवन का ये दूसरा अनिवार्य पड़ाव है। हम दोनों की तो यही कोशिश रहेगी कि तुम लोग सुखी और प्रसन्न रहो। आगे बेटा तुम खुद समझादार हो। जो भी फैसला करोगी हम दोनों को मंजूर होगा।

सिर झुकाए सुनती चंदा ने धीरे से ऊपर उठाया- मां का हाथ अपने हाथों में लेते हुए बोली- 'मां मेरे सामने बहुत सारे विकल्प तो हैं नहीं। या तो मैं ये इतनी अच्छी फर्म छोड़ दूं। मां तुम्हे याद नहीं इस एक एपायंटमेंट के लिए तुमने कितनी मनौतियां मानी थीं। और या मैं अपना बेटा क्रेश की आया के हवाले करुं या सारा दिन चिंता में मरूं। तुम ही कहो क्या करूं।' फिर एकाएक जैसे कुछ सोचती सी बोली- 'या फिर तुम चलकर मेरे घर रहो हमारे साथ।'

उसका हाथ झटके से छुड़ाती हुई कृतिका ने कहा- 'पागल है। लड़की के घर क्या कोई जाकर रहता है। पालना है तो इसे मैं यहीं रख लूंगी।'

चंदन जिसकी नजरें क्षण भर भी कृतिका के चेहरे से नहीं हटी थीं। धीरे से आकर चंदा के पीछे खड़े हुए। अपने एक हाथ से उसका कंधा दबाते हुए जैसे उसकी सारी ऊहापोहों को थाम उसको आत्मविश्वास, एक मजबूत सहारा देते हुए बोले- 'ठीक है। तो तुम्हारा बेटा हमारे पास रहेगा'। चंदा तो ऐसे उछलकर पापा से लिपटी जैसे बचपन में रेखागणित की कठिन थ्योरी न समझने पर पापा के थोड़े से सहारे से उसे एकाएक उत्तर मिला करता था। चंदन का एक हाथ अभी भी कृतिका का कंधा थामे हुए था तो दूसरे से बेटी को लिपटाए हुए था।

दूसरे दिन से ही चंदा की तो जैसे दिनचर्या ही बदल गई थी। उठते ही पहले उसने ब्यूटी पार्लर से एपॉइंटमेंट लिया। फिर लिस्ट तैयार करने बैठ गई उसे क्या कपड़े वगैरह खरीदने हैं। पिछले दस ग्यारह महीने तो सिवाय बच्चे के उसने कुछ सोचा ही नहीं था। अब उसे अपना बॉस, अपने सहयोगी सभी बारी-बारी से याद आ रहे थे। उसके सलीकेदार लिबास उसकी सुडौल काया से संबंधित सारे रिमार्क। इंच टेप लेकर अपनी काया को उसने नाप-नाप कर जितनी भी गड़बड़ियां हो गईं थीं उस सबको उसने एक डायरी में लिखा। ये सब उसे महीने भर में ठीक करना होगा।

कृतिका तो अपने इस नए उत्तरदायित्व के गोकुल पर्वत को किस तरफ से उठाने की कोशिश करे, समझ ही नहीं पा रही थी। जिधर से ही संभालने की कोशिश करती पर्वत उधर की ही तरफ तिरछा होने लगता।

एक दिन बच्चे को जब नहला पूछवाकर बेटी के पास दूध पिलाने के लिए ले गई तो बेटी थोड़ी अधीर हो बोली- 'मां इसे अब बोतल के दूध की आदत डालो। अब मैं तो यहां रहूंगी नही। फिर देखो न मेरा फिगर भी बस में नहीं आ रहा है।'

कृतिका बच्चे को गोदी से ही चिपकाए रह गई। ये कैसे इस अमृत को सुखा देने की बात कर रही है। जो उसकी छाती से वात्सल्य रस बन कर बरस रहा है। ये उसकी अपनी बेटी है उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ और कितनी मजबूत भी।

उसकी गोदी में जब उसका नाती कुनमुनाया तो उसका मन किया कि उसके अपने दूध उतर आए। फिर वह अपनी बेटी

**चंदन जिसकी नजरें क्षण भर भी कृतिका के चेहरे से नहीं हटी थीं। धीरे से आकर चंदा के पीछे खड़े हुए। अपने एक हाथ से उसका कंधा दबाते हुए जैसे उसकी सारी ऊहापोहों को थाम उसको आत्मविश्वास, एक मजबूत सहारा देते हुए बोले- 'ठीक है। तो तुम्हारा बेटा हमारे पास रहेगा'। चंदा तो ऐसे उछलकर पापा से लिपटी जैसे बचपन में रेखागणित की कठिन थ्योरी न समझने पर पापा के थोड़े से सहारे से उसे एकाएक उत्तर मिला करता था। चंदन का एक हाथ अभी भी कृतिका का कंधा थामे हुए था तो दूसरे से बेटी को लिपटाए हुए था।**

से कह सके- ठीक है। न देना हो तो न दे। हम कोई तेरी दया पर हैं। लेकिन वहां तो क्षीर सागर का नामोनिशान नहीं था। सिर्फ मरुस्थल की उठने बैठने वाली रेतीली लहरें भर थीं।

धीरे से बेटी से बोली- 'ठीक जो तुम्हें ठीक लगे वही इंतजाम कर। बच्चे को तो तुझसे अलग ही रहना है न।'

सारे इंतजाम की तामझाम में कब बीस-पच्चीस दिन निकल गए सबको पता ही नहीं चला।

## अन्न

पक रहा है अन्न
ले
वायु, अग्नि, जल
का सार,
खदबदाता आकाश।
ताकत है इसमें सींचने की
पीढ़ियों की हड्डियाँ
लाने की
लहू में ज्वार
मन प्राणों में
उफान।
वीतरागी बन
बाँट रहा है
एक-सा
प्यार
और
गा रहा है
ईश गान
तृप्ति का

## कर्ज

'प्यार' का कर्ज़
सबसे बड़ा कर्ज़
'आत्मा' पर पड़ा
बोझ
पंच तत्वों के संघात
के बस की
बात नहीं
उतारना
जब
ईश्वर का अंश
ही दबा हो
स्वयं
इस
'ईशत्व' के नीचे।

## प्रार्थना

जब तुम
मेरे गर्भ
में
थे
देना चाहा मैंने
पूरी
सदिच्छा
सत्प्रयत्नों के साथ
पिता की धार
अपने लहू का ज्वार
पुरखें की
दधीचि-सी हड्डियों
का सार
'व्यूह' तोड़ने के सारे
पेंच।
आज जब
'युद्ध' में
तुम
खाते हो मात
सन्देह होता है
अपने पर।
ओ रोली,
अक्षत
आरती के दिए
और मेरी प्रार्थनाएं
तुम ही बनो
अब
उसके
कवच और
'कुण्डल'।

## एक प्रेम कविता

मैंने कभी नहीं लिखी
एक प्रेम कविता
क्योंकि
तुम्हारी आँखों से जो बरसता है
उसकी तो कोई उपमा नहीं है
तुम्हारी साँसों की अनथक स्नेहिल
ऊर्जा
उसकी तो कोई उपमा नहीं है
तुम्हारे हाथों का स्पर्श
जैसे कोई जादूगर लहराये खाली हाथ
हवा में करते हुए बन्द मुट्ठी
और जब खोले तो
भरी हों उसमें फूल की नन्हीं पंखुरियाँ
उसकी तो कोई उपमा नहीं है
उंगलियों के पोरों की छुअन
जैसे रागिनी बजते-बजते
रच जाए कोई नया राग
इसकी तो कोई उपमा नहीं है
घुला घुला चमकीला गगन
एक बादल का टुकड़ा भी नहीं
खंडित करने को उसका नील प्रवाह
इसकी तो कोई उपमा नहीं है

## स्नान

काली लंबी
खुली हुई
जटाओं-सी
रात में बह
रही है
गंगा।
लहरों में
डुबकी लगा रही है
चांदनी
पिघल पिघल
चांद की
थामे
उंगली।
बाघम्बर-सा
चमकता है
बालू भरा किनारा।
सरीसृप-सी लपर सपर
हैं किनारे पर
धीमी लहरें
टिमटिमाती
रोशनी में
कर रहे हैं
गणों के समूह
अस्फुट
गान।
कहीं शिव तो
नहीं उतरे
करने
संक्रान्ति का
स्नान

## विवशता

अब
नहीं लिखी जा सकती
रक्त की गर्मी से
कोई हीर रांझा की
कथा
न ही
गढ़ा जा सकता
कोई नया
जीवन शिल्प
संबंधों की ऊर्जा
की

लपलपाहट लिए
सामने खड़ा है
ये संसार
और कैद
है
शरीर
औषधियों
वर्जनाओं व
जीने की
विवशताओं
के कांच के घेरे में

क्रौंच वध के बाद की
सारी पीड़ा भरी है
मन व रक्त में
लेकिन
बनने
के लिए
रामायण
नहीं पा रही
वह
शब्द, कलम
और ताड़पत्र।

## क्या फूटा है गहरे में

लावा कहीं या
दिल ने ही छू ली है
या फिर
लहू के ज्वार ने ही
पा ली है कोई दरार
आग तक पहुँचने के लिए
हर लहर ढा रही है कहर
माथे पर बेआवाज़ बेपनाह
बेचैन शब्दों का तांडव है भारी
खाली कागज़ लगता है अथाह सागर
डूब रहे हैं

उतरा रहे हैं विचार
किनारे बंधी मन की नाव से
बांधलेना चाहती हूं ये विकलता
रेखाओं में लेकिन रंग हैं
कि उछल रहे हैं बेतरतीब
और हो रहे हैं गड्ड-मड्ड
अब बस एक तेरा ही है
भरोसा बाकी
नीली काली स्याही से भरी
और थामे एक कम्पास
दिशााओं को सही-सही दिखाते हुए।

## रोग

आती
जाती
सांसें
रचती है
आश्वस्ति
का संसार।
क्या
खेल है
घड़ियों को
छीनना।

रोग
बना
है पाला
रोगी
रेफ्री
सेवक
खिलाड़ी
सेवा है
हु तू तू तू।

## ले गई अग्नि तुम्हें

द्युलोक
जैसे अब तक
ले जाती थी हविष्य
तुम्हारे हाथों से
देवताओं से।
गंगा से
नहलाने से
घुल गए तुम्हारे

क्रोध लोभ
मोह अहंकार।।
अब तुम हो
हमारी स्मृति में
झिलमिल झिलमिल
और बहुत चमकीले
तारे की तरह।

## आम

झरे पत्तों का
बिछा असान
कर रहा है
आम प्राणायाम।
खूब खींचकर
अन्दर तक
छोड़ता है जब
वह साँस
तो बौरा जाते हैं
नन्हें पक्षी तक
कहाँ है वसन्त में
ताकत कि
रख सके बचा कर
महक की सम्पदा को
धीरे-धीरे
घुल ही जाती है वह
हवा, धूप
और मन, प्राण में

## पीड़ा

पीड़ा और दुख का
होता है लम्बा पारपथ
नजदीक आने पर
बहने लगती हैं
वह अन्तरतम तक।
रोना, कराहना
चीखना सब देते हैं
झटके हजार वोल्ट की
ताकत से।
एक संवेदना व स्नेह
से भरा स्पर्श ही रखता है
ताकत तोड़ने की
इस पारपथ को
आकाश से गिरती
बिजली-सी
ठहर जाती है
तनिक इस
हाथ के आगे।

## वसन्त

(एक पूरे अध्याय पर )
पहरा है
फूलों का
वसन्त
फिर पढ़ रहा है
बगीचे, लॉन
चौराहे पर
खड़ा
चमकते
चटकते
शोख रंगों वाला
पन्ना।
मैं ठिठकती हूं
होती हूँ अचम्भित
बीते समय को
देख
इतनी सुन्दरता से
संग्रहित
और
सुरक्षित।

## शोर

पहाड़ों के बीच से
निकली सड़क
चीरती है उसकी छाती
छीनती है उसकी छाती
सड़क से गुजरते वाहनों का शोर
धकियाता घुसता भीतर तक
कुछ उसी तरह
जैसे धकियाते आते हैं बेचैन विचार
गुफा में ध्यानरत भिक्षुक के मन में जिनसे घबरा कर
वह बुदबुदाता है प्रस्तर प्रतिमा के आगे
'बुद्धं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि'

## नई पत्तियों की लोरी

नई पत्तियां
भरी हैं
विषम संख्याओं-सी।
उन्हें नहीं मालूम
लघुत्तम
महत्तम
के सवाल
अभी परे हैं
वे पर्यावरण
प्रदूषण
और असमय मृत्यु
के
कठिन प्रश्नों से।
उन्हें तो
बस इतना पता है
कर रही हैं वे
पक्षियों में
हरी आशा का
संचार
छा रही हैं
उनके घोंसले
नए कवेलुओं से
दे रही हैं हवा को
तार स्वरों के
बना रही हैं
छाया के
नए ताजे चित्र
और लिख रही हैं
एक वसन्त
पेड़ के नाम।

## एक इच्छा अपने मंदिर के नाम

ले चलो मुझे
मान के साथ
मेरे देवता
जैसे मैंने हर
तीज त्यौहार पर
न्यौता था तुम्हें
रोली, अक्षत और
मंत्र के साथ
घिसटा कर तो
बिल्कुल भी नहीं।
चलो चलें
आकाश के
उस हिस्से में
जो आवंटित
किया है
तुमने मेरे नाम
रहेंगे हम तुम
शांति से
तुम्हारे देवत्व
और मेरे
मनुष्यत्व (लेखा जोखा)
के साथ।

## डिप्रेशन

दिन खत्म होने के बाद
बाहर है आसमान
रात और
तारों से भरा
लेटने पर दिखाई देती है
सपाट छत।
आशंकाएं
और आकांक्षाएं
उठने लगती हैं
ऊपर और ऊपर
टकरा कर छत से
'रिबाऊण्ड' हुई
गोली की तरह
छेदने लगती हैं सीना
निकल क्यों
नहीं जातीं
ये खुले
आसमान की तरफ?
बन जाएं धूमकेतु
और चल पड़ें
नापने
आकाश गंगा की लंबाई
फिर जब कभी
मुझसे मिलें
तो कहें
नहीं तुमसे कुछ
लेना-देना हमें
अब तो हम हैं
ज्वलन्त नक्षत्रों की
ज्वलन्त पताकाएं
और हैं
आकाश गंगा
की आकांक्षाएं।

## इन्तज़ार 1

हाथों में कस कर
पकड़ रखा है
धनुष ।
चढ़ी है डोरी
तनी
खूब
खिंची हुई
निकाल रखा है
तीर
अवश्य है कोई
दिव्यायुध
चलाने के लिए
तो कतई नहीं।
पहन रखे हैं
सारे 'दिव्याभूषण'
प्रयाण के
जाना कहीं
कतई नहीं।
इसी
अवस्था में
तुम चित्र भये राम
और मैं मूरत।

## इन्तजार - 2

जलाये अलाव
निस्तब्धता का
सेंक रही है
हाथ रात, अपने संगी
साथियों के साथ।
चाँद की लपटें
ऊँची और ऊँची
फैल रही है
चाँदनी की आँच
दूर तक।
हवा की बतकही
पसरी हुई है सिहरती
सरसराहट के साथ
हँसी की किसी बात पर
खिल पड़ते हैं तारे।
समय सबसे बेचैन श्रोता
कभी-कभी करता है
ठीक 'अलाव'।
कभी जमाता है धौल
हवा की पीठ पर
तारों की संगत
बदलता है बार-बार
सबसे गम्भीर
इन्तजार
पीठ किए बैठा
है लम्बे हाथ फैलाए
ओढ़े यादों का कम्बल
भरता है हुंकारा
धीरे-धीरे
इन सबके साथ।

## एक छुअन मन भरी

जब हम
लेटते हैं
साथ-साथ
चेहरे
ढंके हैं
किताबों से
तब होते हैं
कितने
अनजान
राग और
स्पर्श की
उस नदी से
जो बह
रही होती है
दोनों के बीच
हजारहां
शब्दों में से
एक भी
नहीं प्रगट
करता
उसकी एक
भी ध्वनि
जब छू
लेते हो मुझे तुम
परे कर
अक्षरों
का अंबार
तो अर्थों की झंझट
बुद्धि की चातुरी
व्यर्थ की बहस
डूब जाते हैं
सब तलहटी में
बन के पत्थर।

## मन

कितना बेमेल है
रिश्ता
मन और तन का।
एक लाँघता है 'अयन'
सूर्य के रथ-सा
दूसरा
अस्त होते सूर्य को
देख
धीमे से करवट
बदल लेती
पृथ्वी-सा
किसकी गति
थमी है थामे
सारे सच व्यर्थ
न ये रुकता है
न
वो।

## विदाई

सबसे मिलना
तय था
सबसे बिछुड़ना
तय था
तब तक
धरती लगाती
रही चक्कर
बदलती रही नित
नए कलेवर
उलझाए रखने का मन।
विदाई की वेला में
खींचे जाने पर
कांटों में उलझे कपड़ों की तरह
होता है अंगरखा तार तार
चल
चल
अब
चल।

**आबिद सुरती**

# ऐ माँ तुझे सलाम

किस्सा कुछ यों शुरू हुआ।

फेसबुक पर मेरी नजरों में एक तस्वीर आयी। देखा तो एकटक देखता ही रहा गया। मिनटों बाद भी मन को तसल्ली नहीं हुई। भीतर काफी उथल-पुथल हो रही थी। वह तस्वीर थी या सवालों का छत्ता? एक के बाद एक सवाल उठते ही जा रहे थे।

कौन है यह माँ-बेटा?

कहाँ जा रहे होंगे?

कितना लंबा सफर होगा?

क्या बेटे को गोद में उठाना आवश्यक था?

असली चुभन यही थी। माँ सिंकिया-सी और बेटा मानो हाथी का बच्चा। फिर भी माँ उसे गोद में उठाये चली जा रही थी। कहाँ? मैं नहीं जानता था। क्यों? मुझे इन माँ-बेटे के बारे में कुछ भी इल्म नहीं था। फिर भी हिया उछल-उछलकर कह रहा था, यह माँ काबिले दाद है।

जब कोई तस्वीर मन को छू जाती है, उसे मित्रों संग 'शेयर' करने में मुझे प्रसन्नता होती है। वह तस्वीर दो 'क्लिक' में ही मेरी 'वॉल' पर आ गई। मैंने शीर्षक दिया - ऐ माँ तुझे सलाम।

फेसबुक फ्रेन्ड्स, फेन्स उस पर टूट पड़े। 4 अप्रैल 2012 की शाम तक अस्सी से अधिक लोगों ने इसे लाइक किया। अचरज की बात तो यह थी कि 23 लोगों ने इसे 'शेयर' भी किया था।

अब हम चुने हुए 'कमेंट्स' देखें।

सबसे पहले गुड़गांव वाली मेरी लेखिका मित्र सरिता शर्मा ने लिखा था - अमेज़िंग एण्ड एन्पायरिंग।

रमेश यादव - माँ का कोई विकल्प नहीं।

हर्षबर्धन - जानना चाहो अगर सबसे कीमती शै को/ लगा दो सब दांव पर , एक माँ खरीदकर देखो।

सुनील बालानी - जीवन की कई दुनिया पावों से नहीं, इरादों से नापी जाती है। यहां भी शक्ति जज़्बे की है।

अरुण सक्सेना - मदर इंडिया, जिंदाबाद।

रुखसाना पठान - इनक्रेडिबल

कुल मिलाकर अठारह टिप्पणी आयी थी। उनमें से एक मेरे गहराई तक उतर गई। रणधीर नामक न्यू जर्सी, यूएसए के एक एनआरआई बंदे ने रुखाई से लिखा था - इन कोरी लफ़्फ़ाज़ी से कभी किसी का भला हुआ है?

मैं चौका - क्या मतलब?

उसने स्पष्टता की - उस महिला को शब्द की नहीं, सहायता की जरूरत है। एस एनआरआई ने मेरी नींद हराम कर दी। रात दस और ग्यारह के बीच खाट पर बेहोश नज़र आने वाला मैं, रात दो बजे तक अपने दीवान पर लेटे-लेटे सोचता रहा। दोबारा प्रश्नों की झड़ी बरसी थी। उन प्रश्नों को क्रम देना आवश्यक था।

1. मां-बेटे की सहायता के लिए सबसे पहले उनका पता लगाना होगा। तस्वीर देखकर यह तय कर पाना कितना कठिन था कि यह किस प्रांत की होगी? महिला देहात की लग रही थी, लेकिन किस राज्य के, किस जिले के, किस गांव की?

2. यदि छायाकार का सुराग मिल जाए तो काम आसान हो सकता है।

ऐसे ही ख्यालों में गोते लगाते हुए मैं पुनः उसे बंदे की 'वॉल' तक पहुंचा, जहां से उठाकर यह तस्वीर मैंने 'शेयर' की थी। जैसे ही तस्वीर पर 'क्लिक' किया, लिंक खुलती चली गई।

तस्वीर गुवाहाटी (आसाम) के अंतरदेशीय बस-अड्डे पर खींची गई थी। विशेष जानकारी यह मिली थी कि लड़के का वजन 90 किलो था। दिखने में वह थुलथुल, बेडौल था। शायद इसलिए कि वह दिमाग के किसी रोग का शिकार था। वह चल भी नहीं सकता था।

इस जानकारी के अंत में छायाकर का नाम भी हुआ - भरत पोद्दार। एक और बात। इस तस्वीर की यात्रा भी शुरू हुई थी, 'गुवाहाटी डॉट कॉम' से और जाने कहां-कहां से होते हुए मेरी 'वॉल' तक पहुंची थी, 'वन इंडिया वन वॉइस' द्वारा।

हम खुशकिस्मत हैं कि इस सदी में सांस ले रहे हैं। इस दौर के पैगंबर बिल गेट और उसके हमसफर डिजिटल गुरुओं ने हमें एक दूसरे के इतना करीब ला दिया है कि मीलों का फासला 'नेट' पर, मोबाइल पर दम भर में तय हो जाता है। यानी कि...

मैं मुंबई में हूं, मेरी गर्लफेंड पैरिस में है और 'स्काइप' (विडियो कॉलिंग) के जरिये मैं उसे देख सकता हूं। उससे बतिया सकता हूं और बातों-बातों में समां रंगीन हो गया तो उसका चुम्मा भी ले सकता हूं।

भरत पोद्दार, छायाकार से फेसबुक 'सर्च' द्वारा संपर्क बनाना भी उतना ही सरल सिद्ध हुआ।

अब तक मेरी उपजाऊ खोपड़ी में काफी कुछ स्पष्ट हो गया था। उस मां के माथे से दुख का पहाड़ हटाने के लिए सिर्फ एक व्हिल चेयर, पहियों वाली कुर्सी की जरूरत थी। उस पर मरीज बेटे को बिठाकर वह नर्स की भांति आसानी से धकेलती हुई, शहर में जहां भी जाना चाहे, जा सकती थी।

मैंने एनआरआई रणधीर नाईक और लेखिका सरिता शर्मा को साथ लेकर फेसबुक पर एक अपील जारी की।

'ऐ मां तुझे सलाम', इस तस्वीर में जो महिला है, उसके लिए हमने एक व्हिल चेयर खरीदने का निश्चय किया है। एक व्हिल-चेयर के दाम रु. 5000 से लेकर 50,000 रुपए तक होते हैं। हमरा इरादा न तो सस्ती वाली कुर्सी खरीदने का है, ना ही सबसे महंगी वाली।

यह अपील चंदे के लिए थी। मैं जानना चाहता था, 'कोरी लफ्फाज़ी' करने वाले कितने मित्र हमारे साथ इस मुहिम में जुड़ते हैं, दूसरे इस साहस के पीछे मेरा एक मकसद यह भी था 'सोशल नेटवर्क', जो गोरखधंधों के कारण काफी बदनाम है, उसका सकारात्मक इस्तेमाल फेसबुकियों के लिए एक मिसाल भी बन गए।

चंदे की वर्षा शुरू हो गई। सबसे पहले, मेरी मित्र प्रोफेसर अर्चना सिंह (सुलतानपुर) का चंदा 1001 रुपए मिला। चेक के साथ लिफाफे में एक चपत थी। ''अपील में मेरा नाम क्यों शामिल नहीं है?'' इस प्रश्न में नाराजगी 5 प्रतिशत और प्यार 15 प्रतिशत था। वह कहना चाहती थी, अपील में यदि उसका नाम भी होता तो उसके हजार से अधिक एमबीए के छात्र भी इस मुहिम में जुड़ जाते और आसानी से चंदे का टार्गेट 25000 रुपए के पार कर जाता।

सोचा, यह नादानी मुझसे कैसे हो गई? उत्तर मिला - कैमरे के जो अधिक करीब होता है, वह अक्सर 'आउट ऑफ फोकस' हो जाता है।

ऐसी खट्टी-मीठी टिप्पणियों के बीच 20,000 रुपए इकट्ठे हो गए। सोने पर सुहागा यह रहा है कि भरत पोद्दार, जिस छायाकार ने मां-बेटे की तस्वीर खींची थी,

**किस्सा कोताह, अब एक आखिरी समस्या का समाधान मुझे ढूंढना था। रुपए 25,000 इकट्ठा हो गए थे। अब सरलता से मैं एक व्हिल-चेयर खरीद सकता था। लेकिन मैं मुंबई में था। जिस महिला की सहायता करनी थी, वह गुवाहाटी में थी।**

उसने 5000 का जुगाड़कर हमारा टार्गेट पूरा कर दिया।

इस छोटी-सी, 80 साल की जिंदगी में मैंने अनुभव किया है कि जब हम बिना स्वार्थ के कोई शुभ काम करने की ठान लेते हैं तो हमसे ईर्ष्या करने वाले, हमारे शत्रु भी बैरभाव भूलकर हमारे साथ ही हो लेते हैं।

1 मई 2012 के रोज़ सरिता ने अपनी 'वॉल' पर लिखा, ''भरत पोद्दार, आबिद सुरती और रणधीर नाईक ने न केवल इस मुहिम को बल दिया, बल्कि अपनी-अपनी जेब से भी, 'ऐ मां तुझे सलाम' के उद्देश्य की पूर्ति के लिए खुले दिल से चंदा डालकर श्रीगणेश किया।''

यह पढ़कर फेसबुक मित्र मीनू जैन से तुरंत कमेंट भेजा, ''आपके जज़्बे को लाख सलाम।''

अंत में सरिता ने एक सटीक बात भी जोड़ी थी- ''हम सब जानते हैं कि फेसबुक कल्चर को, काम कम और बकवास अधिक। न केवल बकवास बल्कि धोखाधड़ी भी यहां अधिक होती है। मैं नहीं जानता, सोलह साल की सेक्सी फूलझड़ी, जो फेसबुक पर मेरी मित्र बनना चाहती है, वह सचमुच लड़की है, या कोई मुच्छड़ किसी लड़की की तस्वीर चिपकाकर अन्य पुरुषों की कमजोरी का मज़ा लेना चाहता है?''

यह तो हल्की-फुल्की मिसाल हुई। फेसबुक-फ्रॉड में कई स्त्री-पुरुष लाखों रुपए गंवा चुहे हैं, तो कई लड़कियां इश्क के भंवर में फंसकर अपनी जिंदगी तबाह कर चुकी हैं।

मैं केवल इतना कहना चाहता हूं - सोशल मीडिया फेसबुक धारदार छूरी है। किसी डॉक्टर के हाथ में तो यह किसी मरीज़ के प्राण बचा सकती है और किसी दुष्ट के हाथ लग जाए तो वह प्राण भी ले सकती है।

चंदे में किसी ने पचास रुपए दिए तो किसी ने सौ। किसी ने हजार भेजे तो किसी ने पांच हजार। सूची काफी लंबी थी। वह देख फिर एक प्रश्न कुलबुलाए - क्या इत्ते सारे नेक लोग भी फेसबुक पर मौजूद हैं?

उत्तर मिला - मियां, यह तो सिर्फ बूंद बराबर है। अल्लाह ने हमारी आंखें खोलने के लिए यह सैंपल हमें भेजा है।

'ऐ मां तुझे सलाम' मुहिम केवल एक महिला को केंद्र में रखकर शुरू की गयी थी। यदि हम इसे और तूल दें और फैलाएं, उन मांओं को शामिल करें, जो भवन निर्माण के कार्यस्थल पर बच्चे को गोद में लिए बोझ ढोती हैं, वे मांए, जो भीख मांगने पर विवश हैं, वे मांए, जिनके पास जिस्मफरोशी के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। तब -

बूंद भर इकट्ठा हुए नेक लोगों की लहर दर लहर आनी शुरू हो जाएगी। बूंद समंदर बन जाएगा। यह कोरी कल्पना नहीं, मेरी सच्चाई है, मेरा खोजा हुआ परम सत्य है।

जबसे मैंने पानी की एक-एक बूंद बचाने की चुनौती स्वीकार की है, भले मानुषों की कतारें दुनिया भर से कूच करती हुई आकर मेरे 'वन मैन एनजीओ' ड्रॉप डैड फाउंडेशन से जुड़ती चली जा रही है।

किस्सा कोताह, अब एक आखिरी समस्या का समाधान मुझे ढूंढना था। रुपए 25,000 इकट्ठा हो गए थे। अब सरलता से मैं एक व्हिल-चेयर खरीद सकता था। लेकिन मैं मुंबई में था। जिस महिला की सहायता करनी थी, वह गुवाहाटी में थी।

समस्या यह थी कि मैं यहां से व्हिल-चेयर खरीदूं तो उसे वहां तक कैसे पहुंचाया जाए? लंबी यात्राएं करने वाले ट्रक से? रेल से या हवाई जहाज से? इससे भी बड़ा सिरदर्द था व्हिल-चेयर का पैकिंग। कहां होगा? किससे करवाना होगा? फ्रेट चार्ज, पैकिंग चार्ज, कुल मिलाकर अतिरिक्त

कितना खर्च होगा? यह सब तो मैंने सोचा ही नहीं था।

एक हफ्ता इसी उधेड़बुन में गुज़र गया। कोई हल नहीं सूझा, तो मैं सरिता को फेसबुक पर मैसेज छोड़ा, मिस गुडगांव, मेरे दिमाग के सारे पुर्जे फेल हो गये है। अब तुम ही कोई रास्ता सुझाओ।

उसी शाम उसका उत्तर आया - आबिदजी, यह तो बड़ा आसान है। क्यों न हम छायाकर, जो गुवाहाटी में रहता है, उसे चंदे के जमा रुपए भेज दें और अनुरोध करें कि वहीं व्हिल-चेयर खरीद, उस महिला के घर पहुंचा दे।

सदियों पहले किसी पुरुष ने कहा था - महिलाओं की अक्ल उनके पांवों में होती है। काश कि उस काठ के उल्लू को भी कोई सरिता मिली होती।

**किस्सा कुछ यों खत्म हुआ**

भरत पोद्दार हम दोनों से, सोच में दो कदम आगे ही निकला। पठ्ठे ने पहियों वाली कुर्सी के बजाय, उसी बजट में, तीन पहियों वाली शानदार गाड़ी खरीदी ताकि उसे लड़का खुद चला सके, यानी कि मां को धकेलना भी न पड़े। अब, एक आखिरी टच। हमने दाताओं से यह वादा किया था कि उनके चंदे का पूरा हिसाब देंगे। यही नहीं, व्हिल चेयर की तस्वीर भी मां-बेटे के साथ इसी वॉल पर पेश करेंगे।मई की दूसरी तारीख को हमने हमारा यह वादा भी पूरा किया। ह्विल-चैयर के बजाय पहियों वाली गाड़ी देखकर दाता भी प्रसन्न हो उठे। इस समाप्ति पर मुझे जो तृप्ति, जो शांति मिली, उसका शब्दों में बयान करना थोड़ा कठिन है, यों समझ लो कि मेरे भीतर मैं नहीं था, आकाश था।
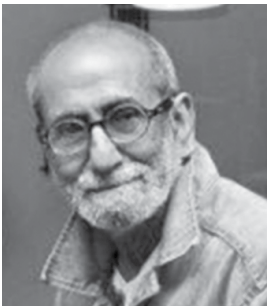
**आबिद सुरती**
मो. 09820184964



**कविता विकास**

# नाम में क्या रखा है

बहुत दिनों बाद घर के कामों का आज जल्दी निबटारा हो गया था। बालकोनी में बैठ कर कई दिनों से पड़ी हुईं किताबों और अखबारों को देखना शुरू किया। यूँ तो बासी अखबारों को देखना ठीक नहीं लगता पर उनमे से किसी अच्छी रेसिपी को काट कर रख लेना मेरी पुरानी आदतों में शामिल है। अभी कैंची लाने के लिए उठना ही चाह रही थी कि डाकिये की आवाज आयी। देखा, माँ की चिट्ठी थी। माँ की चिट्ठी तभी आती है जब कोई विशेष सूचना देनी होती है वरना उन्हें चिट्ठी लिखने की आदत नहीं। लिफाफे को फाड़ते समय दिल धड़क रहा था, जाने किस पर कयामत आ पड़ी हो !संक्षिप्त सा पत्र था वह, '' बल्ला की हालत बहुत खराब है। वह जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रही है। डॉक्टर ने कह दिया है, जिसे बुलाना चाहते हों, बुला लें। उसने तुमसे मिलने की इच्छा जाहिर की है। तू जितनी जल्दी हो सके, आ जा। '' पर बल्ला मुझसे क्यों मिलना चाह रही है ?मेरा कोई खास रिश्ता या कोई ज्यादा लगाव न था। बस यूँ ही जब मायके में थी, उसके दुःख - सुख की बात सुनती। कभी वह मिल जाती तो सलाह - मशविरा देकर उसके जख्मों पर मलहम लगा देती।अब मुझे जाना ही होगा। पर दोपहर तक तो इंतजार करना ही होगा, जब तक पतिदेव लंच लेने न आ जाएँ। आखिर गाड़ी का इंतजाम भी तो वही करेंगे। तब तक मैंने अपने दो - चार कपड़े और जरुरत की चीजों को समेटना शुरू कर दिया। बहुत अनमने भाव से फिर बालकनी में आकर बैठ गयी।

''बल्ला '' सहसा एक काली पर आकर्षक नाक - नक्श वाली आठ बरस की लड़की का विचार कौंध गया। फिर तेरह साल की बल्ला, अट्ठारह, फिर बाइस साल की बल्ला। जब - जब उससे मिली थी, तब - तब की वयस्क होती बल्ला की कई तस्वीरें और किस्से जेहन में उमड़ने लगे। वास्तव में उसका नाम ''बला'' था, पर शब्दों के अपभ्रंश ने उसे ''बल्ला '' बना दिया था। शादी से पहले और बाद में भी जब - जब माँ के घर रही, बल्ला से अवश्य मिलना होता। मेरी उत्सुकता उसके नाम में थी। भला कोई माँ - बाप अपनी संतान का नाम ''बला ''क्यों रखेगा ?

बल्ला के माँ - बापू ने एक अरसे से मेरे मायके की रियासत को संभाल रखा था। सैकड़ों एकड़ जमीन में लहलहाते धान - गेहूँ के खेत और उनकी झूमती बालियां उनकी ही नेमत थी। पापा के अनेक रसूखदार थे पर उन्हें बल्ला के पिता रामप्रसाद और माँ सिमनी पर सबसे ज्यादा विश्वास था।एक पूरा कस्बा पापा की जमींदारी से जुड़ा हुआ था। बल्ला की माँ को उस कसबे में सभी सिमनी ताई कह कर बुलाते थे। सांवले रंग की छरहरी काया और बलखाती चोटी... बहुत खूबसूरत थी वह। माँ की रसोई संभालने के बाद अपने पति का खाना लेकर खेत चली जाती। दिन भर पसीने से तरबतर

रहने वाली सिमनी ताई की साड़ी बदन से चिपक जाती, कभी लटों को संभालती तो कभी आँचल को। उसके आस - पास काम करने वाले मर्दों की आँखों में चमक आ जाती। उसके इर्द - गिर्द चिरौरी करने वाले की कमी नहीं थी । शिबू कुम्हार तो खास कर उसका दीवाना था। सिमनी इस का पूरा फायदा उठाती। कभी - कभी अपने काम भी उसे सौंप कर घुटने तक साड़ी उठा कर बैठ जाती। फिर क्या था, ढलके आँचल और गोरे - गोरे पाँव के नशे में शिबू कुम्हार बर्तन मांजने से लेकर झाडू - बुहारू भी कर डालता। त्योहार - उत्सव के समय उसकी झोली कान की बालियां, चूड़ी, बिंदी, पायल आदि से भर जाती। रामप्रसाद को उसकी यह आदत अच्छी नहीं लगती, पर सिमनी के तीखे तेवर के आगे उसकी एक न चलती।

उनके विवाह के दो साल बाद बल्ला का जन्म हुआ। बल्ला का चेहरा न बाप से मिलता था, न माँ से। पूरे कस्बे में आग की तरह यह खबर फैल गयी कि सिमनी ताई को एकदम काली लड़की पैदा हुई है। मैं उस समय कॉलेज में पढ़ती थी, पर इस हंगामे की सूरत अब तक याद है। चौपाल पर बैठी औरतें दबी जुबान में बातें करतीं कि उसका रूप रंग शिबू से मिलता है। एक दिन अरहर के खेत में उसे निहायत अकेला पाकर शिबू ने अपनी मीठी - मीठी बातों में उसे फंसा लिया या यूँ कहें कि एक बड़े लालच में फँस कर उसने आत्मसमर्पण कर दिया। । हफ्ते भर बाद सिमनी के अंगुली में एक सोने का छल्ला देखा जाने लगा। किसी के पूछने पर बड़ी इतरा कर कहती, ''हम थोड़ी न मांगे, जिसको देना है ऐसे ही दे जाता है। ''उसके बाद सिमनी ताई की उल्टियाँ शुरू हो गईं। बात जो भी हो, राम प्रसाद ने इस बच्ची को कभी नहीं अपनाया। उसके जन्म के हफ्ते भर बाद रामप्रसाद की माँ चेचक के चपेट में आकर चल बसी। अब तो रामप्रसाद उसे मनहूस समझने लगा और एक बला समझ कर उससे नफरत करने लगा। यहीं से उसका नाम बला पड़ गया।

समय अपनी रफ़्तार से चलता रहा। बल्ला अपनी गोल - गोल आँखों को मटका कर खूब बातें करती। भरी दुपहरिया में उसकी माँ उसे बरामदे में लिटा कर कामों में लग जाती। वहीँ बोरे पर पड़ी - पड़ी बल्ला ने करवट बदलना सीखा, फिर बैठना और फिर चल पड़ी। पांच साल की उम्र में स्थानीय विद्यालय में उसके दाखिले का वक़्त आया। इस बीच सिमनी ताई को एक बेटा भी हो गया। जिस दिन दाखिले के लिए उसका बाप उसे लेकर स्कूल गया, उसी दिन उसे खबर मिली कि एक कार दुर्घटना में रामप्रसाद के बापू की तत्काल मृत्यु हो गयी। ऐन मौके पर खीज से भरा रामप्रसाद ने बल्ला का नाम लिखवाया, ''परलय ''मास्साब ने अचरज से कहा, ''यह कैसा नाम है?'' राम प्रसाद बल्ला को वहीँ पर कोसते हुए कहने लगा, ''और क्या नाम रखूं ?, जन्म के साथ मेरी माँ को खा गयी और अब विद्या ग्रहण की शुरूआत में बापू को। जाने आगे और क्या - क्या गुल खिलायेगी।''

बल्ला से जुडी कई बातें याद आने लगी। दरवाजे पर कॉल बेल की आवाज से विचारों से बाहर आयी। लंच टाइम हो गया था, पतिदेव आ गए थे। टेबल पर खाना लगाते हुए माँ की चिट्ठी के बारे में बताई।खाने के समय भी मन अनमना सा रहा। पति ने कल सवेरे की गाड़ी ठीक कर दी। खाने के बाद आँख बंद कर लेटने की कोशिश करने लगी, पर यादों का काफिला रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। पति के वापस ऑफिस जाने के बाद अलमारी से पुराना एलबम निकाला। एक तस्वीर थी बल्ला की, जिसमे वह किताबों के मध्य बैठी हुई थी। मुझे वह घड़ी याद आ गयी। बल्ला अपनी माँ के काम खत्म होने का इंतजार कर रही थी। इन सभी छोटे - छोटे अवसरों में भी वह खाली नहीं बैठती। अपना बस्ता लेकर आती और बरामदे में बैठी पढ़ाई करना आरम्भ कर देती। उस समय वह नवीं कक्षा में थी। पढ़ाई में खूब अव्वल। किशोरावस्था में पाँव रखते ही गजब की चमक उसके चेहरे पर आ गयी थी। एक ऐसी कशिश थी कि लगता था देखती रहूँ। उसी समय चुपके से यह तस्वीर मैंने अपने कैमरे में ली थी। एलबम बंद कर रख दिया। मैंने उस समय पूछा था, ''कैसी पढ़ाई चल रही है बल्ला ?'' अचानक मुझे खड़ा देख कर वह चौंक गयी। ''ठीक, दीदी। अब सालाना परीक्षा है। जम कर मेहनत करनी है।''

''अच्छा दीदी, एक बात बताओ। दसवीं के बाद मैं कहाँ जाऊं ?यहां तो इतनी ही कक्षाएं हैं। मैंने कहा, ''बीजापुर सबसे नजदीकी शहर है। तुम तो अच्छे नंबर लाती ही हो। वहीँ से इंटर कर लेना।''

''''लेकिन दीदी मैं अपना नाम बदलना चाहती हूँ। क्या मैं प्रलय हूँ दी ?'

'नहीं रे, तू तो कितनी अच्छी लड़की है।खूब तेज, खूब मेहनती।यह तो अशिक्षित माँ - बाप की सोच है जो लड़की को बला समझते हैं और किसी अपशगुन से जोड़ कर देखते हैं । जिसकी जितनी जिन्दगी लिखी है, उतनी ही रहेगी, चाहे किसी का जन्म हो, चाहे न हो। ''वैसे तू क्या नाम रखना चाहती है अपना ?''मैंने पूछा।

''रजनीगंधा ''

''दीदी, मैं ''रजनीगंधा '' रखूंगी। '' '' मैंने मास्साब को कह भी दिया है कि अगले साल वह मेरा यही नाम रजिस्टर में लिखें। सब कहते हैं, मैं रजनी की तरह काली हूँ। पर काली हूँ तो क्या हुआ मैं पढ़ाई कर अपनी खुशबू बिखेरूँगी। मैं खेतों में काम नहीं करुँगी। '' अपने नाम का इतना अच्छा विश्लेषण किया था उसने।बहुत से सपने थे बल्ला के। कोमल उम्र की दहलीज पर पाँव रखते ही जो सपने हर युवती के मन में होते हैं। एक बड़े घर में ब्याह रचाना, दफ्तर वाली नौकरी करना, घर में ऐशो - आराम के साधन होना आदि - आदि। उसके बाद पता नही उसने अपना नाम बदला भी की नहीं ?फिर मैं शहर आ गयी। अपनी नौकरी और गृहस्थी में रम गयी। मायके जाकर ज्यादा दिन रहना अब मुनासिब नहीं होता। जब दशहरे की छुट्टी में मायके जाना

हुआ तब माँ से पूछा, ''बल्ला कैसी है माँ ?कहाँ है वो, पढ़ाई पूरी हुई कि नहीं ?'' माँ ने कहा, ''अरे मत पूछ, वह तो आफत की पुड़िया थी। कुछ न कुछ मुसीबत लगी ही रहती थी उसके साथ। ''क्यों क्या हुआ, शहर पढ़ने गयी तो कुछ हो गया क्या ?''

''शहर ?शहर कब गयी वो ?दसवीं कक्षा तक जाते - जाते यहाँ के मनचलों से ऐसी घिरी रहती थी कि माँ - बाप ने उसे घर से निकलने पर पाबंदी लगा दी। उसकी जिद पर माँ ने दसवीं पास कराने तक की जिम्मेवारी ले ली। पर बरसात का पानी भला किसी के रोके रुका है ? मुझे जिस बात का डर था, वही हुआ। एक दिन स्कूल गयी तो वापस नही आयी। ''क्या ?''मेरे मुंह से निकला। ''पर वह तो बहुत पढ़ना चाहती थी, शहर जाकर।''

''केवल इच्छा होने से क्या हुआ, वैसा माहौल भी तो होना चाहिए। जवान होती लड़कियों को अच्छा समझाने वाला कोई न मिले तो पैर बहकते देर थोड़ी न लगती है। इस उम्र में बच्चों की अपनी दलील होती है।''माँ ने कहा।

माँ की बात भी ठीक थी। मैंने पूछा, ''क्या हुआ माँ ?खुल कर बताओ।''

माँ ने बताया, ''एक दिन वह स्कूल गयी तो वापस नहीं लौटी। पता चला चौधरी का बेटा जो वहीँ स्कूल में टीचर था, उसी के साथ भाग गयी। चौधरी ने सर्वत्र अपने आदमी फैला दिए। यहां से दो सौ तीस किलोमीटर दूर रोगदा गाँव में दोनो मिले। वहाँ चौधरी की विधवा बहन रहती थी। उसी ने चुपके से भाई को फोन करवा दिया था। चौधरी का गुस्सा के मारे बुरा हाल था। मिलीभगत दोनों की थी, पर सजा केवल बल्ला को मिली। बीच सड़क पर उसे नंगा करके बेंत बरसाए गए। ''इतना सुनाते - सुनाते माँ का चेहरा भी आवेश से भर गया, मानो चौधरी ने जो किया वह एकतरफा न्याय था। मैंने कहा, ''किसी ने चौधरी को रोका नही ?'' ''कौन रोकता? सब को मनाही थी आगे बढ़ने की।'' '' लड़की भी ऐसी जीवट थी, देह छलनी हो गया पर आँख से एक बूंद पानी नहीं। कहती रही, मास्साब ने ही उसे शहर घुमाने और आगे पढ़ाने का वास्ता दिया था। वह उसकी चिकनी - चुपड़ी बातों में आ गयी। बस यही उसकी गलती थी। अधमरा करके उसे बीच रास्ते पर छोड़ दिया गया।'' माँ की बातों को सुनकर मन उदास हो गया। कैसा दस्तूर है हमारे समाज का! उच्च जाति के लड़के का कोई दोष नहीं दिखता। समरथ के न दोस गुसाईं। सारी यातना उस मासूम के हिस्से आयी।माँ ने बताया कि दूसरे दिन से सिमनी काम पर आना छोड़ दी। रामप्रसाद भी दो - तीन महीने के लिए बेटे के पास चला गया जो दूसरे जिले में पढ़ाई कर रहा था। मैंने सोचा बेटी की बदनामी से आहत होकर कुछ दिनों के लिए ये लोग गाँव छोड़ कर चले गए हैं। रामप्रसाद तो लौट आया, पर दो साल तक सिमनी नहीं लौटी। उसके जाने के करीबन छह - सात महीने के बाद सिमनी का एक खत आया। बड़े ही टूटे - फूटे अक्षरों में लिखा था, ''ठकुराइन, मैं बल्ला के साथ अपनी बुआ सास के यहां आ गयी हूँ। उस दिन बेटी को मार - मार कर चौधरी ने लहूलुहान कर दिया था। चौधरी का ऐसा आतंक कि मन ही मन लोग उसके बेटे को गाली दे रहे थे, पर किसी ने आगे बढ़कर उसे रोकने की हिम्मत नहीं की। माँ की जात हूँ। चौधरी के पैर पकड़ लिए। मैंने कहा, ''रहम करो, सरकार।'' एक बार इसे ले कर यहां से चली जाऊँगी, फिर कभी वापस नही आऊँगी। छोटे सरकार की कोई गलती नहीं है। सब किया - धराया इसी कलंकिनी का है। बहुत गिड़गिड़ाने के बाद उसने उसे छोड़ा और हिदायत दी कि जितनी जल्दी हो सके तुम रातों - रात इसे गाँव से बाहर ले जाओ। और ध्यान रखना इसके पाँव यहाँ दुबारा न पड़े।

मेरा आदमी भी चौधरी का साथ दे रहा था ठकुराइन। वह चाहता था कस्बे के बाहर क्यों जाए, यहीं इसे जहर देकर मार दिया जाए। मैंने बड़ी मुश्किल से उससे छुटकारा पाया और किसी तरह बल्ला को लिए कस्बे से बाहर आ गयी। सीमा पार की एक अकेली औरत ने उसकी हालत पर तरस खा कर हमें रहने की जगह दी। वहीँ उसका उपचार चला। तीन दिन रहने के बाद मैं बालमपुर चली आयी। बल्ला को छोड़ने का मन नहीं होता था। पहली बार जाना औलाद का प्यार क्या होता है। मैं यहीं ठेका पर बालू ढोने का काम करने लगी हूँ। अब तो बल्ला के हाथ पीले कर सुरक्षित हाथों में सौंप कर लौटूँगी। ---सिमनी

माँ से बल्ला की यह कहानी सुन कर मन दुखी हो गया। एक अंजाना सा लगाव हो गया था उससे। मायके से लौट कर अपनी दिनचर्या में रम गयी। फिर कभी ख्याल भी नहीं आया उसका। कभी - कभी किटी पार्टियों में स्त्री सशक्तिकरण पर चचाएँ होतीं तो विपरीत परिस्थितियों में जीवट स्त्री की पारी खेलने वाली महिलाओं में उसका नाम मैं शुमार करती। इससे ज्यादा और कुछ नहीं। आज अचानक पांच साल बाद माँ के पत्र ने एक बार फिर मुझे झकझोर दिया। कितने परतों में दबी पुरानी बातें चलचित्र की तरह गुजर गयीं।

दूसरे दिन सवेरे ही कार से निकल पड़ी। ड्राइवर का पहचाना हुआ रास्ता था और सुबह के समय खाली रोड मिलता गया। पाँच घंटे के बाद करीबन ग्यारह बजे हम बेलापुर पहुँच गए।माँ मेरी मनोस्थिति समझ रहीं थीं। उन्होंने कहा, ''मैंने रात को रामप्रसाद को सन्देश भिजवा दिया था कि तुम कल सुबह पहुँच रही हो। वह अभी तुमसे मिलने आएगा। तब तक तुम खा - पीकर आराम कर लो। ''माँ से मैंने बाकी रिश्तेदारों की थोड़ी जानकारी ली और उनकी तबियत आदि के बारे में बात करते - करते माँ के बगल में लेट गयी। फिर पूछा, ''क्या हुआ है माँ बल्ला को जो भरी जवानी में मौत के एक - एक दिन गिन रही है ? शादी ब्याह तो सिमनी ताई ने करवा दी थी न ?''

माँ ने कहा, ''हाँ, दो - ढाई साल के बाद सिमनी यहां लौट आयी थी, बल्ला के हाथ पीले कर के। पर बेटी, क्या किस्मत लेकर आयी थी यह लड़की !जिस ठेकेदार

के यहां सिमनी काम करती थी, उसी के मुंशी का बेटा बलवंत उस पर रीझ गया। पहले तो उसके बाप ने ना - नुकुर किया, फिर राजी हो गया। लड़के की जिद के आगे उसे झुकना पड़ा। लड़के और उसके बाप ने यह बात छुपाई थी कि बलवंत पहले से ही शादीशुदा था। वह औरत बाँझ निकली। संतान की चाह में इसने बल्ला से दूसरी शादी रचाई। खैर जो होना था हो गया। '' मैंने पूछा, ''बल्ला तो बड़ी उग्र हो गयी होगी, वह तो छल - कपट जरा नहीं बर्दाश्त करती थी। '' 'हाँ, सिमनी बता रही थी कि वह बलवंत को कहती थी कि तुमने प्यार भी किया तो झूठ के आधार पर... एक बार तो सच बता दिया होता , फिर मुझे दूसरी पत्नी होने का कोई गिला नहीं रहता। '' शुरू से विपदा की मारी बल्ला को सुरक्षित हाथों में सौंप कर सिमनी यहां आ गयी। वह तो तीन - चार महीने के बाद बल्ला की एक चिट्ठी से यह खुलासा हुआ। कभी न अपने दुर्भाग्य पर रोने वाली बल्ला समय की मार आगे पस्त हो गयी थी। उसकी सास और बलवंत की पहली औरत रेवा उसे नौकरानी समझतीं थीं। दिन भर काम करवाती और समय से खाना - पानी कुछ न देती । पर बलवंत उसे बहुत मानता था। उसके घर पर रहने पर सब ठीक रहते। उसके दो शब्द मीठे बोल दिन भर की उसकी थकान उतार देते। शारीरिक रूप से बेहद कमजोर बल्ला पेट से थी और छठे महीने के बाद उसे पीलिया हो गया। उचित खान - पान न मिलने के कारण उसकी दशा बिगड़ती गयी। कहते हैं उसे लिवर में कैंसर की शिकायत थी जिसके बारे में थोड़े दिन पहले पता चला। उसने बेटी जना है । '' क्या एक बार फिर से बल्ला का पूरा जीवन वृत्त मेरे आँखों के सामने से गुजर गया। बच्चे के जन्म के समय डॉक्टर ने जवाब दे दिया था कि उसका बचना मुमकिन नहीं है। तब सिमनी उसे जा कर लिवा लाई है। रामप्रसाद उसे नहीं जाने देना चाहता था। कहता था, इस बार गयी तो दुबारा नही आना। पर मैंने ही समझाया, ''अरे, दुश्मन भी मर रहा हो तो शिकायतें दूर हो जातीं हैं। यह तो तुम्हारी बेटी है। तू भी जा उसे ले आ और साथ में उसका परिवार भी आना चाहे तो रोकियो नहीं। '' मुझे माँ की बातों से लगा कि अपरोक्ष रूप से माँ भी सिमनी और बल्ला से काफी जुड़ गयी थी। दोपहर में खाना खा कर हम उठे ही थे कि रामप्रसाद और बलवंत मेरे पास आये। रामप्रसाद काका में ज्यादा बदलाव नहीं आया था, बस यही कि बाल पूरे सफेद हो गए थे। बलवंत मंझोले कद का सुन्दर लड़का था। मैंने उसे गौर से देखा। बल्ला की बीमारी ने उसे भी तोड़ दिया था। बेहद उदास, जिन्दगी से हारा हुआ इंसान लग रहा था। मैंने उसे समझाया, ''बल्ला की खुशियों के आधार तुम ही थे।

> **समय अपनी रफ़्तार से चलता रहा। बल्ला अपनी गोल - गोल आँखों को मटका कर खूब बातें करती। भरी दुपहरिया में उसकी माँ उसे बरामदे में लिटा कर कामों में लग जाती। वहीं बोरे पर पड़ी - पड़ी बल्ला ने करवट बदलना सीखा, फिर बैठना और फिर चल पड़ी।**

उसके सामने हिम्मत से काम लेना। अब बच्ची की जिम्मेवारी तुम पर है। '' बहुत ही सुलझे हुए बच्चे की तरह उसने सर हिलाया।वे दोनों मुझे लेने आये थे। रास्ते में ज्यादा बात चीत नहीं हुई।

जिस कमरे में बल्ला सोई हुई थी, हम सीधे वहीं गए। मेरे आने का आभास उसे हो गया था। उसने पीली - पीली, निस्तेज आँखों से मेरी ओर देखा। लगा जैसे मेरे चेहरे को पढ़ रही हो। हमेशा खिली - खिली रहने वाली बल्ला का देह मात्र एक गठरी में सिमट गया था। मैंने रामप्रसाद और बलवंत को बाहर जाने का इशारा किया। टूटे - फूटे शब्दों में उसने कहा, ''दीदी, मैं जन्म लेते ही दादी को खा गयी। विद्यारम्भ के साथ बाबा को। घर में अनहोनी आयी तो मेरे कारण, बाहर भूकम्प आया तो मेरे कारण। जाने किस मुहूर्त में मेरा जन्म हुआ था.... मेरी बेटी के जन्म के साथ मुझे यही चिंता है कि कहीं उसे भी आजीवन इन्हीं उपालम्भों के साथ न जीना पड़े। मैं तो नहीं रहूंगी, पर दीदी, मेरे आदमी को समझाना कि यह मनहूस नहीं है।'' उसने दूर खाट में सोयी हुई बेटी की ओर इशारा करते हुए कहा। ''सब अपने कर्मों का फल है। वह अच्छा इंसान है, वह समझ जाएगा कि मेरी बेटी मेरे मौत की जिम्मेदार नहीं है। ''

''ऐसा ही होगा, बल्ला, '' मैंने उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा। यह नन्ही सी जान तुम्हे सारे दुखों से मुक्ति दिलाने आई है।'' ''मेरे दिल से बोझ उतर गया दीदी, अब मैं चैन से मर पाऊँगी। '' कहते हुए उसने आँखें बंद कर ली। उसके चेहरे पर निश्चिंतता का भाव देख कर मुझे अच्छा लगा। मैं बाहर आ गयी। बाहर सिमनी ताई बलवंत के माँ - बापू को चाय पिला रही थी। उसके काम में बलवंत की पहली पत्नी रेवा भी हाथ बंटा रही थी। सिमनी ताई ने मुझे भी चाय पीकर जाने कहा, पर बल्ला से मिलने के बाद और वहाँ ठहरने का मन नहीं था।

घर लौट कर मैंने माँ को बल्ला की हालत के बारे में बताया। मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े। जाने कब मेरे प्रति बल्ला ने अगाध प्रेम पाल लिया था। पूरे कस्बे में और किसी पर भरोसा नहीं था उसे, इसलिए मुझे प्रेमपूर्वक बुलवा भेजा। मुझ पर एक बड़ी जिम्मेदारी थी। मैंने ड्राइवर को भेज कर बलवंत को बुलवा लिया। बलवंत इस आकस्मिक बुलावे पर हैरान था। मैंने उससे कहा, ''तुम बेटी को प्यार करते हो बलवंत ?'' ''बहुत ज्यादा जीजी, जो सुख मैं बल्ला को नहीं दे सका, वो इसे दूंगा। ''एक लम्बी सांस लेकर कहने लगा, '' बल्ला ने ही तो मुझे पिता होने का सुख दिया है। मैं उसे भी बहुत चाहता हूँ। '' मैंने उसकी जीविका, माँ - बाप और उसकी पहली पत्नी सबके बारे में जानकारी ली।

**चिर शान्ति के प्रखर से देदीप्यमान हो रहे चेहरे पर बेटी का नाम सुनते ही एक चिर - परिचित मुस्कान उभरी और लुप्त हो गयी। लगा जैसे वह प्यासी आत्मा तृप्त हो गयी। मैंने झट अपना बैग उठाया और एक झटके से कमरे से बाहर हो गयी। दूर तक अंदर के कमरे से आ रही मन्त्रों की आवाज गूंज रही थी... न जायते म्रियते वा न हन्यते हन्यमाने शरीरे .... ।**

''तुम्हे ऐसा तो नहीं लगता न कि तुम्हारी बेटी की वजह से बल्ला की जान जा रही है ?'' ''नहीं तो, बल्ला की बीमारी के लक्षण तो बेटी के पेट में आने के पहले ही हो गए थे। उसका इलाज चल रहा था, पर वहाँ के डॉक्टर को बीमारी की पकड़ देर से हुई। बल्ला के गर्भवती होते ही मेरी पहली पत्नी का भी स्वभाव बदल गया है। वह कहती है कि उसकी संतान से वह भी माँ कहलाने का सुख भोगेगी।''

बलवंत सचमुच अच्छा इंसान था। मैंने उसे बेटी को अच्छे से पालपोश कर बड़ा करने की सलाह दी। अपना पता और फोन नंबर भी दिया और कहा, '' भविष्य में बच्ची के लिए कोई मदद की जरुरत हो तो बेहिचक मुझसे संपर्क करना। '' बलवंत चला गया।

शायद मुझसे मिलने के लिए ही बल्ला जीवित थी। दूसरे दिन तड़के ही उसकी मृत्यु की खबर आयी। मैं उस समय सो कर उठी थी। एक तरह से अच्छा ही लगा कि जिस कष्ट में मैंने उसे देखा था उससे मुक्त हो गयी। जीवन भर वह अभिशप्त आत्मा बनी रही। जाने किस जन्म का दुःख काट रही थी ; भगवान अब उसकी आत्मा को शांति दे। नित्यकर्म से निवृत हो कर मैंने बरामदे से ही देखा, उसके घर के सामने भीड़ जुट रही थी। बल्ला से इस कस्बे का हर कोई जुड़ा हुआ था। सिमनी ताई यहाँ के सबसे पुराने बाशिंदों में से थी, इसलिए उसके सुख - दुःख को सबने अपना माना था। मुझे खुद विश्वास नही हो रहा था कि मेरे साथ उसका जाने किस जन्म का रिश्ता था। घर में काम करने वाले बाकी नौकर - चाकर से पता चला कि सुबह के दस बजते - बजते उसे लेकर सभी घाट चले गए थे। सारे कर्मकांड समाप्त कर दूसरे दिन बलवंत मुझसे मिलने आया। बहुत दुखी था, कहा, '' जीजी, कल से भागवत पाठ करा रहा हूँ। आप भी आएं, बल्ला की आत्मा की शांति के साथ घर की शुद्धि भी आवश्यक है। कहते हैं मन्त्रों में बड़ी शक्ति होती है।''

मैंने कहा, ''ठीक है। मैं कल आ जाऊँगी। परसों मुझे वापस लौटना है। मेरी केवल तीन दिनों की छुट्टी थी।''

दूसरे दिन हम सब सिमनी के घर गए। घर के एक बड़े कमरे में बल्ला की तस्वीर को एक मेज पर रखा गया था जिस पर फूलों की माला चढ़ाई हुई थी। एक दरी बिछी हुई थी, जिस पर बल्ला के मायके, ससुराल और पड़ोस के लोग बैठे हुए थे । माँ को ज्यादा देर नहीं रुकना था। इसलिए वह सिमनी ताई को सांत्वना के दो शब्द बोल कर कुछ नगद दे कर ड्राइवर के साथ लौट गयी। मैं कमरे में पीछे चली गयी और दीवार से सट कर बैठ गयी। बल्ला की तस्वीर वाली मेज के बगल में ही उस की बेटी को गोद में लेकर रेवा बैठी हुई थी और बगल में बलवंत।बल्ला के गर्भ से सही, माँ कहलाने का हक तो इसे मिल ही गया था। कमरे से लगी हुई बालकनी में हवन कुण्ड था जिसमे हवन की सामग्रियाँ डालते हुए मंत्रोच्चारण चल रहा था। कुछ लोगों को छोड़कर पीछे बैठी हुई औरतों में धीरे - धीरे खुसुर - फुसुर आरम्भ हो गया। कोई बल्ला के बारे में बात कर रहा था कि कैसे उसने तकलीफ में आखिरी साँसें लीं तो कोई उसकी बच्ची के परवरिश पर। बलवंत आँखें नीचे किये चुपचाप बैठा हुआ था। तभी किसी ने कहा, ''इस लड़की का भी नाम सोच लो, क्या कह कर पुकारा जाए ?''बलवंत की माँ ने कहा, ''कुछ भी पुकार लो, क्या फर्क पड़ता है .. बल्ला की बेटी... अं.. अ.. जैसे सभी सोचने लगे। इससे पहले की कोई कुछ और नाम बता दे , मैं जोर से चिल्लाई, ''नहीं.. कुछ भी नहीं रखना है। कोई ऐसा - वैसा नाम नहीं चलेगा। '' सिमनी ने उत्तेजित होकर पूछा, ''नाम में क्या रखा है, बीबी ?''

'' नाम में जीवन के सुख - दुःख की परछाईं छिपी होती है। तुमने बल्ला को ''बला'' समझा था न ताई, सो जीवन भर वह विपदा की मारी रही। और जब नाम में कुछ नहीं रखा है तो फिर कुछ अच्छा ही नाम क्यों न रखें। यह मासूम तो इस बगिया की फूल है।''इतनी देर से अनेक लोगों की शायद नजर भी मुझ तक नहीं पड़ी थी। अब सभी पीछे मुड़ कर देख रहे थे। अपने गमगीन चेहरे को उठा कर बलवंत ने वहीँ से कहा , '' तो आप ही बताओ जीजी , क्या रखूं इस बच्ची का नाम ?''अनायास ही मेरे मुंह से निकल पड़ा, ''रजनीगंधा ''बलवंत के चेहरे पर एक गहरी मुस्कान थिरक गयी, मानो यह प्रस्ताव पारित हो गया। मुझे लगा कि जैसे एक खुशबू बिखेरती हुई हवा की एक मद्धम लहर पार कर गयी हो। अब तक बल्ला की जिस तस्वीर पर दर्द की रेखाएं छलक रहीं थीं, वह गायब हो गयीं थीं । चिर शान्ति के प्रखर से देदीप्यमान हो रहे चेहरे पर बेटी का नाम सुनते ही एक चिर - परिचित मुस्कान उभरी और लुप्त हो गयी। लगा जैसे वह प्यासी आत्मा तृप्त हो गयी। मैंने झट अपना बैग उठाया और एक झटके से कमरे से बाहर हो गयी। दूर तक अंदर के कमरे से आ रही मन्त्रों की आवाज गूंज रही थी... न जायते म्रियते वा न हन्यते हन्यमाने शरीरे .... ।

**कविता विकास**
मो. 09431320288

देवांशु

# बेरोजगारी

''इंटरव्यूह का कॉल लेटर आया है...........''। शाम को दीदी दफ्तर से घर लौट कर मेरे हाथ में लिफाफा देकर बोली। मुझे याद आया छः सात माह पहले कृषि विकास अधिकारी के पद के लिए लिखित परीक्षा दी थी। शायद उसी का कॉल है। लिफाफा दीदी के दफ्तर के पते पर आया है। कुछ पल यूं ही लिफाफा हाथ में लिए खड़ा रहा। फिर न जाने क्या सोचकर टेबल पर रखी अस्त-व्यस्त किताबों के बीच लिफाफा रखकर मैं घर से निकल आया।

शाम ढलने लगी थी। न जाने आज क्यों वीरू के चाय ठेले पर जाने को मन नहीं कर रहा था। आखिर चला ही गया। खुद को रोक नहीं सका। वीरू का यह ठेला स्टेशन चौक पर है। अलसुबह से देर रात तक खुला रहता है।

''कैसे अजय भैया, आज कुछ सीरियस लग रहे हो.............''।

ठेले पर पहुँचते ही वीरू ने मुझे टोका। मैनें मुस्कुराने की कोशिश की। इससे पहले वह अपने ग्राहकों के बीच व्यस्त हो गया। मैं बेंच पर बैठ गया।

पिछले तीन सालों से मेरी हर शाम वीरू के इसी ठेले पर बीतने लगी है। इस शहर में मेरा कोई दोस्त नहीं है। बचपन के दोस्त कहें या साथ में पढ़ने वालों में से अधिकतर नौकरी चाकरी में लग गये हैं। कुछ शहर में हैं और कुछ बाहर। सभी अपने बीबी बच्चों के साथ खुशनुमा जिंदगी बिता रहे हैं। दो चार मित्र व्यवसाय में लग गये हैं। उनमें से अनवर ने मेरे ही मोहल्ले में फर्नीचर की दुकान खोल रखी है। कभी-कभी उससे मुलाकात हो जाती है। उससे मिलकर बचपन की पुरानी यादें कुछ पल के लिए ताजी हो जाती हैं। आज अनवर से भी मिलने की इच्छा नहीं हो रही थी। उसके पास भी मन नहीं लगेगा, बेमतलब उसके धंधे का वक्त खराब होगा। मैंने वीरू की तरफ देखा वह व्यस्त है। शाम के अखबार को हाथ में लिए फ्रंट पेज को देखने लगा। आजकल अखबार पढ़ने को मन नहीं करता। समाचार से ज्यादा विज्ञापन छपते हैं। मैंने अखबार बेंच पर रख, वीरू की तरफ देखा। वह आज कुछ ज्यादा ही व्यस्त नजर आ रहा है। कभी-कभी ऐसा वक्त भी आता है। फिर भी वह मुझे अकेला चुप बैठे देखकर बोला-''अकेले बोर हो रहे हो क्या भैया..............''। मैंने हॅंसकर जवाब दिया-''तुम मेरी फिक्र मत करो, अपने ग्राहकों की तरफ ध्यान दो.............''। वीरू से मेरी दोस्ती कब और कैसे शुरू हुई यह मैं नहीं जानता और ना ही वीरू। बस वह चाय पिलाता रहा और मैं पीता रहा। यही क्रम चलता रहा, बरसों से आज तक। अब तो हर शाम हम दोनों एक दूसरे से मिले बिना रह नहीं सकते। हम दोनों की दोस्ती का कोई हिसाब किताब नहीं है। सीधी और सच्ची बात तो यह है कि वीरू के धंधे के खाते में मेरा नाम दर्ज ही नहीं है और न ही मैं उसे रोज शाम के चाय के पैसे देने की स्थिति में रह पाता हूँ। जेब में पैसा आया यानी कि दीदी के तनख्वाह के तीन सौ रुपए मुझे मिले तो समझो वीरू को सौ रुपए मिल गये।

आज मन कुछ उखड़ा हुआ सा लग रहा था। पता नहीं कौन सी बात मुझे अंदर ही अंदर खाये जा रही थी। मैं ठेले पर ज्यादा समय तक बैठ नहीं सका। जब उठने लगा वीरू ने अपनी नजर ग्राहकों की भीड़ में से चुराकर मुझे जाने की मौन स्वीकृति दे दी।

आज मैं जल्दी घर लौट रहा हूँ। रोज देर से घर लौटने की आदत है। जब घर लौटता हूँ सभी लोग सो जाया करते हैं। कभी-कभी दीदी जागती रहती है। टी0व्ही0पर कोई खास प्रोग्राम देखती है। दरवाजे पर दस्तक सुनते ही दीदी बाहर निकल आती है। मेरे अंदर आते ही दरवाजा बन्द कर वह सीधे अपने बिस्तर पर चली जाती है। कभी किसी दिन देर तक दरवाजा खटखटाने से पड़ोस वाले जाग जाते हैं। और अपने कमरे की बत्ती जलाकर खिड़कियों से झांककर मेरी तरफ देखने लगते हैं। शायद उस वक्त वे लोग यह सोचते होंगे कि भवानी प्रसाद शर्मा जी जैसे सज्जन पुरूष का बेटा किस तरह बिगड़ता जा रहा है। ये लोग मुझे कभी शराबी, कभी आवारा और कभी बज्जाद जैसी गॉलियॉ भी देते होंगे। उनके शब्द भले ही मेरे कानों तक न पहुॅंच पाते लेकिन उनकी हरकतों से मुझे साफ समझ में आ जाता है कि मेरा इस तरह रात के वक्त घर लौटना और दरवाजा खटखटाना उन्हें अच्छा नहीं लगता।

आज घर जल्दी पहुॅंचने से सभी लोग आश्चर्यचकित हुए। खाने की तैयारी चल रही थी। बहुत दिनों के बाद मुझे घर पर सभी के साथ खाने का मौका मिला। बाबूजी खाना खा रहे थे। माँ ने मुझे बैठने को कहा। मैं डायनिंग टेबल की कुर्सी पर बैठ गया। तभी माँ बोली- '' प्रभा कह रही थी

कि तुम्हारा इंटरव्यू कॉल आया है.......... ''। ''जी'' मैंने थाली को अपनी ओर खींचते हुए कहा। यह आखरी है............ ''। बाबूजी ने पूछा। मैंने धीरे से जवाब दिया-''जी''.........। तैयारियाँ चल रही हैं..............''। बाबूजी ने मेरी तरफ देखकर पूछा। मैं चुप था। बाबूजी के इस सवाल का जवाब देने को मन नहीं कर रहा था। ''तीस साल उम्र के बाद सरकारी नौकरी नहीं मिलती, पता है तुम्हें........''। बीच में यह बात माँ रोटी परोसते हुए बोली। उसकी आवाज में एक तीखापन था। खाने के स्वाद को कसेला बना दिया। मैं तब भी चुप रहा। कुछ पल यूँ ही मौन बीत गया। मैंने समझा शायद इंटरव्यू वाली बात यहीं समाप्त हो गई है। तभी अचानक बाबूजी बोले-'' मैंने भी सरकारी कार्यालयों की कुर्सियाँ तोड़ी हैं। दुनिया देखा है। जमाना तेजी के साथ बदल रहा है। केवल डिग्रियों से काम नहीं चलेगा..........''।

बाबूजी की आवाज में भारीपन था। वह अंदर ही अंदर खुद को जला रहे थे और मुझे भी। तभी मैं गुस्से से बोला-'' तो क्या मैं किसी नेता के पास जाकर गिड़गिड़ाऊँ या किसी अफसर के पॉव पकड़कर अपनी असमर्थता जाहिर करूँ........''। तभी दीदी मुझ पर झल्लायी-'' अजय............ ''। मैने दीदी को समझाने की कोशिश की-'' तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करती दीदी..................''। तभी दीदी बोली-'' तुम्हें फिर भी कोशिश करनी चाहिए............''।

मैं चुप हो गया बोलता भी क्या। क्यों नहीं मिल रही है मुझे नौकरी। मैं अपनी पीड़ा अंदर ही अंदर गुटक गया। तभी दीदी बोली-''अमित को देखो उसने भी तुम्हारे ही साथ कॉलेज की पढ़ाई की। आज वह बैंक की नौकरी कर रहा है। अपने बीबी बच्चों के साथ खुशहाल जिंदगी बिता रहा है। विवके भी तुम्हारा ही दोस्त है। एक तुम ही हो जिसे आज तक नौकरी नहीं मिली है................''।

''हॉं! क्योंकि मैं एक शिक्षित ब्राह्मण परिवार का बेटा हूँ। और तुमने अभी मेरे जिन मित्रों के नाम बताए वे सब के सब सरकारी कोटे में छूट पाने वाले लोग हैं। सरकार ने उन्हें पढाने-लिखाने से नौकरी तक में छूट दे रखी है। वे लोग इस देश के आरक्षित नागरिक है। क्या मैं उन चयनकताओं के पास यह कहूं कि मेरे परिवार में वृद्व पिता हैं, बीमार माँ है, एक छोटा भाई और एक शादी उम्र बड़ी बहन है जिसकी तनख्वाह से हमारा परिवार जैसा-तैसा चल रहा है। कृपया मुझे यह नौकरी दे दीजिए...........''। दीदी चुप थी। मैं कमरे से बाहर निकल आया। बरामदे में अंधेरा था। शायद बल्ब फ्यूज हो गया है। महीने की आखरी तारीख है। आजकल बाजार में एक बल्ब की कीमत दस-बारह रूप्ये हो गया है। इन दिनों दीदी पर कुछ ज्यादा ही बोझ बढ़ रहा है। बाबूजी की पेंशन के कम पैसों से तो केवल दवाई और घर का छोटा-मोटा खर्च ही निकल पाता है।

आज फिर दीदी ने मुझे यह याद दिलाया है कि अब मेरी उम्र नौकरी के लिए कुछ ही महीने बच गयी है। ठीक ही कहती है-'' अगर नौकरी नहीं मिलेगी तो तुझे खिलायेगा कौन? एक दिन तेरी दीदी की शादी हो जाएगी तब तू क्या करेगा.......... ''। काफी देर तक मैं यही सब बातें सोचता रहा। थोड़ी देर बाद जब पलटकर दरवाजे की तरफ देखा तो सभी कमरों में अंधरा था। सब लोग सो गए थे। मैं बिस्तर पर लौट आया। मुझे नींद नहीं आ रही थी, फिर भी सोने की कोशिश करने लगा। जिंदगी की सच्चाइयों से जुड़े सवाल नुकीले कॉटे की तरह मेरी पीठ में चुभने लगे थे और मैं लहूलूहान होता गया। सुबह जल्दी ही नींद खुल गई। चाय पीकर सीधे वीरू के ठेले पर पहुँचा। सुबह के वक्त मुझे ठेले पर देखकर वीरू को आश्चर्य हुआ। क्योंकि मैं बहुत कम ही उसके ठेले पर सुबह के वक्त जाया करता हूँ। वह जल्दी ही भांप गया कि निश्चय ही कोई जरूरी काम होगा-'' क्या अजय भैया कोई खास बात है क्या..........?''। वीरू मुझे देखकर बोला।

मैंने कहा-''हॉं वीरू भाई। तुमसे एक काम था...........''।

''तो फिर देर किस बात की कह दो भैया जल्दी से .............''। उसने मुस्कुराकर कहा। मैं अपनी बात कहने में थोड़ा सा संकोच कर रहा था। तभी वीरू ने मुझे टोका-'' संकोच किस बात की........ ''।

''काम यह है कि तुम्हारे ठेले पर एक आदमी सुबह आता है जो रोज रायपुर अप-डाउन करता है। तुमने ही एक बार मुझे बताया था कि यह आदमी बड़े काम का है। मंत्रालय में नौकरी करता है। बड़े-बड़े लोगों से परिचय है। काम निकालना खूब आता है। एक हाथ में नोट दो दूसरे हाथ में अपना काम लो..............''।

वीरू ने मुस्कुराते हुए कहा-'' वो राधेलालजी की बात कर रहे हो। हॉं, हॉं मैं समझ गया हूँ। मगर भैया तुम्हारे ऐसा कौन सा काम आ गया है जो तुम उस राधेलाल से करवाना चाहते हो............''।

मैंने धीरे से कहा-'' एक बहुत जरूरी काम आ गया है। वैसे वीरू वह आदमी ईमानदार तो है ना............''।

''किस संबंध में...............'' वीरू ने पूछा।

''ऐसे ही लेन-देन के संबंध में.............''। फिर मैंने वीरू से अपनी सारी बात कह डाली-''तुमसे क्या छिपाना। दरअसल मेरा इंटरव्यू कॉल आया है। कृषि विस्तार अधिकारी पद के लिए चार पद सामान्य है। और सात पद आरक्षित। मुझे यह नौकरी चाहिए............''।

''यह बात है। तो ठीक है। अभी उसके आने का समय हो रहा है। वह बस पहुँचता ही होगा। बात कर लेना। वैसे आदमी ठीक लगता है। मेरे ठेले पर उसे आठ-दस सालों से आते जाते देख रहा हूँ। कई केस तो मेरे ही ठेले पर उसने निपटाया है। अभी तक तो कोई उॅच-नीच वाली बात किसी से सुनी तो नहीं।

इसलिए उस पर भरोसा करना गलत नहीं होगा.............''।

मैं उस आदमी का बेसब्री से इंतजार करने लगा। कुछ ही देर बाद मैंने उसे वीरू के ठेले पर आते देखा। वीरू ने भी देखा।

वीरू ने इशारा कर मुझे अपने पास बुला लिया। उसके आते ही तड़फड़ वीरू ने मेरा परिचय उस आदमी से करवाया फिर सीधे काम की बात कहने को कहा। मैंने उसे पूरी बातें बता दी। उसने गंभीर होकर मेरी बातों को सुना फिर कहने लगा-''ठीक है आप शाम को यही पर मिलना। उस विभाग से संबंधित पूरी जानकारी लेने के बाद ही मैं आपसे कुछ कह पाउँगा''। यह कहकर वह स्टेशन की तरफ तेजी से निकल पड़ा। मैं उसके जाने के रास्ते को देख रहा था। और मन ही मन यह सोच रहा था कि इस बार कुछ भी हो जाए मुझे यह नौकरी मिलनी ही चाहिए किसी भी कीमत पर...........''। वीरू ने मुझे भरोसा दिलाया -''अजय भैया आप निश्चिंत हो जाओ। अगर इसने एक बार किसी काम को हाँ कह दिया तो मेरा ऐसा विश्वास है कि वह काम जरूर होगा। वैसे भी आप का काम ज्यादा पेचीदा नहीं है। लेन-देन का मामला है। बस यह देखना है कि सामने वाला कितना मुँह फाड़ता है............''। मुझे वीरू की बातें

शत-प्रतिशत सच लगी। मैं घर लौट आया।

शाम को जब वीरू के ठेले पर पहुँचा तो मुझे आज कुछ नया-नया सा लगने लगा था। मन में कई तरह के सवाल उमड़-घुमड़ रहे थे। वह आदमी मुझे आज भगवान से कम नहीं लग रहा था। मैं बार-बार वीरू से समय पूछ रहा था कि उनकी ट्रेंन कितने समय यहाँ आती है। मुझे वीरू बार-बार यही कह रहा था कि बस वह आते ही होंगे.............''। और मैंने अपलक उनके आने के इंतजार में आँखें गड़ा रखी थी। तभी अचानक वह मुझे भीड़ में दिखा। कुछ ही देर में वह वीरू के ठेले पर आ पहुँचा। मुझे देखकर मुस्कुराया फिर बोला-''आप मेरा इंतजार कर रहे हैं............''।

मैंने कहा-''जी हाँ..............''।

उसने अपने कंधे से भारी भरकम बैग को उतारकर वीरू के बैंच पर रखा। फिर मेरी तरफ देखकर कहा-''हाँ मैंने बात की है..............''। वैसे बात अभी शुरू ही हुई है। किसी नतीजे पर इतनी जल्दी पहुँचना थोड़ा सा मुश्किल काम है। फिर भी काम उतना कठिन नहीं है। इस तरह के काम मैंने पहले भी निपटाए है................''।

मैंने उत्सुकता से कहा-''आप कोशिश करेंगे तो यह काम हो सकता है। मुझे आप पर पूरा भरोसा है राधेलालजी............''। उसने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा-''नहीं मेरे दोस्त। इतना भरोसा करना भी ठीक नहीं है। दरअसल यह काम चैनल के माध्यम से होते हैं। कहीं किसी चैनल की एक कड़ी टूटी तो फिर काम बिगड़ सकता है। आपका काम रिस्की तो है लेकिन कठिन नहीं है............''।

''तो फिर मैं आश्वस्त रहूँ.............''। मैंने उनकी तरफ विश्वास भरी निगाह से देखते हुए कहा।

''मैं तो हाँ ही कहुँगा, अगर इस बीच कोई अनहोनी घटना घट जाए तो अलग बात होगी...........। वैसे आप पैसों का बन्दोबस्त कर रखीयेगा। पचास हजार काम शुरू होते और फिर बाकी के साठ हजार इंटरव्यू से एक सप्ताह पहले देना होगा। आप तैयार है.............''।

-''जी हाँ............''। मैंने तुरंत हाँ कह दिया। क्योंकि सोचने का काम मैंने पहले ही कर रखा था और ऐसे कामों के लिए रेट तो इतने लगते ही है। फिर हम दोनों ने एक साथ बैठकर चाय पीये। मैंने उसे मोटर साइकिल से जाते देखा, धूएं उड़ाते हुए। और मन ही मन यह सोचने लगा कि जिंदगी ने आखिर मुझे किस मोड़ पर लाकर खड़ा किया। जिस दिन एम.एस. सी. की डिग्री हासिल की थी उस दिन मैंने बचपन के बरसों पुराने सपने को सच होते देखा था। अखबारों में इश्तहार देखकर नौकरी के लिए आवेदन भी किया था। साक्षात्कार के लिए कई बार बुलावा भी आया पर मेरा चयन नहीं हुआ। यह बात

नहीं कि साक्षात्कार में पूछे गये सवालों का मैं जवाब नहीं दे सका। शत-प्रतिशत न सही लेकिन अस्सी प्रतिशत सवालों का जवाब मैंने दिया। लेकिन नौकरी नहीं मिली। मैं पैसों से उन अफसरों को खरीद नहीं सकता और न ही मेरे शरीर से एक्पीरिएन्स की बू आती है। मैं हारता गया और जमाने से पीछे छूटता गया। आज एकाएक उस आदमी से मिलकर मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं पूरी तरह हारा नहीं हूँ लेकिन इतने सारे पैसों का इंतजाम कहाँ से और कैसे करूँ। मुझें ऐसा लगा कि यह काम मुझे ही करना होगा।घर पहुँचकर राधेलाल के बारे में माँ से कहा

दीदी से भी। दोनों ने सहमत होकर कहा माँ की जेवर गिरवी रखकर पैसों का इंतजाम हो जायेगा। लेकिन यह बात पिताजी के कानों तक नहीं पहूँचनी चाहिए इसका ध्यान रखना होगा। वरना वह बहुत दुखी होंगे बिगड़ भी सकते हैं। माँ थोड़ी सी डरी हुई थी-''इतने सारे पैसे किसी अंजान व्यक्ति को देना ठीक होगा? उस व्यक्ति को बिना जाने-पहचाने। वह शहर में कहाॅ किस मुहल्ले में रहता है, इसकी भी खबर लेनी होगी ............ ''। दीदी माँ को समझाने लगी-''ऐसा मत सोचो। अजय ने यह सब कुछ पता करने के बाद ही किया होगा। वैसे भी जमाना तेजी से आगे की ओर बढ़ रहा है। यह सब बातें फिजूल की है.................''। फिर दीदी मेरी तरफ देखकर बोली-''तुम जिस व्यक्ति से यह सब काम करवा रहे हो उसके बारे में सही जानकारी ली है कि नहीं। और तुम भी उसके साथ किसी दिन रायपुर चले जाओ। दो घंटे का सफर है। दफ्तर और दफ्तर के लोगों के बारे में जानकारी हो जाएगी............''। मुझे दीदी की बात सही लगी। मैंने दीदी को ''हाॅ'' कह दिया।

जिस दिन मैं पचास हजार रुपए लेकर राधेलालजी के साथ रायपुर पहुँचा। वहाॅ दफतर के लोगों से मिलने के बाद मुझे ऐसा लगा कि यह काम उचित माध्यम से ही हो रहा है। पैसा डूबने का डर नहीं दिख रहा है और काम भी पूरा होने की उम्मीद है।

इंटरव्यू के सात दिन पहले जब मैं साठ हजार रुपए देने लगा तब राधेलालजी मेरी तरफ देखकर मुस्कुराकर बोले-''इंटरव्यू की तैयारी ठीक चल रही है ना। आपको पास होना जरूरी है। क्योंकि इस बार काफी लड़के आये है। काम्पीटिशन टॅफ है।

आगे का काम हमारे ऊपर छोड़ो..........''।

उस दिन मैंने उनसे कहा था-''सर आप बेफिक्र रहिए। मैं इंटरव्यू अच्छा ही दूॅगा......''। यह कहकर मैं स्वयं को पहले से ज्यादा मजबूत महसूस करने लगा।

इंटरव्यू के दिन सुबह से ही घर का माहौल काफी गंभीर था। बाबूजी को लेन-देन के बारे में कुछ भी पता नहीं था। माँ काफी डरी हुई सी थी। दीदी मुझे समझा रही थी कि इस बार तुम्हें यह नौकरी मिलनी ही चाहिए। मैं सबकी बातें सुन रहा था। नौकरी पाने के लिए क्या-क्या सुनना और करना पड़ता है यह मैं पहली बार महसूस कर रहा था। छः महीने हो गए थे इंटरव्यू हुए लेकिन रिजल्ट का कोई अता-पता नहीं था। इस बीच दो-चार बार मेरी मुलाकात वीरू के ठेले पर राधेलालजी से हुई थी, उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि अभी किसी की पोस्टिंग नहीं हुई है। समय लग सकता है। मैं इंतजार करता रहा। इंतजार करते करते पूरे साल निकल गया लेकिन किसी की पोस्टिंग की कोई खबर नहीं मिली। इस बार राधेलालजी को भी चिंतित होते देख मैं भी थोड़ा सा हताश होने लगा। मुझे हताश देखकर राधेलालजी कहने लगे-''इस बार वक्त कुछ ज्यादा ही लग रहा है.........''।

घर में माँ की तबियत बिगड़ती जा रही थी। इतने बड़े सदमे को वह कैसे सह रही है यह मैं और दीदी ही समझ सकते हैं। एक दिन माँ दीदी से पूछ रही थी-''प्रभा कहीं हमारा पैसा डूब तो नहीं जायेगा। वे लोग अब तक कुछ बता क्यों नहीं रहे हैं..............''। मैं पास में खड़ा सुन रहा था। दीदी माँ से सांत्वाना भरे स्वर में कह रही थी-''यह सब भाग्य की बात है। अजय की किस्मत ही खराब है। बेचारा, उसका कोई दोष नहीं है। वह करता भी तो क्या करता। यह फैसला उसने अकेला नहीं लिया है हम दोनों भी तो उसके साथ है। बाकी सब भगवान पर छोड़ो उसके घर देर है अंधेर नहीं है..................... ''।

कुछ ही दिनों के बाद दीदी भी उदास होने लगी थी। बात बात पर चिड़चिड़ाने लगी थी। बाबूजी घर के माहौल से कुछ ज्यादा ही गंभीर होने लगे थे। इन दिनों वे केवल अपने ही रहा।

अब मुझे राधेलालजी से मिलने का मन नहीं करता और अगर वो कभी मिल भी जाते तो कुछ जानने कमरे में गुमसुम रहने लगे थे। घर का माहौल और लोगों को देखकर मेरी हालत कुछ ऐसी हो गई थी जैसे किसी मछली को झील से निकालकर रेत पर छोड़ दी। मैं केवल अंदर ही अंदर छटपटाता पूछने की इच्छा नहीं होती। एक दिन वीरू से मेरा यह सहमा हुआ चेहरा देखा नहीं गया। उसने कह ही दिया-''अजय भैया! दरअसल दोष मेरा ही है। अगर मैंने उनके बारे में नहीं बताया होता तो तुम्हें यह दिन देखने को नहीं मिलता...........''। और एक दिन वीरू ने अपने ठेले पर राधेलालजी को देखकर काफी तीखे स्वर में पूछ ही दिया-''आखिर आप कुछ खुलकर बताते क्यों नहीं कि बात कहाँ पर अटकी है। हमें भी कुछ तो मालूम पड़े.........''। उस दिन राधेलालजी का चेहरा उतरा हुआ सा था उन्होंने काफी उदास स्वर में कहा-''क्या है वीरू भैया उस इंटरव्यू का रिजल्ट इस लिए नहीं निकल रहा है क्योंकि वे सारे पोस्ट रद्द कर दिये गये हैं। अब अगली योजना में इस पर विचार किया जाएगा। फिर अखबार में नये विज्ञापन छपेंगे................''।

राधेलालजी के स्वर में अपनी असमर्थता की दर्द झलक रही थी। मैं अपने ऑखों के सामने एक अभिशप्त समय को देख रहा था और कानों में माँ की उखड़ती साॅसों की आवाज सुनाई दे रही थी। मुझे लगा कि इस वक्त मुझे घर पहुँचना बहुत जरूरी है। वरना देर हो जाएगी, माँ को यह बताने कि उसका बेटा इस बार भी रोजगार की दौड़ में पीछे छूट गया है। शायद उन्हें यह बात सुनने और बर्दाशत करने की ताकत नहीं होगी, लेकिन इस सच को उन्हें जरूर बताना होगा। वरना उनके मन में एक झूठी बात हमेशा के लिए रह जाएगी। और मैं पूरी ताकत के साथ तेज कदमों से घर की ओर चल पड़ा।

**देवांशु**
मो. 09907126350

# भाषांतर

**नारायण गंगोपाध्याय**

(बांग्ला कहानी)

(कुट्टिमामा की दंत-कथा' बंगला के प्रसिद्ध कहानीकार नारायण गंगोपाध्याय की लोकप्रिय कहानी है। रचनाकार नारायण गंगोपाध्याय ने टेनिदा, हाबुल सेन, कैबला और पैलाराम नामक चार पात्रों के माध्यम से बंगला किशोर साहित्य को एक समृद्ध रचना जगत प्रदान किया)

मैंने गर्वपूर्वक घोषित किया, मालूम है तुम्हें, मेरे छोटे चाचा ने नकली दांत लगवाए हैं।

कैबला एक गुलती लेकर काफी देर से सड़क के एक कुत्ते की पूंछ पर निशाना साधने का प्रयास कर रहा था। कुत्ता बड़े आराम से बैठा था, हठात पता नहीं क्यों 'घों घों' आवाज निकालते हुए पीठ के एक उभरे हुए हिस्से को काट बैठा - फिर सरपट दौड़कर भाग गया। कैबला निराश होकर बोला, धत्त! कब से निशाना लगा रहा था, कमबख्त भाग गया! -मेरी तरफ मुड़कर बोला, तेरे छोटे चाचा ने नकली दांत लगवाए हैं - इसमें कौन सी बड़ी बात है? मेरे बड़े चाचा, मझले चाचा, रांगा चाचा सभी ने नकली दांत लगवाए हैं। अच्छा ये बता कि सभी चाचा नकली दांत क्यों लगवाते हैं, इसका क्या मतलब है?

हाबुल सेन बोला, 'हः! इतना भी नहीं समझ पाते हो। चाचा लोगों का एक ही काम होता है गुस्से में दांत पीसना, इतना दांत पीसेंगे तो दांतों को तो खराब होना ही है या नहीं?'

टेनिदा बैठे-बैठे बड़ी एकाग्रता से माचिस की एक तीली चबा रहे थे। टेनिदा की यही एक आदत है - मुंह को कभी बंद नहीं रख पाते हैं। कुछ न कुछ उन्हें हमेशा चबाने के लिए चाहिए ही चाहिए। रसगुल्ला, कटलेट, दालमोंठ, पकौड़ी, काजू बादाम - किसी के प्रति अरुचि नहीं है। जब कुछ नहीं मिलता तब चुइंगम से लेकर सूखी तीली - जो भी मिलता है उसी को चबाने लगते हैं। एक बार ट्रेन में जाते समय गलती से बगल वाली सीट पर बैठे व्यक्ति की लंबी दाढ़ी की छोर को ही थोड़ा सा चबा लिया था - बड़ी शर्मनाक घटना घटी थी। उस व्यक्ति ने गुस्से में आकर टेनिदा को बकरी-वकरी और न मालूम क्या-क्या कहा था।

हठात तीली चबाना छोड़कर टेनिदा पूछ बैठे, दांत के बारे में क्या बोल रहे थे रे? दांत को लेकर क्या कह रहे थे?

मैंने कहा, मेरे छोटे चाचा ने नकली दांत लगवाए हैं।

कैबला बोला, इश - ये भी कोई खबर है जो तुम डंका पीट रहे हो। मेरे बड़े चाचा, मझले चाचा, फुलू मौसी -

टेनिदा बीच में रोककर बोले, रुक जा बे, ज्यादा चबड़-चबड़ मत कर। तुम लोग नकली दांत लगवाने के बारे में क्या जानते हो? हैं! अगर इस बारे में कोई जानता है तो वह है मेरे कुट्टिमामा गजगोविंद हालदार। साहब लोग उन्हें प्यार से बुलाते हैं मिस्टर गांजा गाविन्डे। उन्होंने भी नकली दांत लगवाए थे। पर वे दांत अभी उनके मुंह में नहीं है - डुवर्स के जंगलों में है!

- क्या वे गिर गए ?

- गिर ही तो गए! - टेनिदा उनकी खड्ग जैसी नाक को खड़ी कर ठाठ से हंसते हुए बोले -इसे बंगला में हाई क्लास कहते हैं। फिर बोले, वह दांत छीन लिए गए।

- दांत छीन लिए? ये क्या बात हुई? मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा, इतनी चाजें रहते हुए भला कोई दांत क्यों छीनने लगा?

- क्यों? टेनिदा फिर हंसेः जरूरत होने पर छीनते हैं। किसने लिये बताओ तो सही?

कैबला बहुत सोच-विचार के बाद बोला, जिसके दांत नहीं हैं वही लेगा।

- ईः, क्या पंडित आदमी है। टेनिदा ने चिढ़ाते हुए बोले, देखो कहता है कि दे दिए। इतना सहज नहीं है, समझा? मेरे कुट्टिमामा के दांत कोई ऐसे-वैसे नहीं है - एक एक मूली की तरह थे। ऐसे बड़े-बड़े.

दांतों को हथियाना जिस किसी के बस की बात नहीं है।

- तो फिर किसने हथियाये? शेर ने? हाबुल का प्रश्न।

- ऐः, शेर ने। रुक बताता हूं। कैबला पहले तू दो आने की दालमोठ ले आ-

मुंह को हंडी की तरह फुलाकर कैबला दालमोठ लेने गया। मतलब, जाना ही पड़ा उसे।

हमारी ललचाई नजरों के सामने अकेले ही सारा दालमोठ खत्म कर टेनिदा बोले, मेरे कुट्टि मामा की बात याद है तुम लोगों को? वही जो चाय के बाग में नौकरी करते हैं और अकेले ही दस लोगों का खाना खत्म कर देते हैं? अरे, वही आदमी- जिसने भालू की नाक जला दी थी।

हमने मिलकर कहा, कैसा विलक्षण व्यक्तित्व है! 'कुट्टि मामा के हाथों के कारनामों' को क्या इतनी आसानी से भूला जा सकता है?

टेनिदा बोले, उन्हीं कुट्टि मामा की ही कहानी है। मालूम है तुम्हें, साहबों ने मामा को ले जाकर चाय के बागानों में नौकरी दिलवाई थी। मामा वहां बड़े मजे में हैं। खाते-पीते हैं और मौज करते हैं। पर ज्यादा सुख क्या भाग्य में सहन होता है रे? एक दिन बड़े चाव से ज्यों ही उन्होंने एक भुनी हुई जंगली मुर्गी को दांतों तले चबाया - ठीक उसी पल झन-झनात! कुट्टि मामा का एक दांत टूटकर प्लेट पर आ गिरा और तीन हिल गए।

क्या हुआ था, मालूम है? उस जंगली मुर्गी को शिकार कर लाए थे। मांस के अंदर चार गोलियां (पक्षी मारने के लिए इस्तेमाल में लाई गई गोलियां) रह गईं थीं। गलती से चबाते ही हो गया एक्सीडेंट, दांत के बारह बज गए।

मांस खाना तो दूर रहा - लगातार तीन घंटों तक कुट्टि मामा नाचते-कूदते रहे। कभी रोकर बोले, बुआजी आप कहां गईं? कभी सुबक-सुबककर बोले, ईं-ही-ही मैं तो गया रे! तो कभी उछल-उछलकर बोलने लगे - अरे जंगली मुर्गी तेरे मन में यही था। आखिर तू मुझे ऐसे रास्ते पर बैठा गई रे?

पूरे तीन दिन तक कुट्टि मामा कुछ भी चबा नहीं पाए। रोज सिर्फ पांच सेर खालिस दूध और चार दर्जन संतरे का रस पीकर किसी तरह अपनी भूख को रोके रखा। दांत का दर्द थोड़ा कम होने पर साहबों ने कुट्टि मामा से कहा, तुम्हें डेंटिस्ट के पास जाना होगा।

- ऐं!

साहबों ने कहा नकली दांत लगवाकर आने होंगे।

डेंटिस्ट का नाम सुनते ही कुट्टि मामा की आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा। सुना है कुट्टि मामा के दादाजी एक बार दांत निकलवाने गए थे। जिस डाक्टर ने दांत निकाला था, वे आंखों से कम देखते थे। डाक्टर दांत समझकर कुट्टि मामा के दादाजी की नाक में संडसी फंसाकर उसी को खींचने लगे। और कहने लगेः इश - क्या विशाल गजदंत है और कितना सख्त है! किसी तरह हिला ही नहीं पा रहा हूं!

कुट्टि मामा के दादाजी हांई-माईकर कहने लगे, 'वह - वह मेरी आंक है! आंक!' खींचने की वजह से नाक नहीं निकल रहा था -'आंक!'

डाक्टर नाराज होते हुए बोले, हांक-डाक करने की जरूरत नहीं है - बहुत हुआ। फिर थोड़ी देर तक खींच -तान के बावजूद जब वे किसी तरह भी दांत निकाल न पाए - तब तंग आकर बोलेः ना, अब नहीं होगा। ऐसे कमबख्त मजबूत दांत मैंने कभी नहीं देखे। ऐसे दांत निकालना किसी सभ्य व्यक्ति के लिए संभव नहीं है।

कुट्टि मामा के दादाजी घर लौटकर नाक के दर्द के मारे बारह दिन तक बिस्तर पर पड़े रहे। तेरहवें दिन वकील को बुलाकर वसीयत तैयार करवाईः 'मेरे पुत्रों या उत्तराधिकारियों में से जो भी कभी नकली दांत लगवाने जाएगा, उसे मैं हमेशा के लिए अपनी संपत्ति से बेदखल कर दूंगा।'

वैसे कुट्टि मामा के दादाजी की संपत्ति पर कुट्टि मामा का कोई अधिकार नहीं है - फिर भी दादाजी का आदेश तो है! कुट्टि मामा टालने का बहाना करने लगे। टूटी-फूटी अंग्रेजी में 'माई नोज' वोज बोलने की कोशिश करने लगे। पर साहबों की जिद तो तुम जानते ही हो? झट से बोल दिए, नो बिना दांतवाला मुंह विल डू! नकली दांत लगवाना ही होगा।

कुट्टि मामा मन ही मन 'तनय तारो तारिणी' कहकर रामप्रसाद जी का गाना गाने लगे, बलि के बकरे की तरह कांपते-कांपते डेंटिस्ट के पास हाजिर हुए। डेंटिस्ट ने पहले ही उन्हें एक कुर्सी पर बैठाया। फिर दांतों पर खुर्र-खुर्र कर एक इलेक्ट्रिक ब्रुश बैठाकर उनको आधा तोड़ दिया। एक छोटी सी हथौड़ी से ठोंक-ठोंककर बाकि सभी दांतों

को भी हिला दिया। अंत में खुश होकर बोला इनके दांतों की दोनों पंक्तियां ही खराब हैं। सब निकाल देने होंगे।

सुनते ही कुट्टि मामा लगभग बेहोश हो गए। जीने की अंतिम कोशिश करते हुए बोले, नाक भी? डाक्टर धमकाकर बोले, चुप रहो! फिर और क्या? एक बड़ी सी संडसी लेकर डाक्टर ने कुरुत-कुरुत कर कुट्टि मामा के सभी दांत निकाल दिए। कुट्टि मामा शीशे में अपना चेहरा देखकर रो दिए।

मुंह के अंदर कुछ भी न रहा - बिल्कुल गांव की चिकनी पगडंडी की तरह- बीच-बीच में गड्ढे। वे ठीक घर की बूढ़ी दाई रामधनिया की तरह दीख रहे थे।

कुट्टि मामा रोते हुए हकलाते हुए बोले, अरे मेरा क्या हो गया देखो - डॉक्टर फिर से धमकाकर बोले, चुप रहो! सात दिन बाद आओ, नकली दांत मिलेंगे।

नकली दांत लेकर कुट्टि मामा लौटे। दिखने में वे दांत वैसे बुरे नहीं थे। खा भी लेते थे। सिर्फ एक ही दिक्कत थी। भोजन का आधा भाग दांतों की जड़ों में जमा रह जाता था। बाद में उन्हें निकाल कर फिर से जुगाली करनी पड़ती थी।

फिर भी वही दांत लेकर ही कुट्टि मामा के सुख-दुख के दिन बीत रहे थे। पर साहबों को तुम जानते ही हो? उनसे सुख बर्दाश्त नहीं होता - तीन दिन भी बैठने की शांति नहीं है उन्हें। एक दिन बोले, मिस्टर गांजा-गाविन्डे, हम शेर का शिकार करने जाएंगे। तुम्हें भी हमारे साथ जाना होगा।

शेर-वेर का मामला कुट्टि मामा को खास पसंद नहीं है। क्योंकि शेर हिरन नहीं है- उसे खाया नहीं जा सकता, बल्कि वही खाने आता है। कुट्टि मामा खाने के शौकीन हैं, किंतु कुट्टि मामा को ही कोई खाना पसंद करे - यह सोचकर भी उनका मन दुखी हो जाता है। शेर कैसे तो होते हैं! जैसे उनके तन से अजीब दुर्गंध आती है, वैसे ही उनका स्वभाव-चरित्र भी अच्छा नहीं है।

कुट्टि मामा कान खुजलाते हुए बोले, शेर सर, - वेरी बैड सर - आई नॉट लाइक सर - पर साहब उनकी बात मानने से रहे! जब जिद पकड़ ली तब जाकर ही मानेंगे। और कुट्टि मामा को भी जबर्दस्ती उठाकर ले गए।

वे वहां पहुंचकर डुवर्स के एक फॉरेस्ट बंगले में ठहरे। चारों ओर घना जंगल। देखकर ही प्राण सूख जाते हैं। रात को हाथियों की चिंघाड़ सुनाई पड़ती है - शेर दहाड़ते हैं। पेड़ों से टुप-टुप कर जोंक शरीर पर गिरने लगते हैं। बंदर खामख्वाह ही चिढ़ा जाते हैं। सुबह कुट्टि मामा दाढ़ी बना रहे थे। एक बंदर आकर 'इलिक-चिलिक' पता नहीं क्या-क्या कहकर उनका ब्रुश लेकर भाग गया! और बाप रे क्या मच्छर हैं! दिन-रात हर पल काट रहे हैं। वो भी क्या काटना है! दो-तीन घंटों में ही जैसे हाथ-पांव-मुंह हर जगह मानो उन्होंने फसल उगा लिए।

उस पर साहब लोग मोटर गाड़ी लेकर शेर मारने के लिए जंगल के अंदर घुस गए। -मिस्टर गांजा-गाविन्डे, तुम भी चलो। कुट्टि मामा तभी बिस्तर पर लेटकर हाथ-पांव उछालने लगे। आंखों को आलू की तरह बड़ी-बड़ी कर मुंह से फेस निकालते हुए बोलने लगेः बेली पेन सर - पेट में दर्द सर - हालत सिरियस सर - यह देखकर साहब लोग काफी देर तक जोर-जोर से हंसते रहे। - यू गांजा-गाविन्डे- वेरी नॉटी- कहकर एक ने कुट्टि मामा के पेट में चिकौटी काट ली- फिर बंदूक कंधे पर लेकर शिकार पर निकल गए।

और ज्यों ही साहब लोग चले गए- त्यों ही तड़ाक से कुट्टि मामा उठ बैठे। साथ-साथ एक दर्जन केला, दो पावरोटी और एक शीशी अमरूद की जेली खाकर तबियत ठीक कर ली। बंगले के पास ही एक पहाड़ी झरना था। वहां एक रुई का पेड़ था। कुट्टि मामा कालीसिंगी रचित एक विशालकाय महाभारत लेकर वहां जा बैठे।

चारों ओर से पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ रहा था। पेट भी भरा था, मीठी-मीठी हवा चल रही थी, - कुट्टि मामा खुशी से महाभारत का वह हिस्सा पढ़ने लगे- जहां भीम बकराक्षस का सारा खाना खा ले रहे हैं। पढ़ते-पढ़ते भावावेश में कुट्टि मामा की आंखों में पानी आ गया, ऐसे में गर्र-गर्र- ज्यों ही कुट्टि मामा आंखें उठाकर देखने लगे - ये क्या सर्वनाश है! झरने के उस पार एक शेर! क्या रूप है! देखते ही घिग्घि बंध जाए। हंडी की तरह एक विशाल सिर, आग की भट्ठी की तरह आंखें, पीले शरीर पर काली डोरियां, अजगर की तरह विशाल पूंछ। बड़ा सा मुंह खोलकर, मूली की तरह दांत निकालकर फिर बोला, गर्र-गर्र- इसी को दुर्भाग्य कहते हैं। जिस शेर के डर से कुट्टि मामा शिकार पर नहीं गए, वही शेर खुद दरवाजे पर आ गया। कोई और होता तो

तभी बेहोश हो जाता, और शेर उसे सैरिडन टैबलेट की तरह टपांग कर निगल लेता। पर मेरे ही मामा हैं न - टूटते हैं पर झुकते नहीं। तत्क्षण महाभारत को बगल में दबाकर सीधे कपास की झाड़ की सबसे उंची डाल पर चढ़ गए!

शेर आकर पेड़ के नीचे तसल्ली से बैठ गया। दो-चार बार अपने नाखूनों से पेड़ के तने को खरोंचने लगा, और उपर की तरफ देखकर बोलने लगाः घँ-घूं-घूं। शायद बोलना चाहता हो - तुम तो एक नंबर के चालाक हो! पर उस शेर ने तब तक उनकी चालाकी नहीं देखी थी। थोड़ी देर बाद देखा। कुछ देर शेर ने ज्यों ही एक जोर की हांक लगाई - त्यों ही कुट्टि मामा हड़ब्रड़ा गए और उनकी बगल से कालीसिंगी का वह भारी-सा महाभारत नीचे गिर गया। और वह गिरा तो सीधे शेर के मुंह पर। उस महाभारत का वजन कम से कम पक्का बारह सेर था - उसकी मार से मनुष्य का खून हो जाए- शेर भी उसकी मार खाकर उलटकर गिर पड़ा। फिर कुछ एक बार गों-गों-घेयां-घेयां बोलकर - कूदकर झरना पार कर जंगल में गायब हो गया!

कुट्टि मामा और आधे घंटे तक पेड़ पर बैठे-बैठे ठक-ठक कर कांपते रहे। फिर नीचे उतरकर देखा कि महाभारत ठीक वैसे ही पड़ा है- उस पर खरोंच भी नहीं आई। और उसके चारों ओर केवल दांत बिखरे पड़े हैं - शेर के दांत। पूरे बत्तीस दांत - महाभारत की चोट से एक भी दांत शेर के पास नहीं बचा। दांतों को समेटकर, महाभारत को सिर पर लगाकर, कुट्टि मामा तेजी से दौड़कर बंगले में आ गए। उसके बाद साहबों के लौटते ही कुट्टि मामा उन्हें दिखाते हुए बोले, टाइगर टूथ।

यह देखकर साहब लोग तो निर्वाक रह गए! ठीक तो, ये शेर के ही तो दांत हैं? पर तुम्हें मिले कहां से?

कुट्टि मामा गर्वपूर्वक, छाती तानकर बोले, आई गो टू झरना। टाइगर कम। आई डू बॉक्सिंग - माने मैंने घूंसे जड़ाए। ऑल टूथ ब्रेक। टाइगर कट डाउन - माने शेर भाग निकला।

पता नहीं साहबों ने विश्वास किया या नहीं, पर कुट्टि मामा की बड़ी खातिरदारी होने लगी। रियली गांजा-गाविन्डे इज ए हीरो! दिखने में डेढ़ पसली का दुबला है तो क्या हुआ - ही इज ए ग्रेट हीरो! उस दिन खाने की मेज पर एक हिरण की पूरी टांग खा गए कुट्टि मामा।

अगले दिन साहब लोग शिकार पर जाते समय उन्हें ले जाने के लिए जिद करने लगेः आज तुम्हें हमारे संग जाना ही पड़ेगा। यू आर ए बिग पहलवान! बड़ा झमेला है! अंत में कुट्टि मामा ने बहुत समझाया, शेर के साथ बॉक्सिंग कर उनके शरीर में बड़ा दर्द हो गया है। आज का दिन रहने देते हैं।

यह सुनकर साहब सोच-विचार कर बोले, ऑल राइट-ऑल राइट।

आज कुट्टि मामा होशियर हो गए हैं - बंगले के बाहर बिल्कुल नहीं निकले। बंगले के बरामदे में एक आरामकुर्सी पर फिर वही कालीसिंगी का महाभारत लेकर बैठे।

-घोंआओ- घूं-

कुट्टि मामा चैंक गए। बंगले के सामने तार की बेड़ियां लगी हुई हैं - उसके उस पार वही शेर। मानो जैसे हाथ जोड़कर बैठा हो। कुट्टि मामा के मुंह की तरफ देखकर करूण स्वर में बोला, घेंआ- कूंई! और मुंह खोलकर दिखाने लगा! ठीक वैसे ही। दांत निकाल देने के बाद कुट्टि मामा के मुख की जो दशा हुई थी, बिल्कुल वैसे ही! बिल्कुल साफ - एक भी दांत नहीं है! बिल्कुल रामधनिया का मुंह हो जैसे। शेर बिल्कुल रोने के स्वर में बोला- घैं -घैं-भांओ! मतलब यह, दांत तो सारे चले गए भैया! मेरा खाना-पीना सब कुछ बंद हो गया है! अब क्या करूं?

पर उससे पहले ही कुट्टि मामा कूदकर घर में घुस गए और दरवाजा बंद कर दिया। शेर और थोड़ी देर तक घैं -घैं- भैं-भैं कर रोते हुए जंगल में चला गया।

अगले दिन कुट्टि मामा खिड़की के पास खड़े होकर, नकली दांतों को निकालकर अच्छे से मांज रहे थे। सुबह की धूप निकली है - साहब लोग तब भी बड़ी बेफिक्री से सो रहे हैं, और कुट्टि मामा खड़े-खड़े दांत मांजते-मांजते बड़े बेसुरे स्वर में गा रहे हैं - 'ऐसी चंद्र ज्योत्सना, अगर मर भी गया तो गम नहीं होगा-'

सुबह के समय चांदनी में गाते-गाते शायद कुट्टि मामा का कहीं भी ध्यान नहीं था। उस तरफ वह बिना दांतों का शेर खिड़की के नीचे झाड़ियों में बैठा था। कुट्टि मामा के दांत नीचे खोलकर रखे हुए- ब्रुश से साफ किए हुए- वह सब कुछ बड़े ध्यान से देख रहा है। ज्यों ही दांत साफ हो गए, वैसे ही कुट्टि मामा नकली दांत अपने मुंह में डालने जा ही रहे थे किः घोआंत् घालूम!

अर्थात तोहफा- यही तो मिल गया!

खिड़की से कूदकर शेर सीधे घर के अंदर घुस आया।

- टा-टाइगर- तक बोलकर ही कुट्टि मामा बेहोश हो गए। पर शेर ने कुछ नहीं किया। फटाक से कुट्टि मामा के सारे नकली दांत अपने मुंह में भर लिए - कुट्टि मामा तब तक पूरी तरह बेहोश नहीं हुए थे- आंखों में आंसू भर कर देखने लगे, वे दांत शेर के मुंह में अच्छे से फिट बैठ गए हैं। दांत पहनकर वह शेर शीशे के सामने खड़े होकर काफी देर तक शेरों वाली हंसी हंसने लगा, फिर चट से टेबुल से टूथ-ब्रुश और टूथ-पेस्ट की ट्यूब अपने मुंह में लेकर फिर खिड़की से भाग निकला-

कुट्टि मामा की भाषा में - ठीक वींड! अर्थात हवा हो गया।

टेनिदा रुके। हमारी तरफ देखकर गर्वित भाव से बोले, इसलिए बोल रहा था, नकली दांतों के बारे में मेरे सामने बात न कर ।हुं!

**अनुवाद : रेशमी पांडा मुखर्जी**
मो. 09433675671

**ए. चेखव**
(रूसी कहानी)

इवान द्रिमिति की सालाना आमदनी बारह सौ रूबल की थी। वह अपने परिवार के साथ संतोष की जिंदगी जी रहा था। इस समय वह नाश्ता करने के बाद सोफे पर बैठा अखबार पढ़ रहा था। उसकी पत्नी ने मेज से जूठे बर्तन उठाते हुए कहा 'अरे, आज तो मैं अखबार पढ़ना ही भूल गई। जरा, देखना इसमें लॉटरी का रिजल्ट आया है क्या?'

द्रिमिति ने कहा 'हां, आया तो है। तुम्हारे टिकट की तारीख निकल तो नहीं गई?'

'नहीं, नहीं मैंने पिछले मंगलवार को ही तो टिकट खरीदा ह'।

'ठीक है, तो फिर जल्दी से टिकट का नंबर बताओ'।

'सीरीज 9499, नंबर 26'

'ठीक है, मैं देखता हूं, 9499......26'

इवान द्रिमिति को लॉटरी खुलने और उससे भाग्य बदलने में बिलकुल भी विश्वास नहीं था। लेकिन, इस समय उसके सामने अखबार खुला था और करने को कुछ भी नहीं था, इसलिए वह लॉटरी के रिजल्ट पर नजरें घुमाने लगा। अभी वह ऊपर से दूसरी लाइन पर ही पहुंचा था कि सीरीज 9499 पर उसकी नजरें अटक कर रह गईं। वह बुरी तरह चौंक उठा। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था और लॉटरी का नंबर देखे बिना उसने अखबार अपने घुटनों पर रख दिया।

उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने बाल्टी भर ठंडा पानी उस पर उंडेल दिया हो और वह जोर-जोर से कांपने लगा हो।

'माशा, 9499 इसमें है, उसकी आवाज कांप रही थी और ऐसा लग रहा था जैसे गहरे कुंए से निकल रही हो'।

उसकी पत्नी ने जब उसके चेहरे पर अचंभे और अविश्वास के मिले-जुले भाव देखे तो उसे यह समझते देर नहीं लगी कि वह मजाक नहीं कर रहा था।

9499, उसने दोहराया और उसका खुद का चेहरा पीला पड़ गया। उसके हाथ से मेजपोश खिसक कर कब मेज पर गिर पड़ा, उसे पता ही नहीं चला।

'हां, हां सचमुच'

'और टिकट का नम्बर ?'

'हां, टिकट नम्बर भी है। लेकिन, रुको, नहीं, मैं कह रहा हूं कि हमारी सीरीज का नम्बर इसमें है। तुम समझ रही हो न, मैं क्या कह रहा हूं?'

अपनी पत्नी की तरफ उसने बेवजह की एक मुस्कान उछाल दी। बदले में उसकी पत्नी के चेहरे पर भी एक मुस्कान खेल गई। वह समझ गई थी कि उसके पति ने अभी टिकट की सीरीज का ही मिलान किया है, नम्बर नहीं देखा है। संभावनाओं का असीम आकाश खुला था। बस भाग्य खुलने ही वाला है, यह अहसास कितना रोमांचक और खुशी से भरा था।

कुछ देर चुप रहने के बाद द्रिमिति ने कहा 'यह हमारी सीरीज है और इस बात की पूरी संभावना है कि हम लॉटरी जीत लें। माना यह एक संभावना है, लेकिन है तो'।

'चलो तो फिर अब नम्बर भी देख लो न ' उसकी पत्नी ने लरजती आवाज में कहा।

'कुछ देर और रुको, निराश होने के लिए हमारे पास काफी समय है। यह ऊपर से दूसरी लाइन में है, इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम जीतते हैं तो पिचहत्तर हजार जीतेंगे। यह कोई मामूली रकम नहीं है। बस, मैं अभी एक नजर डालूंगा और 26 नजर आते ही हम मालामाल हो जाएंगे। क्या सोचती हो, अगर हम सचमुच ही जीत गए तो?'

दोनों कुछ क्षण एक-दूसरे को खामोशी से देखते रहे और फिर ठठा कर हंस पड़े। जीतने की संभावना ने उन्हें जहां

रोमांचित कर दिया था, वहीं हक्का-बक्का भी कर दिया था। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि वे इतनी बड़ी रकम का करेंगे क्या। वे क्या खरीदेंगे, कहां जाएंगे, इस बारे में कुछ भी नहीं सोच पा रहे थे। अगर वे किसी के बारे में सोच रहे थे तो वह था नम्बर 26 और 75000 की रकम।

अपने हाथ में अखबार लिए द्रिमिति कमरे के एक कोने से दूसरे कोने के कई चक्कर लगा चुका था।

'देखो, अगर हम सचमुच जीत गए तो इससे हमारी पूरी जिंदगी बदल जाएगी। यह टिकट तुम्हारा है, अगर मेरा होता तो मैं सबसे पहले पच्चीस हजार में जमीन-जायदाद खरीदता, दस हजार नया फर्नीचर खरीदने, घूमने-फिरने और उधार चुकाने में लगाता और बचे हुए चालीस हजार ब्याज कमाने के लिए बैंक में रख देता'।

उसकी पत्नी गोद में हाथ रखे नीचे जमीन पर बैठी हुई थी। उसने हां में हां मिलाते हुए कहा 'हां, जायदाद खरीदना ठीक रहेगा। टुला या फिर ओरियेलो प्रांत में खरीदना बेहतर रहेगा। हमें समर विला खरीदने की कोई जरूरत नहीं है, फिर इन प्रांतों में जमीन-जायदाद खरीदने से नियमित आय भी होगी'।

उसकी कल्पना में एक के बाद एक कई चित्र उभरने लगे। हर चित्र पहले वाले से अधिक रंगीन और अधिक आकर्षक था। इन सभी कल्पना चित्रों में वह स्वयं को खूब स्वस्थ, संतुष्ट और संभ्रांत महसूस कर रहा था। वह कल्पना कर रहा था कि वह गर्मियों के दिनों में बर्फ सा ठंडा सूप पीने के बाद किसी बाग में एक नींबू के पेड़ तले या फिर समुद्र के किनारे गर्म रेत में लेटा है और समुद्र की चंचल लहरें उसके शरीर से अठखेलियां कर रही हैं। उसका बेटा और बेटी उसके आसपास खेलते हुए रेत के घरौंदे बना रहे हैं या फिर हरी घास में बीरबहूटियां खोजते फिर रहे हैं। वह यह सोच-सोच कर खुश हो रहा है कि उसे आज, कल या फिर कभी आफिस नहीं जाना है।

सिर्फ आराम करने और रेत में लेटे रहने से थक कर वह खेतों में काम करते या मछलियां पकड़ते किसानों को देखने या फिर मशरूम इकट्ठा करने के लिए जंगल की ओर निकल गया है। सूर्यास्त होने पर वह तौलिया और साबुन लेकर नहाने के लिए आ पहुंचा है। उसने आराम से कपड़े उतारे हैं और पानी में कूद पड़ा है। उसके बदन से बहते साबुन के फेन से पानी में बने गोल घेरों के आसपास छोटी-छोटी सुनहरी मछलियां तैर रही हैं और समुद्री घास मस्ती में झूम रही है। वह नहा कर बाहर निकला है जहां क्रीम-रोल्स के साथ गर्म चाय उसका इंतजार कर रही है। शाम को वह पड़ोसियों के साथ गपशप करने या फिर टहलने के लिए निकल गया है।

तभी उसकी पत्नी ने दोहराया 'हां, जमीन-जायदाद खरीदना ही ठीक रहेगा'। वास्तव में, वह भी खुली आंखों से सपने देख रही थी और उसके चेहरे से खुशी और रोमांच टपके पड़ रहे थे।

उधर इवान द्रिमिति कल्पना में शरदकालीन वर्षा, उसकी ठंडी शामों और सेंट मार्टिन की गर्मी का आनंद उठा रहा था। वह सोच रहा था, ऐसे मौसम में नदी के किनारे या फिर बाग में दूर तक टहलने निकल जाना बेहतर रहेगा। उसके बाद नमकीन मशरूम या सॉस में डूबी ककड़ी के साथ बोदका का एक बड़ा गिलास लेना और फिर उसके बाद एक और गिलास लेना कितना अच्छा लगेगा। किचन गार्डन से गाजर और मूली तोड़ कर बच्चे भागते हुए आएंगे और वह सोफे पर आराम से लेट कर अपनी प्रिय पत्रिका के पन्ने पलट रहा होगा या उससे अपने चेहरे को ढंक कर अपनी वास्केट के बटन ढीले कर रहा होगा ताकि आराम से सोया जा सके।

सेंट मार्टिन की गर्मियों के बाद धुंध और बादलों से भरा मौसम आएगा। ऐसे दिनों में रात-दिन बारिश होती रहती है। पत्तेविहीन पेड़ रोते रहते हैं और हवा सीलन भरी और ठंडी हो जाती है। कुत्ते, घोड़े और मुर्गे सभी भीग जाते हैं और मुसमुसाए से झुक कर चलते हैं। घूमने के लिए कोई जगह ही नहीं बचती और घर से बाहर निकले अर्सा बीत जाता है। बस, खिड़की से बाहर देखते हुए कमरे में ही चहलकदमी करते रहो। सबकुछ कितना नीरस हो जाता है।

घूमते-घूमते वह रुक गया और पत्नी से बोला 'माशा, मुझे विदेश जाना चाहिए, है न? शरद के मौसम के आखिरी दिनों में दक्षिणी फ्रांस... भारत...इटली जाने में कितना मजा आएगा'।

'विदेश तो मैं भी जाना चाहती हूं, पर लॉटरी का नम्बर तो देखो' उसकी पत्नी ने कहा।

'रुको, रुको' - उसने कहा और फिर से कमरे के चक्कर लगाने शुरू कर दिए। वह सोच रहा था कि यदि सचमुच ही उसकी पत्नी उसके साथ विदेश जाने के लिए तैयार

हो गई तो? ऐसी औरत के साथ जाने में क्या आनंद आएगा जिसके पास पूरी यात्रा के दौरान सिर्फ अपने और अपने बच्चों के बारे में बात करने, शर्माने और हिम्मत तोड़ने वाली बातें करने के अलावा और कुछ नहीं है। उसने कल्पना की कि उसकी पत्नी कई सारे थैलों, टोकरियों और पार्सलों के साथ ट्रेन में बैठी हुई है और यह सोच-सोच कर उसके सिर में दर्द हो रहा है कि इतनी सारी बेकार की चीजें खरीदने में उसने कितने सारे पैसे फूंक दिए हैं। स्टेशनों पर ट्रेन रुकते ही वह बोतल में गर्म पानी भरने या फिर ब्रेड-मक्खन लाने के लिए भागदौड़ कर रहा है। उसकी पत्नी ने डिनर लाने के लिए सिर्फ इसलिए मना कर दिया है कि वह बहुत मंहगा है।

उसने अपनी पत्नी पर एक नजर डाली और मन ही मन सोचा कि वह उसके साथ होगी तो वह परेशान होता रहेगा। वह हमेशा इस बात का अहसास कराती रहेगी कि लॉटरी टिकट मेरा नहीं, उसका है। पर, यह विदेश जाकर करेगी क्या? मैं अच्छी तरह जानता हूं, यह होटल के कमरे में खुद बंद पड़ी रहेगी और मुझे भी कहीं नहीं जाने देगी।

इस ख्याल के साथ ही जिंदगी में पहली बार यह बात उसके दिमाग में कौंधी कि उसकी पत्नी बड़ी उम्र की और अनाकर्षक होती जा रही है। उसके कपड़ों से हमेशा मसालों की गंध आती रहती है जो उसके शरीर में भी रच-बस गई है। लेकिन, वह अभी भी जवान, सुंदर और स्वस्थ दिखता है। उसे दोबारा शादी करने के लिए कोई भी अच्छी लड़की आसानी से मिल सकती है।

यह सब बकवास है, पर वह विदेश क्यों जाना चाहती है? उसके लिए तो नेपल्स और क्लिन सब एक जैसे हैं। लेकिन, मुझे पता है, वह जाए बिना मानेगी नहीं। उसे तो सिर्फ मेरी राह का रोड़ा बनना है। मैं यह भी जानता हूं कि मुझे पूरी तरह उसी पर निर्भर रहना होगा। रकम हाथ में आते ही वह किसी भी साधारण औरत की तरह उसे ताले में बंद करके रख देगी। फिर, मुझसे ज्यादा तो उसे अपने मायके वाले अजीज हैं। वह हर बात में मुझे ही नीचा दिखाएगी।

**सेंट मार्टिन की गर्मियों के बाद धुंध और बादलों से भरा मौसम आएगा। ऐसे दिनों में रात-दिन बारिश होती रहती है। पत्तेविहीन पेड़ रोते रहते हैं और हवा सीलन भरी और ठंडी हो जाती है। कुत्ते, घोड़े और मुर्गे सभी भीग जाते हैं और मुसमुसाए से झुक कर चलते हैं। घूमने के लिए कोई जगह ही नहीं बचती और घर से बाहर निकले अर्सा बीत जाता है।**

इवान द्रिमिति ने अपनी पत्नी के मायके वालों के बारे में सोचा...उसके वे सभी घटिया भाई-बहन, चाचा-चाची और मामा-मामी, लॉटरी निकलने की खबर सुनते ही घुटनों के बल चल कर यहां आ पहुंचेंगे और चेहरों पर बनावटी मुस्कान लिए गुड़ पर मक्खियों की तरह भिनभिनाने लगेंगे। अगर उन्हें कुछ दे भी दो तो ये घटिया और नीच लोग और मुंह फाड़ेंगे। मना करने पर गालियां बकने और शाप देने पर उतर आएंगे।

उसने अपने रिश्तेदारों के बारे में भी सोचा। उनके चेहरे जो उसे पहले अच्छे लगते थे, इस समय धूर्त और मक्कार नजर आए। उसने महसूस किया कि वे सभी रेंगने वाले कीड़ों की तरह हैं।

उसे अपनी पत्नी का चेहरा भी वीभत्स और घृणास्पद लगा। उसके प्रति उसके मन में गुस्सा फूटने लगा। वह पैसों के बारे में जानती ही क्या है? बहुत ही कंजूसी बरतती है। वह अच्छी तरह जानता है कि अगर वह यह रकम जीत लेती है तो उसे मात्र सौ रूबल पकड़ा कर सारा पैसा संदूक में ताला लगा कर रख देगी।

उसने अपनी पत्नी पर एक घृणा भरी नजर डाली। उसकी पत्नी ने भी उसकी तरफ देखा, उसकी नजरों में भी गुस्सा और नफरत भरे थे। उसकी खुद की भी योजनाएं और अपने दिवास्वप्न थे। उसे अच्छी तरह समझ में आ रहा था कि उसका पति कौनसे सपने देख रहा था और क्या सोच रहा था। उसे यह भी पता था कि जीत की रकम को हड़पने की सबसे पहले कोशिश कौन करेगा। नहीं, वह यह कदापि नहीं होने देगी। उसने आंखें तरेरते हुए अपने पति की ओर देखा, उसकी आंखें कह रही थीं कि तुम जो कुछ सोच रहे हो उसे करने की जुर्रत भी न करना।

अपनी पत्नी की नजरों की भाषा पढ़ने के बाद उसके अंदर का गुस्सा और नफरत भड़कने लगे। उसने तुरंत ही अखबार का चौथा पन्ना पलटा और तेजी से रिजल्ट पर नजर दौड़ाई और विजयी अंदाज में चीख उठा। 'सीरीज 9499, नंबर 46, 26 नहीं'। आशा और नफरत एकसाथ तिरोहित हो गए। इवान द्रिमिति और उसकी पत्नी को ऐसा लगा जैसे उनके कमरे में अंधेरा छा गया हो और उनका दम घुटने लगा हो। उनका जी मिचलाने लगा और उन्हें शाम लम्बी और उबाऊ लगने लगी।

इस सबका मतलब क्या है, इवान द्रिमिति का मूड खराब होने लगा। इस घर में तो चलना भी दूभर हो गया है। जहां भी पैर रखो, कागज के टुकड़ों और कचरे पर ही पैर पड़ते हैं। लगता है, यहां कभी कोई झाड़ू-बुहारू करता ही नहीं है। मन करता है, यहां से बाहर भाग जाओ। सच, यह नर्क तो मेरी जान ही ले लेगा। यहां से निकल कर जो भी पहला पेड़ मिलेगा, उससे लटक कर मैं अपनी जान दे दूंगा।
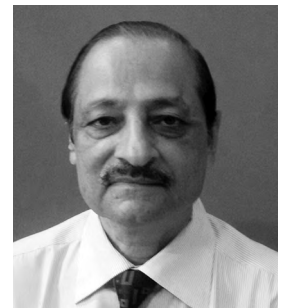
**अनुवाद : डॉ. रमाकांत शर्मा**
मो. 9833443274

इजाबेल अलेंदे

लातिनी अमेरिकी कहानी

# टोड्स माउथ

# मेंढक का मुँह

इजाबेल अलेंदे चिली की सुप्रसिद्ध लेखिका हैं, हालाँकि उनका जन्म लीमा, पेरु में हुआ था। यूरोप और मध्य-पूर्व में बचपन बीता। पत्रकार रहीं। चिली टेलीविजन के लिए कार्य किया। बीस की उम्र में शादी की। उनके चाचा को, जो चिली के पहले चुने हुए मार्क्सवादी राष्ट्रपति थे, जब सैनिकों ने सत्ताच्युत कर दिया तो वे वेनेजुएला चली गईं और काफी समय तक वहाँ तथा अन्य देशों में रहीं। इन दिनों वे सैन फ्रांसिस्को में रहती हैं। कृतियाँ : द हाउस ऑफ स्पिरिट्स (1982), ऑफ लव ऐंड शैडोज (1984), इवा लुना (1991) आदि। इनके उपन्यास तथा इनकी कहानियाँ अनेक भाषाओं में अनूदित हुई हैं। ये लातिनी अमेरिका की बेहद लोकप्रिय लेखिका हैं।

दक्षिण में यह समय बेहद कठिन था। यहाँ इस देश के दक्षिण की बात नहीं हो रही बल्कि यह विश्व के दक्षिणी हिस्से की बात है, जहाँ मौसम का चक्र उलट जाता है और बड़े दिन का त्योहार सभ्य राष्ट्रों की तरह सर्दियों में नहीं आता, बल्कि असभ्य और जंगली जगहों की तरह साल के बीच में आता है। यहाँ का कुछ भाग पथरीला और बर्फीला है; दूसरी ओर अनंत तक फैले मैदान हैं जो टिएरा डेल फ़्यूगो की ओर द्वीपों की माला में तब्दील हो जाते हैं। यहाँ बर्फ से ढँकी चोटियाँ दूर स्थित क्षितिज को भी ढँक लेती हैं और चारो ओर जैसे समय के शुरूआत से मौजूद एक सघन चुप्पी होती है। इस निविड़ एकांत को बीच-बीच में समुद्र की ओर खिसकते, दरकते हिमखंड ही तोड़ते हैं। यह एक कठोर जगह है जहाँ तगड़े, खुरदरे लोग रहते हैं।

चूँकि सदी की शुरूआत में यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं था जिसे अंग्रेज लोग वापस ले जा सकें, इसलिए उन्होंने यहाँ भेड़ें पालने की आधिकारिक अनुमति ले ली। कुछ ही वर्षों में पशु संख्या में इतने अधिक हो गए कि दूर से वे जमीन पर उमड़-घुमड़ रहे बादलों जैसे लगते थे। वे सारी घास चर गए और यहाँ की प्राचीन संस्कृतियों के सभी पूजा-स्थलों को उन्होंने रौंद डाला। यही वह जगह थी जहाँ हर्मेलिंडा अपने अजीबोगरीब खेल-तमाशों के साथ रहती थी।

उस अनुपजाऊ मैदान में 'भेड़पालक लिमिटेड' का बड़ा मुख्यालय किसी भूली-बिसरी इमारत-सा उगा हुआ था। वह इमारत चारों ओर एक बेतुके लॉन से घिरी हुई थी, जिसे संचालक की पत्नी कुदरत की मार से बचाने में लगी रहती थी। वह महिला ब्रितानी साम्राज्य के दूर-दराज के इलाके में जीवन बसर करने के कटु सत्य से समझौता नहीं कर पाई थी और उसने कभी-कभार भोज पर जाने के मौकों पर अपने पति के साथ सज-धज कर जाना जारी रखा। उसका पति पुरातन परम्पराओं के गर्भ में दफ़्न एक निरुत्साही सज्जन था। स्पेन की जबान बोलने वाले स्थानीय चरवाहे शिविर के बैरकों में रहते थे। कँटीली झाड़ियाँ और जंगली गुलाबों की बाड़ उन्हें उनके अंग्रेज मालिकों से अलग रखती थी। जंगली गुलाबों की बाड़ लगाना घास के विशाल मैदानों की अनंतता को सीमित करने का एक निष्फल प्रयास था ताकि विदेशियों को वहाँ इंग्लैंड के कोमल देहात का भ्रम हो।

प्रबंधन के दरबानों की निगरानी में सारे कामगार बड़े दुख-तकलीफ में रहते थे।

ठिठुरने वाली ठंड में उन्हें महीनों तक गरम शोरबा भी नसीब नहीं होता था। वे उतना ही उपेक्षित जीवन जीते थे जितनी उनकी भेड़ें। शाम को हमेशा कोई-न-कोई गिटार उठा लेता और हवा में भावुक गीत तैरने लगते। प्यार के अभाव में वे इतने दरिद्र हो गए थे कि वे अपनी भेड़ों, यहाँ तक कि तट पर पकड़ ली गई सील मछलियों को भी गले लगा कर उनके साथ सो जाते थे, हालाँकि रसोइया उनके खाने में शोरा छिड़कता था ताकि उनका जिस्मानी उत्ताप और उनके स्मृति की आग ठंडी हो जाए। सील मछलियों के बड़े स्तन उन्हें दूध पिलाने वाली माँ की याद दिलाते और यदि वे जीवित, गर्म और धड़कती सील मछली की खाल उतार लेते तो प्रेम से वंचित व्यक्ति अपनी आँखें बंद करके ऐसी कल्पना कर सकता था कि उसने किसी जलपरी को आगोश में ले लिया था। इतनी अड़चनों के बावजूद कामगार अपने मालिकों से ज्यादा मजे करते थे और इसका पूरा श्रेय हर्मेलिंडा के अवैध खेल-तमाशों को जाता है।

हर्मेलिंडा उस पूरे इलाके में एकमात्र युवती थी, यदि हम उस अंग्रेज महिला को छोड़ दें जो खरगोशों का शिकार करने के लिए अपनी बंदूक उठाए गुलाबों के बाड़ को पार करके उस इलाके में घूमती रहती थी। ऐसे में भी पुरुषों को उस अंग्रेज महिला के टोपी से ढँके सिर की एक झलक भर दिखती थी और धूल का गुबार और खरगोशों का पीछा कर रहे भौंकते हुए शिकारी कुत्ते ही नजर आते थे। दूसरी ओर हर्मेलिंडा एक ऐसी युवती थी जिसे वे जी भर कर निहार सकते थे -- एक ऐसी युवती जिसकी धमनियों में यौवन का गर्म खून बहता था और जो मौज-मस्ती में रुचि लेती थी। वह कामगारों को राहत देने का काम करती थी, साथ ही चार पैसे भी कमा लेती। उसे आम तौर पर सभी पुरुष अच्छे लगते थे जबकि कुछ पुरुषों में उसकी विशेष रुचि थी। उन कामगारों और चरवाहों के बीच उसका दर्जा किसी महारानी जैसा था। उसे उनके काम और चाहत की गंध से प्यार था। उनकी खुरदरी आवाज, बढ़ी हुई दाढ़ी वाले उनके गाल, उनके झगड़ालू किंतु निष्कपट स्वभाव और उसके हाथों की आज्ञा मानती उनकी गठी हुई देह उसे इन सबसे प्यार था। वह अपने ग्राहकों की भ्रामक शक्ति और नजाकत से वाकिफ थी किंतु उसने कभी भी इन कमजोरियों का फायदा नहीं उठाया था ; इसके ठीक उलट वह इन दोनों ही चीजों से प्रभावित थी। उसके कामोत्तेजक स्वभाव को मातृ-सुलभ कोमलता के लेश नरम बनाते थे। अक्सर रात के समय वह किसी जरूरतमंद कामगार की फटी कमीज सिल रही होती या किसी बीमार चरवाहे के लिए खाना बना रही होती या दूर कहीं रहती किसी मजदूर की प्रेमिका के लिए प्रेम-पत्र लिख रही होती।

चूने वाली टीन की छत के नीचे हर्मेलिंडा ने एक ऊन भरा गद्दा बिछा रखा था जिसके सहारे वह चार पैसे कमा लेती थी। जब तेज हवा बहती तो वह टीन की छत वीणा और शहनाई जैसे वाद्य-यंत्रों की मिली-जुली आवाज निकालते हुए बजने लगती। हर्मेलिंडा मांसल देह वाली युवती थी जिसकी त्वचा बेदाग थी ; वह दिल खोल कर हँसती थी और उसमें गजब का धैर्य था। कोई भेड़ या खाल उतार ली गई सील मछली कामगारों को उतना मजा नहीं दे सकती थी। क्षणिक आलिंगन में भी वह एक उत्साही और ज़िंदादिल मित्र की तरह पेश आती थी। किसी घोड़े जैसी उसकी गठी हुई जाँघों और सुडौल उरोजों की खबर छह सौ किलोमीटर में फैले उस पूरे जंगली प्रांत में चर्चित हो चुकी थी और दूर-दूर से प्रेमी मीलों की यात्रा करके उसके साथ समय बिताने के लिए यहाँ आते थे। शुक्रवार के दिन दूर-दूर से घुड़सवार इतनी व्यग्रता से वहाँ पहुँचते कि उनके घोड़ों के मुँह से झाग निकल रहा होता। अंग्रेज मालिकों ने वहाँ शराब पीने पर प्रतिबंध लगा रखा था लेकिन हर्मेलिंडा ने अवैध रूप से दारू बनाने का तरीका ढूँढ़ लिया था। यह दारू उसके मेहमानों के उत्साह और जोश को तो बढ़ा देती थी किंतु उनके जिगर का बेड़ा गर्क कर देती थी। इसी की मदद से रात में मनोरंजन के समय लालटेनें भी जलाई जाती थीं। पीने-पिलाने के तीसरे दौर के बाद शर्तें लगनी शुरू हो जाती थीं, जब पुरुषों के लिए अपना ध्यान केंद्रित कर पाना या ठीक से कुछ भी सोच पाना असम्भव हो जाता था।

हर्मेलिंडा ने बिना किसी को धोखा दिए मुनाफा कमाने की एक पक्की योजना बना रखी थी। पत्ते और पासे के खेलों के अलावा सभी पुरुष कई अन्य खेलों पर भी अपने हाथ आजमा सकते थे। इन खेलों में जीतने वालों को इनाम के तौर पर स्वयं हर्मेलिंडा का साथ मिलता था। हार जाने वाले पुरुष अपने रुपए-पैसे हर्मेलिंडा को सौंप देते। हालाँकि विजयी पुरुषों को भी यही करना पड़ता था किंतु उन्हें हर्मेलिंडा के साथ थोड़ी देर के लिए अपना मन बहलाने का अधिकार मिल जाता था।समय की पाबंदी हर्मेलिंडा की अनिच्छा की वजह से नहीं थी। दरअसल वह अपने काम-काज में इतना व्यस्त थी कि उसके लिए हर पुरुष को अलग से ज्यादा समय दे पाना सम्भव नहीं था।

'अंधा मुर्गा' नामक खेल में खिलाड़ियों को अपनी पतलूनें उतार देनी होती थीं, हालाँकि वे अपने जैकेट, टोपियाँ और भेड़ की खाल से बने जूते पहने रख सकते थे क्योंकि अंटार्कटिक की कँपा देने वाली ठंडी हवा से बचना जरूरी था। हर्मेलिंडा सभी पुरुषों की आँखों पर पट्टियाँ बाँध देती और फिर पकड़म-पकड़ाई का खेल शुरू हो जाता। कभी-कभी इस पकड़-धकड़ से उपजा शोर इस हद तक बढ़ जाता कि वह रात की नीरवता को चीरता हुआ शांत बैठे उस अंग्रेज दंपत्ति के कानों में भी जा पड़ता, जो सोने से पहले श्रीलंका से आई अपनी अंतिम चाय पी रहे होते। हालाँकि दोनों पति-पत्नी कामगारों का यह कामुक कोलाहल सुनने के बाद भी ऐसा दिखाते जैसे वह शोर मैदानी इलाके में चलने वाली तेज हवा की साँय-साँय मात्र हो। जो पहला पुरुष आँखों पर पट्टी बँधे होने के बावजूद हर्मेलिंडा को पकड़ लेता, वह खुद को भाग्यवान समझता और उसे

यह सब तब तक वैसे ही चलता रहा जब तक एक दिन पैब्लो नाम का व्यक्ति वहाँ नहीं आ गया। कुछ सिक्कों के एवज में केवल कुछ ही लोगों ने परम आह्लाद के उन चंद घंटों का आनंद लिया था, हालाँकि कई अन्य लोगों ने अपना पूरा वेतन लुटाने के बाद जाकर वह सुख भोगा था। हालाँकि तब तक हर्मेलिंडा ने भी अच्छी-खासी रकम इकट्ठी कर ली थी, किंतु यह काम छोड़ कर साधारण जीवन जीने का विचार उसे कभी नहीं आया। असल में हर्मेलिंडा को अपने काम में बहुत मजा आता था और अपने ग्राहकों को आनंद की अनुभूति देने में उसे गर्व महसूस होता था।

अपने आगोश में लेकर किसी विजयी मुर्गे. की तरह कुकड़ू-कूँ करने लगता।

झूले वाला खेल भी कामगारों के बीच बेहद लोकप्रिय था। हर्मेलिंडा रस्सियों से छत से लटके एक तख़्ते पर बैठ जाती। पुरुषों की भूखी निगाहों के बीच हँसती हुई वह अपनी टाँगों को इस कदर फैला लेती कि वहाँ मौजूद सभी लोगों को यह पता लग जाता कि उसने अपने पीले घाघरे के नीचे कुछ नहीं पहन रखा। सभी खिलाड़ी एक पंक्ति बना लेते। उन्हें हर्मेलिंडा को हासिल करने का केवल एक मौका मिलता। उनमें से जो भी सफल होता वह स्वयं को उस सुंदरी की जाँघों के बीच दबा हुआ पाता। झूले झूलते हुए ही हर्मेलिंडा उसे अपने घाघरे के घेरों के बीच लेकर हवा में उठा लेती। लेकिन इस आनंद का मजा कुछ ही पुरुष ले पाते ; अधिकांश खिलाड़ी अपने साथियों की हुल्लड़बाजी के बीच हार कर फर्श पर लुढ़क जाते।

'मेढक का मुँह' नाम के खेल में तो कोई भी आदमी अपने पूरे महीने की तनख़्वाह केवल पंद्रह मिनटों में हार सकता था। हर्मेलिंडा खड़िया से फर्श पर एक लकीर खींच देती और चार कदम दूर एक गोल घेरा बना देती। उस घेरे में वह अपने घुटने दूर फैला कर पीठ के बल लेट जाती। लालटेनों की रोशनी में उसकी टाँगों का रंग सुनहरा लग रहा होता। फिर उसकी देह का नीम-अँधेरा मध्य भाग खिलाड़ियों को किसी खुले फल-सा दिखने लगता। यह किसी प्रसन्न मेढक के मुँह जैसा भी लगता, जबकि कमरे की हवा कामुकता से भारी और गर्म हो जाती। खिलाड़ी खड़िया से खींची गई लकीर के पीछे खड़े हो कर बारी-बारी से अपने-अपने सिक्के लक्ष्य की ओर फेंकते। उन पुरुषों में से कुछ तो अचूक निशानेबाज थे जो पूरी रफ़्तार से दौड़ रहे किसी डरे हुए जानवर को अपने सधे हुए हाथों से उसकी दो टाँगों के बीच पत्थर मारकर उसी पल वहीं-का-वहीं रोक सकते थे। लेकिन हर्मेलिंडा को एक छकाने वाला तरीका आता था। वह अपनी देह को बड़ी चालाकी से इधर-उधर सरकाती रहती थी। ठीक अंतिम मौके पर उसकी देह ऐसी फिसलती कि सिक्का निशाना चूक जाता। जो सिक्के गोल घेरे के भीतर गिरते वे उसके हो जाते।

यदि किसी भाग्यवान पुरुष का निशाना स्वर्ग के द्वार पर लग जाता तो उसके हाथ जैसे किसी शहंशाह का खजाना लग जाता। विजयी खिलाड़ी पर्दे के पीछे परम आह्लाद की अवस्था में हर्मेलिंडा के साथ दो घंटे बिता सकता था। जिन मुट्ठी भर पुरुषों को यह सौभाग्य मिला था वे बताया करते थे कि हर्मेलिंडा काम-क्रीड़ा के प्राचीन गुप्त राज जानती थी। वह इस प्रक्रिया के दौरान किसी पुरुष को मृत्यु के द्वार तक ले जाकर उसे एक अनुभवी और अक़्लमंद व्यक्ति के रूप में वापस लौटा लाती थी।

पैब्लो नाम का यह आदमी देखने में पतला-दुबला था। उसकी हड्डियाँ किसी चिड़िया जैसी थीं और उसके हाथ बच्चों जैसे थे। लेकिन उसकी शारीरिक बनावट उसके दृढ़ निश्चय के बिलकुल विपरीत थी। भरे-पूरे अंगों वाली हँसमुख हर्मेलिंडा के सामने वह किसी चिड़चिड़े मुर्गे-सा लगता था, किंतु उसका मजाक उड़ाने वाले उसके कोप का भाजन बन गए। गुस्सा दिलाने पर वह किसी विषैले सर्प-सा फुँफकारने लगता, हालाँकि वहाँ झगड़ा नहीं बढ़ा क्योंकि हर्मेलिंडा ने यह नियम बना रखा था कि उसकी छत के नीचे कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं करेगा।

जब उसका सम्मान स्थापित हो गया तो पैब्लो भी शांत हो गया। उसके गंभीर चेहरे पर दृढ़ निश्चय का भाव आ गया। वह बहुत कम बोलता था। उसके बोलने से यह पता चलता था कि वह यूरोपीय मूल का था। दरअसल पुलिसवालों को झाँसा दे कर वह स्पेन से निकल भागा था और अब वह ऐंडीज पर्वत-श्रृंखला के संकरे दर्रों से हो कर वर्जित सामानों की तस्करी करता था। वह एक बदमिजाज, झगड़ालू और एकाकी व्यक्ति के रूप में जाना जाता था जो मौसम, भेड़ों और अंग्रेजों की खिल्ली उड़ाया करता था। उसका कोई निश्चित घर नहीं था और न वह किसी से प्यार करता था, न ही उसकी किसी के प्रति कोई ज़िम्मेदारी थी। लेकिन यौवन की लगाम उसके हाथों में ढीली पड़

रही थी और उसकी हड्डियों में खा जाने वाला अकेलापन घुसने लगा था। कभी-कभी जब उस बफीले प्रदेश में सुबह के समय उसकी नींद खुलती तो उसे अपने अंग-अंग में दर्द महसूस होता। यह दर्द लगातार घुड़सवारी करने की वजह से मांसपेशियों के सख़्त हो जाने के कारण हुआ दर्द नहीं था, बल्कि यह तो जीवन में दुःख और उपेक्षा की मार झेलते रहने की वजह से हो रहा दर्द था। असल में वह अपने एकाकी जीवन से थक चुका था, किंतु उसे लगता था कि वह घरेलू जीवन के लिए नहीं बना था।

वह दक्षिण की ओर इसलिए आया था क्योंकि उसने उड़ती-उड़ती-सी यह खबर सुनी थी कि दुनिया के अंत में स्थित दूर कहीं बियाबान में एक युवती रहती थी जो हवा के बहने की दिशा बदल सकती थी, और वह उस सुंदरी को अपनी आँखों से देखना चाहता था। लम्बी दूरी और रास्तों के खतरों ने उसके निश्चय को कमजोर नहीं किया और अंत में जब वह हर्मेलिंडा के शराबखाने पर पहुँचा और उसे करीब से देखा तो वह उसी पल इस नतीजे पर पहुँच गया कि वह भी उसकी तरह की मिट्टी की बनी थी और इतनी लंबी यात्रा करके आने के बाद हर्मेलिंडा को प्राप्त किए बिना उसका जीवन व्यर्थ हो जाएगा।वह कमरे के एक कोने में बैठकर हर्मेलिंडा की चालों का अध्ययन करता रहा और अपनी संभावनाओं को आँकता रहा।

पैब्लो की आँतें जैसे इस्पात की बनी थीं। हर्मेलिंडा के यहाँ बनी दारू के कई गिलास पीने के बाद भी उसके होशो-हवास पूरी तरह कायम थे। उसे बाकी सभी खेल बेहद बचकाने लगे और उसने उनमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। लेकिन ढलती हुई शाम के समय अंत में वह घड़ी आ ही गई जिसकी सब को शिद्दत से प्रतीक्षा थी -- मेढक के मुँह का खेल शुरू होने वाला था। दारू को भूल कर पैब्लो भी खड़िया से खींची गई लकीर और घेरे के पास खड़े पुरुषों की भीड़ में शामिल हो गया। घेरे में पीठ के बल लेटी हर्मेलिंडा उसे किसी जंगली शेरनी की तरह सुंदर लग रही थी। उसके भीतर का शिकारी जागृत होने लगा और अपनी लम्बी यात्रा के दौरान उसने एकाकीपन का जो अनाम दर्द सहा था, अब वह एक मीठी प्रत्याशा में बदल गया। उसकी निगाहें हर्मेलिंडा के उन तलवों, घुटनों, मांसपेशियों और सुनहरी टाँगों को सोखती रहीं जो घाघरे से बाहर कहर ढा रही थीं। वह जान गया कि उसे यह सब हासिल करने का केवल एक अवसर मिलेगा।

पैब्लो नियत जगह पर पहुँचा और अपने पैर जमीन पर जमा कर उसने निशाना साधा। वह कोई खेल नहीं, उसके अस्तित्व की परीक्षा थी। चाकू जैसी अपनी धारदार निगाहों से उसने हर्मेलिंडा को स्तंभित कर दिया जिसकी वजह से वह सुंदरी हिलना-डुलना भूल गई। या शायद बात यह नहीं थी।यह भी संभव है कि अन्य पुरुषों की भीड़ में से शायद हर्मेलिंडा ने ही पैब्लो को अपने साथ के लिए चुना हो। जो भी रहा हो, पैब्लो ने एक लंबी साँस ली और अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर के उसने लक्ष्य की ओर सिक्का उछाल दिया। सिक्के ने अर्द्ध-चंद्राकार मार्ग लिया और भीड़ के सामने ही सीधा निशाने पर जा लगा। इस कारनामे को वाह-वाहियों और ईर्ष्या-भरी सीटियों से सराहा गया। तस्कर लापरवाही से तीन कदम आगे बढ़ा और उसने हर्मेलिंडा का हाथ पकड़ कर उसे अपने आगोश में खींच लिया। दो घंटों की अवधि में वह यह साबित करने के लिए तैयार लग रहा था कि हर्मेलिंडा उसके बिना नहीं रह सकती। वह उसे लगभग खींचता हुआ दूसरे कमरे के भीतर ले गया। बंद दरवाजे के बाहर खड़ी पुरुषों की भीड़ दारू पीती रही और दो घंटे का समय बीतने की प्रतीक्षा करती रही, किंतु पैब्लो और हर्मेलिंडा दो घंटे बीत जाने के बाद भी बाहर नहीं आए। तीन घंटे हो गए, फिर चार और अंत में पूरी रात बीत गई। सवेरा हो गया। काम पर जाने की घंटी बजने लगी लेकिन दरवाजा नहीं खुला।

दोनों प्रेमी दोपहर के समय कमरे से बाहर आए। बिना किसी की ओर देखे पैब्लो सीधा अपने घोड़े की ओर बाहर चला गया। उसने फटाफट हर्मेलिंडा के लिए एक दूसरे घोड़े का और उनका सामान उठाने के लिए एक खच्चर का प्रबंध किया।

हर्मेलिंडा ने घुड़सवारी करने वाली पोशाक पहनी हुई थी और उसके पास रुपयों और सिक्कों से भरा एक थैला था जो उसने कमर से बाँध रखा था। उसकी आँखें एक नई तरह की खुशी से चमक रही थीं और उसकी कामोत्तेजक चाल में संतोष की थिरकन थी। गंभीरता से दोनों ने अपना सामान खच्चर की पीठ पर लाद कर बाँधा। फिर वे अपने-अपने घोड़ों पर बैठे और रवाना हो गए। चलते-चलते हर्मेलिंडा ने अपने उदास प्रशंसकों की ओर हल्का-सा हाथ हिलाया, और फिर बिना एक बार भी पीछे देखे वह पैब्लो के साथ दूर तक फैले उस बंजर मैदान की ओर चली गई। वह कभी वापस नहीं आई।

हर्मेलिंडा के चले जाने से उपजी निराशा और हताशा कामगारों पर इस कदर हावी हो गई कि उनका ध्यान बँटाने के लिए भेड़पालक लिमिटेड कंपनी के प्रबंधकों को झूले लगवाने पड़े। अंग्रेज मालिकों ने वहाँ कामगारों के लिए तीरंदाजी और बरछेबाजी की प्रतियोगिताएँ शुरू करवाईं ताकि वे लोग वहाँ निशानेबाजी का अभ्यास कर सकें।

यहाँ तक कि मालिकों ने मिट्टी से बना खुले मुँह वाला एक मेंढक भी लंदन से आयात किया ताकि सभी कामगार सिक्के उछालने की कला में पारंगत हो सकें, पर ये सभी चीजें उपेक्षित पड़ी रहीं। अंत में ये सभी खिलौने अंग्रेज संचालक के मकान के अहाते में डाल दिए गए जहाँ आज भी शाम का अँधेरा होने पर अंग्रेज लोग अपनी ऊब दूर करने के लिए इनसे खेलते हैं।

**अनुवाद : सुशांत**
मो. 8512070086

## 1. प्रश्नोत्तर

**मैंने** पेड़ से पूछा, 'इस मौसम में भी एक आम तक नहीं है तुम्हारे पास?'

पेड़ पहले कांपा, फिर थोड़ा हिला-डोला और फिर बोला 'बहुत आम थे, बोर और टिकोरे, जैसे-जैसे टिकोरों का वजन बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरी डालियां भी लचती गईं। लेकिन मेरे इर्द-गिर्द छितराये इन ईंट-पत्थरों से कम।' उसी सहजता और सरलता से पेड़ ने अपना बयान जारी रखते हुए कहा- 'अभी भी ढकी रह गई है एक घउद पश्चिम वाली डाल में, पत्तों की सघनता के बीच, चाहों तो तुम भी एक ढेला उठाओ और साधो निशाना, उसी बहाने घायल करो मुझे।'

मुझे लगा कि 'नाहक किया मैने पेड़ से वार्तालाप।' मुंह पिटाकर लौटने ही वाला था कि चू पड़ी आमों की एक 'घउद' ठीक मेरे सामने।

## 2. बंटवारा

**उस दिन दो सगे भाइयों की एक शहरी पंचायत में मुझे भी जाना पड़ा।**

**दोनों भाई गिद्ध-दृष्टि से अपनी-अपनी बुद्धि खरोच रहे थे। एक-दूसरे से बीस ही पड़ना चाहते थे।**

**बड़े बड़े घर-गृहस्थी के सामान तो समझौते के आधार पर बांटे जा चुके थे, अब छोटे-छोटे सामानों की बारी थी।**

**एक चम्मच इधर तो,**

## 4. लाट साहब

**यह** पितृपक्ष का आखिरी दिन था... पकवान बन गये थे और महुआ के पांच बड़े चिकने पत्तों पर, विधिपूर्वक परोस भी दिए गए थे, कमरे की खुली छत पर।

बस अब इंतजार था तो कौवों का। उनकी निगाह बार-बार उधर-इधर जाती, लेकिन कोई कौवा न देखकर , निराशा ही हाथ लगी। उन्हें लगा इस बार दादा-परदादा भूखें ही रहेंगे क्या? गोया दादे-परदादों को साल में एक बार ही भूख लगती है क्या?

तभी दरवाजे पर सूरदास बाबा ने खॅजड़ी पर सुर मिलाया, 'मन फूला-फूला फिरै जगत में, कैसा नाता रे'...

खिसियानी बिल्ली की तरह वे बारजे से ही बरस पड़े- 'साले अंधे की औलाद पिण्ड नहीं छोड़ेंगे, चलो आगे बढ़ो, अभी हाथ नहीं खाली है।' घुड़की सुनकर खंजड़ी की आवाज आगे बढ़ गई।

उन्हें अब भी 'काग भुसुण्डी' की प्रतिक्षा थी, जिनका दूर-दूर तक, कहीं कोई आभास नहीं था।
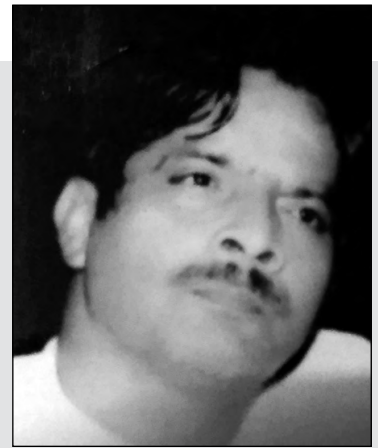
वे युवा पीढ़ी के कॉमरेड हैं। प्रदेश सरकार के मुलाजिम, युनियन में भी कुछ हैं, लच्छेदार भाषण आदि में भी सिद्धहस्त।

उन्होंने अपने बेटे का स्कूल वाला नाम संघर्ष कुमार तक रख दिया है, लेकिन पुकारने वाला नाम 'लाटसाहब'।

उस दिन कोई भी कौवा अंधेरा होने तक, उनकी छत पर नहीं ही आया। हां कुछ चीटियां और एक काली बिल्ली जरूर आई थी।

एक चम्मच उधर, एक चिमटा उधर तो एक बेलन इधर...

बरामदे में एक स्टूल पर रखा टेबल फैन हवा का एक बराबर मात्रा दोनों भाइयों की ओर झोंक रहा था, कभी इधर तो कभी उधर, आधा-आधा एकदम भौतिक तुला की माप।

मुझे लगा अब हवा तक बंट रही है, दोनों भाइयों में।

## 3. लाज

**बड़ा** भाई क्लर्क था, छोटा भाई सेंट्रल एक्साइज में निरीक्षक और पिता भी रिटायर्ड होने के करीब एक अनुभाग अधिकारी यानी कि हेड क्लर्क। छोटी बहन की तिलक के लिए बड़े भाई ने अपने फंड से दस हजार रुपए निकालकर, पिताजी को चुपचाप सहयोग किया। पूरे मन से बगैर-अपनी पत्नी को भी बताये। उसने सोचा था कि आगे-पीछे तो बता ही देगा। छोटा भाई खामोश ही रहा। शादी के दौरान 'खिचड़ी' की रस्म-अदायगी पर छोटे भाई ने एक अदद साइकिल अपनी ओर से सबके सामने भेंट कर दिया। बिदाई के बाद पिताजी ने नाते रिश्तेदारों से कहा- 'इंस्पेक्टर साहब ने तो लाज ही रख लिया'। ससुराल से लौटने के बाद छोटी बहन ने अपनी बड़ी भाभी को ताना मारा 'बड़के भाई ने तो कानी कौड़ी तक नहीं दिया, छोटके भइया ने तो उनके लिए साइकिल दिया।

## 5. बंधन

**बुझे** मन से उड़ा जा रहा था एक सुग्गा। भूख और प्यास के कारण उसकी चाल बाधित हो रही थी, कुछ-कुछ लड़खड़ाने भी लगा था वह।

एकएक उसकी निगाह एक मकान के आंगन में पड़ी, आंगन में ही था एक अमरूद का पेड़। पेड़ के नीचे जमीन पर ही रखा था एक पिंजड़ा, जिसमें एक दूसरा पाला हुआ सुग्गा, मानों तृप्त हो कर सो रहा था। पिंजड़े के अंदर एक छोटी कटोरी में कुछ भीगे हुए चने, एक अदद अध कुतरी लाल मिर्ची और एक कटोरी में पानी। भीगे हुए चने के कुछ छिलके भी पिंजड़े के नीचे छितराये थे।

उड़ता हुआ यह सुग्गा, उसी आंगन के पिजड़े के पास आकर बैठ गया। उसके पंखों की फड़फाड़ाहट से, पिंजड़े वाला सुग्गा सचेत हो गया, और अपने ही एक साथी को देखकर मुखरित हुआ- ' कहो भाई, कैसे हो? क्या हाल है, नदी, पेड़, पहाड़, खेत, खलिहान, और जंगल का?'

बाहर वाला सुग्गा बोला- 'बाहर तो बड़ी मौज-मस्ती है भाई। कुतरने के लिए पेड़ों पर ढेरों फल लदे हैं, लेकिन तुमने तो पिंजड़े की कैद स्वीकार कर ली, तुम्हें बाहर की दुनिया से क्या मतलब?'

'क्या बताऊं भाई। एक खूसट बुढ़िया ने मुझे कैद कर रखा है, अनजाने में भी कभी पिंजड़े की खिड़की खुली नहीं छोड़ती'

इस पर बाहर वाला सुग्गा बोला- 'चलो तुम अंदर से और मैं बाहर से, इस खिड़की को ऊपर उठाते हैं', और दोनों जुट गए अपनी मुहिम में, बड़ी मुश्किल के बाद खिड़की थोड़ी ऊपर जरूर उठी, लेकिन एक जगह उठकर रूक सी गई। अंदर वाला सुग्गा अपने शरीर को सिकोड़कर बाहर निकला और बिना पीछे देखे उड़ चला, आसमान की ओर। बाहर वाला सुग्गा उसी फुर्ती के साथ, अपने परों को संकुचित करते हुए पिंजड़े के अंदर।

पिंजड़े से बाहर निकलने वाला सुग्गा यह देखकर हतप्रभ था कि बाहर तो चारो ओर अकाल पड़ा है, पेड़ों पर फल तो दरकिनार पत्तियां तक नहीं बची हैं, खेतों में बेवाइयां फट रही हैं और पानी का कहीं एक कतरा तक नहीं है।

## कविताएं

# 80 वें जन्मदिन पर

**शोभनाथ यादव**
मो.-099695-80809

**1**

सीढ़ियां
चलता हूं, चलाता हूं
सतत् चलता हूं मैं!
आकाश की अनन्तता
उतारता हूं मैं!
चलता हूं-चलाता हूं-
चलता हूं मैं!
हाहाकार उतारता हूं
शांति-महाशांति
उतारता हूं शब्दों में!
उतारता हूं, उतारता हूं मैं-
सीढ़ियों से उतरता हूं-
अथाह गहराई में!
शब्द हैं कि सीढ़ियां
ले जाते हैं आकाश में,
गहराई में भी ले जाते हैं वे-
इन्ही सीढ़ियों से जाऊं मैं!

**2**

नुमाइंदों को बदलना जरूरी!
मेरे ईश्वर मेरे खुदा,
इस दुनियां को
बनाने-बिगाड़ने वाले वहीं लोग हैं,
जो सिर्फ बेवकूफ या सयाने हैं!
पशु-पक्षी, पेड़-पौधे
धरती-समंदर
इसे नहीं बिगाड़ते-
वे तो बिगड़ते-
वे तो बिगड़ती हुई दुनियां को
संवारने की कोशिश करते हैं!
तो इंसान ही क्यों हरकत
करते हैं इसके खिलाफ?
वे ईश्वर या खुदा के नुमाइंदे हैं
फिर भी ऐसे खौफ़नाक क्यों करते
हैं काम वे?
अपने इन नुमाइंदों को
क्यों नहीं बदलते ईश्वर?
और तुम भी क्यों नहीं खुदा?
पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों,
धरती-समुंदरों को
अपने नये नुमाइंदे
क्यों नहीं बना लेते तुम?

**3**

साइबेरिया के पंक्षी
मौसम बदलने पर
साइबेरिया से आते हैं पंक्षी
झुंड के झुंड़
कितने मुल्कों और सीमाओं को
पार करते हुए आते हैं वे
अपने मुल्कों की ओर!
सरहदें पार करने
और दूसरों मुल्कों में
उतरने का
कोई आरोप नहीं लगाता इन पर!
कोई सीमा-बंधन नहीं,
कोई उल्लघंन नहीं-
सीमाओं तो तोड़ने का इन पर!
तो बेचारे मनुष्य ही क्यों
बांधे जाते हैं
अपनी भौगोलिक सीमाओं में
और उन्हें पार करने पर
वे क्यों माने जाते हैं अपराधी?
क्या मनुष्य सचमुच
इतना शातिर है कि
उसका प्रवेश
निषिद्ध माना जाता है?

**4**

तुम्हारा जन्म दिन
आज तुम्हारा जन्मदिन है
और पिछले दिनों से
आज भी परेशान हो तुम!
कम नहीं होगी परेशानियां तुम्हारी
क्यों?
अभी कल की ही रात तो
लड़खड़ाते-लड़खड़ाते
गिरने से बच गई थीं तुम!
तुम्हारे साथ पुरानी
दिक्कतों की जिंदगी
नये साल में भी
जुड़कर चली आ रही है।
जन्मदिन है आज तुम्हारा-
2016 के इस नये वर्ष में!
पर खुशियां कहां गईं
सॉरी तुम्हारी?
बच्चे-बच्चे में
बटीं थीं खुशियां तुम्हारी!
अब तुम अकेली हो
और मैं तुम्हारे पास!
ऐसा क्यों होता है
मनुष्य के साथ कि
वह अकेला पड़ता जाता है
लगातार अकेला-सिर्फ अकेला!

# कविताएं

**जयप्रकाश मानस**
srijangatha@gmail.com
मो.-94241-82664

## आम आदमी का सामान्य ज्ञान

आम आदमी का सामान्य ज्ञान
नहीं होता असाधारण
आम आदमी नहीं जानता
सोना-खदान का भूगोल
काले को फक्क सफेद बनानेवाला रसायन
नाती-छंती तक के लिए बटोर लेने का अर्थशास्त्र
ज्ञान का इतना पक्का
हराम की हर चीजों का नाम जीभ पर रखा
आम आदमी नहीं जानता
झूठ को सच या सच को झूठ की तरह दिखाने की कला
चरित्र सत्यापन की राजनीति
धोखा, लूट, और षड़यंत्र का समाज-विज्ञान
ज्ञान इतना पक्का
पहचान लेता है स्वर्ग-नरक की सरहदें
आम आदमी नहीं जानता
हँसते, मटकते, चहकते हुए चेहरों का बाजारभाव
बाजार में 'वन बाय वन फ्री' का रहस्य
गैरों की हाथ-घड़ी देखकर अपने समय का मिलान
ज्ञान इतना पक्का
बूझ लेता जरूरी और गैरजरूरी का फर्क
आम आदमी नहीं जानता
तानाशाहों की रखैलों, जूतों, कपड़ों, इत्रों का बीजगणित
ईश्वर के सम्मुख रखे चढ़ावा-पेटियों में लगातार वृद्धि की तकनीक
दुख, संत्रास, तिरस्कार, आत्महत्या के पीछे की भौतिकी
ज्ञान इतना पक्का
कि भगवान भी बगलें झाँके
आम आदमी नहीं जानता बहुत कुछ
तो मत जाने
आप कौन होते हैं
उसे पास-फेल करने वाले।

## जहाँ जाता नहीं कोई

जानेवाले हम ही होंगे
जहाँ जाता नहीं कोई

जलते दोपहर में अकेले खड़े पेड़ों के घर
जीर्ण-शीर्ण पत्तों के करीब
झुरमुट में डरे-दुबके खरगोश तक

फुर्सत निकालकर अपनी कमीनगी पर हँसने
थोड़ा-सा रोने, थोड़ा पछताने
रूठे हुए दोस्त को मनाने
पानी-सा बहते चले जायेंगे

बिलम नहीं जाएँगे
अपनी ऐंठन की छाँह में
मार कर आँखों पर पानी के छीटें
फिर चल ही देंगे
जहाँ नहीं जाता कोई
बचे रहेंगे ठीक उसी तरह

बच नहीं पाए
फिर भी बचे रहेंगे
अनसुने शब्द हवा में स्पन्दित

## तब तक

जिन्हें अभी डराया नहीं गया है
जिन्हें अभी धमकाया नही गया है
जिन्हें अभी सताया नही गया है
जिन्हें अभी लूटा नहीं जा सका है
क्या वे सारे के सारे निरापद हैं ?
कभी भी घेरा जा सकता है
उन्हें
हो सकता है उनकी हत्या कर दी जाये
तब तक
क्या बहुत देरी नहीं हो चुकी होगी ?

## आँखे मेरी नम हैं

जैसे आपके वैसे मेरे भी घुटने
फिर भी एक फर्क –
आप टेक देते कहीं भी, मेरे सहमत ही नहीं कभी
जैसे आपके वैसे मेरे भी हाथ
फिर भी एक फर्क –
फैलाये रहते हो आप, बाँधे रखता हूँ मैं

जैसी आपकी वैसी ही मेरी जुबां
फिर भी एक फर्क
तलवे चाटने में अव्वल आप, खरी–टेढ़ी, अड़ी मेरी
जैसे आप वैसे मैं – यह आपका मात्र भ्रम है
अधिक हो बहुत पर वह मुझसे कुछ कम है
आँखें आपकी शरारती, आँखें मेरी नम हैं।

## झाड़ू

बेर उठते ही ढूँढते हैं सब मुझे
मैं किसी कोने–अंतरे में
अकेला उदास पड़ा झाड़ू
हवाएँ चिढ़ाती हैं मुझे
कूड़ा–करकट बिखेरकर
चिड़िया भी
सभ्य मालिक के गंदे बच्चों की तरह
मुझे छूती तक नहीं मालकिनें
बहुत बौनी मेरी औकात
दाढ़ में माँस फँसने पर

एक मैं ही टूटने–लुटने को विवश
लेकिन जब कभी
गरीब बस्ती की लड़कियाँ
उठा लेती हैं कंधों पर
इत्मीनान से बैठकर देख सकता हूँ
फक्क सफेद कपड़ा धारे शहरियों की गंदगी
अक्सर अँधेरे में चटक उठता है काँच
चुभने की आशंका से आतंकित
हर कोई मुझे घोषित कर देता है सबसे जरूरी
फिर सबकुछ जस के तस

तुम्हें क्या पता
सफाई करते हुए मुझे
मिलती होंगी कितनी मजेदार और
खोई हुई चीजें
बुद्धिजीवी अक्सर याद करते हैं
मुक्तिबोध के बहाने मुझे
और मेरे साथ उस मेहत्तर को
जो अभी भी बहुत दूर खड़ा हँस रहा है
उन्हीं पर

## निकल आ

सुरागों की पथरीली गंध से किरणें
अक्सर हो जाती हैं उदास
फिर फैलाती हैं चहुँदिशि
नैश अंधकार
प्रकाशित नहीं कर पाती बाहर की दुनिया
कि ठीक–ठाक देखा जा सके भीतर तक
ऐसे में कई बार खतरा होता है
अन–अस्तित्व होने का
ओ सशंकित मन

निकल आ बाहर
इधर
अपने गुहा से
यहाँ सूरज की पुतलियों में उभर रहा है
समूचा ब्रह्मांड समूची पृथ्वी
एक–एक ग्रह, नक्षत्र, उल्का पिंड
नीलिमा का विस्तार
इनमें कलरव है कोलाहल है
और कुतूहल भी कम नहीं

## डैने

आँधी–तूफान उठा दूर कहीं
घिरी दिशाएँ
उखड़ने–उजड़ने के बावजूद
रह गया सिहरता एक पेड़
कुछ कहने को
कहने को बची रह गयी जो भयभीत चिड़िया

बचा भी क्या है उसके पास
प्रभाती कहने के सिवाय
गा चिड़िया / सबेरा जगा चिड़िया
सूरज उगा चिड़िया
चिड़िया ओ चिड़िया
डैने फैला ओ चिड़िया

## बचे रहेंगे

नहीं चले जाएँगे समूचे
बचे रहेंगे कहीं न कहीं
बची रहती हैं दो–चार बालियाँ
पूरी फसल कट जाने के बावजूद
भारी–भरकम चट्टान के नीचे
बची होती हैं चींटियाँ
बचे रहेंगे ठीक उसी तरह
सूखे के बाद भी
रेत के गर्भ में थोड़ी–सी नमी
अटाटूट अँधियारेवाले जंगल में
आदिवासी के चकमक में आग
लकड़ी की ऐंठन कोयले में
टूटी हुई पत्तियों में पेड़ का पता
पंखों पर घायल चिड़ियों की कशमकश
मार डाले गए प्रेमियों के सपने खत में
बचा ही रह जाता है

# कविताएं

**निदा नवाज**
मो.-09797831595

# मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां मशकूक होना ही होता है
मर जाना
जहां घरों से निकलना ही होता है
गायब हो जाना
जहां हर ऊँचा होता सिर
महाराजा के आदेश पर
काट लिया जाता है

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां की उपजाव मिटटी में
अब केसर की घुन्डियाँ नहीं
बारूदी-सुरंगे बोई जाती हैं
जहां के बर्फीले पहाड़
लहू-रंग विलाप में बदल जाते हैं
जहां के झरनों को मिलता है
लोगों के आंसुओं से बहाव
जहां सिमटते जा रहे हैं खेत
फैलती जा रही हैं फौजी छावनियां
जहां देखते ही देखते
सड़कें हो जाती हैं रक्तिम-लाल
और मिर्ची-गैस की शलिंग से
आँखें हो जाती हैं सुर्ख-अंधी

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां झूठ की आँखों में आँखें डालना ही
होता हैं अपनी आँखें निकलवाना
सिर उठा के चलना ही
होता है अपनी मौत को बुला लेना
आगे बढ़ जाना ही होता है
अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारना
और सच के हक में बोलना ही
होता है
सदैव के लिए बेजुबान हो जाना

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां घर से निकलते समय माएँ
अपने बच्चों के गले में
परिचय-पत्र डालना कभी नहीं भूलती
भले ही वह भूल जाए
टिफन या कताबों के बस्ते
अपने नन्हों के परिचय की खातिर नहीं
बल्कि
उनका शव घर के ही पत्ते पर पहुंचे
इस की ही चिंता है उन्हें
मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जिसकी सीमाओं की फजाओं पर
वर्षों से मंडरा रहे हैं
चील, कोए और गिद्ध
और जहां मानव-कंकालों का
लगा हुआ है अंतहीन-पर्व

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां महाराजा की शर्तों पर जीवन
और अपनी शर्तों पर
केवल मौत चुनी जा सकती है
जहां के बाजारों में
होती है खौफ की चहल-पहल
और लोग लेप लेते हैं चेहरों पर
झूठी मुस्कुराहटों के फीके-रंग

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां के जन-गणना-दफ़्तरों में
आधी-माओं और आधी-विधवाओं की
बढ़ती जा रही हैं सूचियाँ
जितनी बढ़ती जा रही हैं
लापता किये गए लोगों की संख्या

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां चेहरों पर चहकता है सोग
पैरों में पड़ जाती हैं जंजीरें
दिलों में धड़कतीं हैं दहशतें
आँखों में अटकते हैं सपने
और उँगलियों पर उगती हैं हैरतें

●

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां बच्चा होना होता है सहम जाना
जवान होना होता है मर जाना
औरत होना होता है लुट जाना
और बूढ़ा होना होता है
अपने ही सन्तान का
कब्रिस्तान हो जाना

●

मैं उस नर्क में रहता हूँ
जो शताब्दियों से भोग रहा है
स्वर्ग होने का एक
कड़ुआ, और झूठा आरोप ।

# कविताएं

**स्वप्निल श्रीवास्तव**
मो.-09415332326

**आज की स्थिति-परिस्थिति का बयान हिन्दी की जातीय लयात्मकता और सौन्दर्य की पहचान की भाषा में किया जा सकता है। सवाल भाषा की अक्षमता का नहीं कवि की अक्षमता और शब्द-साधना की धैर्यहीनता है, जो हिन्दी कविता को अपठ्य और नीरस बनाये हुए हैं। ऐसे में स्वप्निल श्रीवास्तव की ये कविताएं बताती हैं कि हिन्दी साहित्य की जमीन अभी बड़ बोले कवियों-आलोचकों के लम्बे हमले के बावजूद छिनी नहीं गयी है। - संपादक**

## 1

जिधर है थाना, उधर मत जाना
इस थानें में, चैन हेराना।
चोर डकैतों का आलम है
उसके शामिल है, मस्ताना।
फहर रही है, मूंछ पुलिस की
आफिस है जैसे तहखाना।
जब से चौकी बनी यहां पर
गांव- गांव छाया वीराना।
तस्कर चांदी काट रहे हैं
डान बने हैं परमनिधाना।
रात- विरात आते अपराधी
मुहाल हो गया- रोटी- दाना।
मंदिर भीतर रामलला हैं
मुख्य - द्वार पर हैं- हनुमाना ।
रपट लिखाने जो भी जाये
उसका लगता है नजराना।
जालिम सिंह कहते हैं—बोलो
किसको कहां से है उठवाना।
रात अंधेरी कैसे जाऊं
बीच राह में है सुल्ताना।

## 2

सात हैं घोड़े एक है गाड़ी
राजाजी की चली सवारी।

टूटी-फूटी हुई सड़क है
आगे खड़ी विपति है भारी।

मैंनें देखी वियाबान में
कोचवान की हिलती दाढ़ी।

लात मार रहे हैं घोड़े
कभी अगाड़ी, कभी पिछाड़ी ।

खाप पंचायत में आयेंगे
जाति- धर्म के कुछ व्यापारी।

जनतंत्र के नाट्य-लोक में
अभी तक है, प्रहसन जारी।

## 3

जिधर है थाना, उधर मत जाना
इस थानें में, चैन हेराना।
चोर डकैतों का आलम है
उसके शामिल है, मस्ताना।
फहर रही है, मूंछ पुलिस की
आफिस है जैसे तहखाना।
जब से चौकी बनी यहां पर
गांव- गांव छाया वीराना।
तस्कर चांदी काट रहे हैं
डान बने हैं परमनिधाना।
रात- विरात आते अपराधी
मुहाल हो गया- रोटी- दाना।
मंदिर भीतर रामलला हैं
मुख्य - द्वार पर हैं- हनुमाना ।
रपट लिखाने जो भी जाये
उसका लगता है नजराना।
जालिम सिंह कहते हैं—बोलो
किसको कहां से है उठवाना।
रात अंधेरी कैसे जाऊं
बीच राह में है सुल्ताना।

3

जिधर है थाना, उधर मत जाना
इस थानें में, चैन हेराना।

चोर डकैतों का आलम है
उसके शामिल है, मस्ताना।

फहर रही है, मूंछ पुलिस की
आफिस है जैसे तहखाना।

जब से चौकी बनी यहां पर
गांव- गांव छाया वीराना।

तस्कर चांदी काट रहे हैं
डान बने हैं परमनिधाना।

रात- विरात आते अपराधी
मुहाल हो गया- रोटी- दाना।

मंदिर भीतर रामलला हैं
मुख्य - द्वार पर हैं- हनुमाना ।

रपट लिखाने जो भी जाये
उसका लगता है नजराना।

जालिम सिंह कहते हैं–बोलो
किसको कहां से है उठवाना।

रात अंधेरी कैसे जाऊं
बीच राह में है सुल्ताना।

4

हिंदी के जगत में- बड़े- बड़े सम्मान
कोई लखटकियां हैं, कोई है बेदाम।

चयन- मंडली में शामिल है हिंदी के हुक्काम।
चरण-धूलि में लोटिये, बन जायेगा काम।

प्रभु जी इस मूर्ख को, बना दीजिये महान।
रीढ़ लचीली अगर हो, घुटने झुंके समान।

तो बैतरणी पार है, मत चूको चौहान।
याद रखे इस मार्ग में .खुद्दारी व्यवधान।

इसे दरियां में डालिये, तभी काम बने जजमान।
दिल्ली का हर बिल्ला शेर, डरते चतुर सुजान।

माथा वहां टिकाइये, करिये निज उत्थान।
नैतिक फैतिक होना छोड़ो, और तजो स्वाभिमान।

5

मैं भी खाऊं, तुम भी खाओ
प्रजातंत्र है, मौज उड़ाओ ।

तुम पुल निगलो, मैं जल पीऊं
फिर नदी नीलाम कराओ।

निर्धन का क्या काम जगत में
भद्र लोक से उन्हें भगाओ।

बंद जेल में हुये मसीहा
तिकड़म से उनको छुड़वाओ।

मैं ईंधन कर रहा इकट्ठा
प्रिय तुम उसमें आग लगाओ।

धूं- धूं कर जल जाये बस्ती
अब उसमें हरजाना बटवाओं।

जाति- धर्म को हिंसक कर दो
धुर्वी करण को तुम धधकाओं।

देश- समाज को मिले जहन्नुम
अपनी राजनीति चमकाओ।

6

कुछ ऐसा सहयोग बनाओ
मैं तेरी पीठ खुजाऊं- तुम मेरी पीठ खुजाओ।
मैं लिखूं तुम महान हो, तुम मुझको प्रतिभावान बताओ।
आलोचक को मारो गोली तुम खुद अपने ही गुण गाओ।
दाढ़ी बढ़ाओ- झोला टांगो- इस धज में कामरेड कहाओ।
दुनिया बदले या न बदले, तुम अपना संसार सजाओ।
भारी- भरकम उद्धरणो से -मूर्ख मंडली को चौकाओ।
झुमरी तलैया में किताब लिखो, लोकार्पण दिल्ली करवाओ
दी में हैं बड़े सूरमा, उनके साथ फोटो खिचवाओ।
उनके बोले गये वाक्य को,
मीडिया में जम के चमकाओ।

7

फिर चुना गया हत्यारा
अब क्या होगा हाल हमारा।
बस्ती- बस्ती तेग चलेगी
और बहेगी रक्त की धारा।
जो कोई ना-नुकुर करेगा
समझो झवह तो स्वर्ग सिधारा।
गले में कंठी हाथ में चाकू
जाति-धर्म का होगा बटवारा।
तय नहीं हो पायेगा अब
किसने है किस-किस को मारा।
मार- काट की इस दुनिया में

# कविताएं

**महाराज कृष्ण संतोषी**
मो.-09419020190

## 1

बुद्ध
मेरे बचपन का सुख
मेरी गेंद थी
बुद्ध
मेरे यौवन का सुख
मेरी कामनाएं थीं
बुद्ध
उम्र की इस ढलान पर
मुझे अब सुख नहीं
साथी चाहिए

## 2

आंगन में
एक फूल खिला
पर मैं उसे
डाली पर ही रहने दूंगा
बुद्ध
उसे तुम्हारे लिए भी
नहीं तोड़ूंगा
अखिर
प्रार्थना से अधिक जरूरी है
अहिंसा में हमारी आस्था

## 3

बारिश में
भीग रही थी स्त्री
और मैं
खिड़की से देख रहा था
उसका बदन
बुद्ध
मैं क्या करता
खिड़की बंद कर देता
तो भी वह स्त्री
मुझसे ओझल नहीं होती

## 4

जब मैं किशोर था
बड़ों की
अवज्ञा करने लगा
कुछ बड़ा हुआ
तो झूठ बोलने लगा
कुछ और बड़ा हुआ
तो तृप्ति में लिप्त हुआ
और यहीं से शुरू हुई
बुद्ध
मेरी अनैतिकता

## 5

लौटते हुए
पहुंचा जहां
अब वहां
मेरा कोई नहीं
बुद्ध
अपने ही पद चिन्ह
अब मुझे
क्यों देते हैं ताना

## 6

बुद्ध मेरी मां मर गई
नहीं मरती तो क्या
हम उसे
मार डालते उपेक्षा से
बुद्ध
मेरी मां के पास
किस्से थे
नग्में थे
कहानियां थीं
पर वह सब
पासबुक में दर्ज नहीं था

## 7

मित्रों और अमित्रों से बच कर
जब मैं
लौट आता हूं अपने एकांत में
तो सब भूल जाता हूं
छल
छद्म
मिथ्या सरोकर
और अगर तुम्हें भी भूल जाऊं बुद्ध
तो समझूंगा
मुझे मिला निर्वाण

## 8

तथागत
आज मैं चुप ही भला
कोलाहल के बीच
भीतर बज रहे नाद से
बेखबर मैं
न बहरा हूं
न गूंगा
जो सुनता है
सब निरर्थक
तथागत
मेरा अनकहा
मेरे पास ही रहने दो
आज कुछ अनसुना
आपसे ही श्रवण करूं

## 9

बुद्ध
आ बैठ
मेरे घर की सीढ़ी पर
कोई बात कर
जाड़े का मौसम है
और धूप गुनगुनी है
बुद्ध
क्या तुम्हें
कपिलवस्तु की याद नहीं आती थी
कपिलवस्तु में तुम्हारी पत्नी थी
पिता थे
पुत्र था
फिर कैसे नहीं किया होगा याद
पर तुम तो
निरपेक्ष हो गये थे संबंधों से
बुद्ध
हमें भी सिखाओं न
निरपेक्ष रहना
लेकिन
रहने दो
अभी परिवार में
नया मेहमान जो आने वाला है
और मैं प्रसन्न हूं
फिर एक बार दादा बन रहा हूं

## 10

बुद्ध
आज बहुत ठंड है
कम्बल भी है जीर्ण
उम्र भी साठ से अधिक
वह देखो
आकाश में चांद भी
ठिठुर रहा है
और तारों के पास
उसे देने को
ऊन की बनियान तक नहीं
बुद्ध आज बहुत ठंड है
दिल भी है उदास
न प्रार्थना
न किसी पूजा अर्चना में
जी लगता
न किताबों से ही
मन बहलता है
बुद्ध
आज सचमुच बहुत ठंड है
और मैं अकेला
सूर्योदय की प्रतीक्षा में जागा
सोच रहा हूं
इस समय
किसी चोर का ही साथ मिलता
तो यह रात कुछ आराम से कटती

## 11

बुद्ध
आओ घूमने चलें
अब तो तुम्हें कोई डर नहीं
न जरा से
न रोग से
न मृत्यु से
अब तो तुम प्रबुद्ध हो
और मैं अतिसाधारण
डरता हूं
जरा से
रोग से
मृत्यु से
लेकिन
इस डर ने ही मुझे
जीवन से प्यार करना सिखाया
और निराशा के खिलाफ
लड़ने का हौसला भी दिया

## 12

साधारण चीजें
बहुत महत्वपूर्ण होती हैं
जैसे माचिस
जैसे रुमाल
जैसे छाता
फिर मैं ही क्यों भला
असाधारण की चाह में
भटकता फिरता चाह में
बुद्ध
क्या साधारण होने में
कोई सुख नहीं

## 13

बुद्ध
बहुत किताबें
एकत्र की मैंने
इतनी अधिक
कि अब मुझे
अपनी अल्प बुद्धि से
डर लगने लगा है

## 14

मेरे पास
बैठने के लिए
काठ की चौकी थी
अब वह
आहें भर रही है कबाड़ में
उनकी जगह
बच्चे ले आये हैं मेरे लिए
बड़ी सी आराम कुर्सी
कैसी विडम्बना है बुद्ध
इस पर बैठ कर
अब मैं
अपने बच्चों को
डांट नहीं पाता

# ग़ज़लें

**कैलास सेंगर**
मो.-09820762657
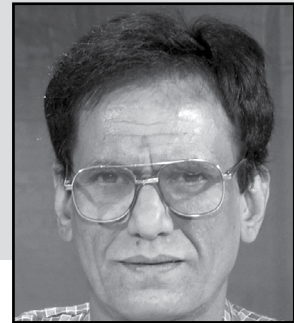
## 1

झील का दर्पण रोज लजाकर बेल निहारा करती है
फिर चुपके से लपट पेड़ से, जुल्फ़ संवारा करती है

बच्चों के कंचों की गूंजें ज़रा ध्यान से सुन लेना
मंदिर की घंटी उनकी ही नकल उतारा करती है

फल दे-दे कर खुश हो लेना जुनूं पुराना पेड़ों का
पर दुनियां हर पागल को पत्थर ही मारा करती है

लड़की है या जादूगरनी वो हम मूरख क्या जाने
जादू से अपने होठों को जो अंगारा करती है

इन चट्टानी रातों को इक रोशन तीली तोड़ेगी
बरसों से वह अपने बच्चे की नजर उतारा करती है

## 2

मेहनत के बाद भी मिली नफरत की रोटियां
सब के नसीब में कहां इज्जत की रोटियां

आंखों से देखने की नहीं चीज़ मां का प्यार
पर फिर भी दिखाती इसे औरत की रोटियां

जब-जब हम हमारी भूख की ये आग जल उठी
वो सेंक गये इस पे सियासत की रोटियां

आटा ही नहीं प्यार है, ईमान है इसमें
मां की दुआ का हाथ है भारत की रोटियां

है स्वाद इनका खूब मगर सच तो यही है
पचती नहीं सभी को ये शोहरत की रोटिया

बीबी से हमने सच ये छुपाया है उम्र भर
औरत से बड़ी चीज़ है औरत की रोटियां

## 3

ग़ज़लों से खूशबू बिखराना हमको आता है
चट्टानों पे फूल खिलाना हमको आता है

इक बीड़ी और साथ सुबह की आवारा ग़ज़लें
फुटपाथों पर रात बिताना हमको आता है

हमें पता है खुश्क किसी की आंख वहां नम है
सूखे में बादल ले आना हमको आता है

मजहब को बारुद बनाना हमें नहीं आता
पर फूलों का धर्म चुराना हमको आता है

'दिन ढल जाये रात न जाये'- गाते उम्र ढली
रफ़ी साब का यार वो गाना हमको आता है

हम सागर हैं यहीं रहेंगे, राम कसम फिर भी
नादियों को अपने घर लाना हमको आता है

## 4

गूंगी चीखें, बांझ भूख और उस बेबस सन्नाटे में
हमने अपनी ग़ज़लें खोजीं चूल्हे, चौके, आटे में

सब पर इक-इक सुबह लुटाने हम सूरज ले बैठे थे
अपना क्या है जो ना आये वो ही रह गये घाटे में

महक उठे तेरे छूने से हम, पर सबको यही लगा
चंदन का भी रुह छुपी है इस बबूल के कांटे में

चोर-उचक्कों के जयकारों से गूंजे उनके दौरे
अक्सर जेबें कटी हमारी उनके सैर-सपाटे में

आज़ादी की खाट पे सोई खादी की उजली नींदे
गांवों की दब गई सिसकियां दिल्ली के खर्राटे में

जहां कहीं भी कालिख देखी हमने तो बस वार किया
पर लोगों को ग़ज़ल नजर आती है अपने चांटे में

# ग़ज़लें

**संदीप गुप्ते**
मो. 09769925891

## 1

बहुत है जो भी मिला आज, बाकी और कभी
हम आज़माते नहीं क़िस्मतों पे ज़ोर कभी

यही तो ज़िंदगी की अस्ल शक्ल है यारो
कभी है जश्न-ए-बहारा, ख़िजाँ का दौर कभी

इसी उम्मीद पे क़ायम है ज़िंदगी सबकी
बहार लौट के आएगी अपनी ओर कभी

तुम्हारे शहर के हालात कुछ अजीब से हैं
कभी सुकून के साये, ग़ज़ब का शोर कभी

बदलते मौसम की ताल पर, इशारों पर
कभी उदास रहे, नाचे मन का मोर कभी

तुम्हारे चाहने वाले हैं, ख़ैरख़्वाह हैं हम
हमारी बात पे भी कर के देखो ग़ौर कभी

तू एक मर्तबा इंसान बन के देख ज़रा
मुझे भी दे दे खुदाई की बागडोर कभी

## 3

दिल में जागी ही नहीं थी, आरजू पहले कभी
इस तरह मिलता ही कब था मुझसे तू पहले कभी

तू मिला तो, ज़िंदगीनी ख़ूबसूरत हो गई
काश होती मुझ को तेरी, जुस्तजू पहले कभी

ज़िंदगी तू ही बता! कैसे तुझे पहचानता
तू कहां आयी थी मरे रुबरू, पहले कभी

मैं तुम्हारे शहर की, तहज़ीब से वाक़िफ़ न था
पत्थरों से की नहीं  थी, गुफ़्तगू पहले कभी

बिक रहे हैं चंद सिक्कों के एवज़ जिस्मों-ज़मीर
इस क़दर सस्ती नहीं थी, आबरू पहले कभी

## 2

फ़क़त सजे हुए दीवारो-दर का क्या मतलब
जहां सुकून नहीं, ऐसे घर का क्या मतलब

किसी के काम न आए, तो ज़र का क्या मतलब
न फल न छांव है, ऐसे शजर का क्या मतलब

न रास्तों का ठिकाना, न मंजिलों का पता
तेरे बग़ैर मेरे इस सफ़र का क्या मतलब

जिगर के पार हुआ तो हमें यकीन हुआ
ये हमने जाना कि तीरे-नज़र का क्या मतलब

कोई हयात के मानी बता के समझाए
तवील क्या है भला, मुख़्तसर का क्या मतलब

हमें तो काम से मतलब है, काम करते हैं
हमें ख़बर भी नहीं, नामवर का क्या मतलब

## 4

बाद मुद्दत के, कभी मुझ से मिली, कहने लगी
मेरी परछाई भी मुझको, अजनबी कहने लगी
मैं ग़ज़ल कहने लगा, तो ज़िंदगी कहने लगी
मेरी सच्चाई को तेरी शायरी, कहने लगी
वो कहा मैंने ज़बां से, जो मेरे दिल में न था
मेरे दिल की बात, मेरी ख़ामुशी कहने लगी
ज़र्रा-ज़र्रा है यहां रोशन, उसी के नूर से
मैं उसी की इक शुआ हूं, रोशनी कहने लगी
देखकर ऊंचाई मेरे ख़्वाब की, परवाज़ की
मैं हूं बेबस तेरे आगे, बेबसी कहने लगी
तू कहां रहती है, पूछा था किसी ने एक दिन
मैं ग़मों के साथ रहती हूं, खुशी कहने लगी
मैं पनपती ही रहूंगी, जेहन में 'संदीप' के
मैं ग़ज़ल की रूह हूं, ये तिश्नगी कहने लगी

# ग़ज़लें

**सैय्यद रियाज़ रहीम**

## 1

जहल की रहगुजर बने हुए हैं, वो बड़े मोतबर बने हुए हैं
सुबह होते ही लौट जायेंगे, हम यहां रात भर बने हुए हैं
आलिमों में हैं आप इक जाहिल, और बच्चों में सर बने हुए हैं
मुफ्तीयाने कराम हैं बीमार, मौलवी कैंसर बने हुए हैं
ऐसा बनना भी कोई बनना है, आप तो सर बसर बने हुए हैं
किसी अखबार की खबर की तरह, आप एहले हुनर बने हुए हैं
संग हैं संगे मील की सूरत, रहगुज़र रहगुज़र बने हुए हैं
क्या मज़ाफात हो गये आबाद, जंगलों में भी घर बने हुए हैं
दोस्तों का भी करम हम पर, दुश्मनों में अगर बने हुए हैं
ऐतबारे खुदा भी मश्कूक, आदमी मोतबर बने हुए हैं
जैसा बनना था बन गये हैं रियाज़, हम कहां सोचकर बने हुए हैं।

## 2

जिधर रस्ता नहीं होता उधर रस्ता बनाते हैं
इसी दुनिया में रह कर हम नई दुनिया बनाते हैं

उन्हीं के दर पे दुनिया सर झुकाने पे है आमादा
जो हंसती खेलती बस्ती को सन्नााटा बनाते हैं

सफर का सिलसिला यूंही नहीं जिन्दा है सदियों से
हमारे ख़्वाब सहराओं में भी दरिया बनाते हैं

कोई भी खेल हो हम खेलते हैं अपनी शर्तों पर
जिसे मोहरा समझते हैं, उसे मोहरा बनाते हैं

न दीवारों से कुछ मतलब न सरहद अपनी राहों में
मोहब्बत के उजाले से नया नक़्शा बनाते हैं

## 3

जिस्म से आरी लोगों ही का साया है,
रूत ये कैसी, कैसा मौसम आया है

कोई चीख फिजा में अब तो गूंजेगी नहीं
सन्नाटों ने कितना शोर मचाया है,

इस रूत में भी प्यासी धरती प्यासी है
इस रूत में भी बादल घिर कर आया है

उसकी जरूरत उसकी अना पर हावी है
मुझसे मिलने मेरे घर तक आया है

पेड़ पे बैठे पंछी ने ये पूछा मुझसे
शहर से सैय्यद क्यों जंगल में आया है

## 4

बात बे-बात पे सब शोर मचाने लगे हैं
सर पे सूरज है मगर दीप जलाने लगे हैं

हमने पलकों पे सजा रखा था जिन ख्वाबों को
इक इक करके सभी ख्वाब ठिकाने लगे हैं

हमसे कतरा के गुजर जाते थे सब एहले नजर
अब जिधर जाते हैं वो भी उधर आने लगे हैं

जिनकी शिद्दत से जरूरत थी जमीं को वो लोग
आसमानों पे जमीं छोड़ के जाने लगे हैं

हमसे खुश दुनिया है घर वाले भी खुश हैं हमसे
शेर भी कहते हैं, पैसे भी कमाने लगे हैं

तन्ज से उनकी तरफ देखती रहती है ये खल्क
इश्क में सारा असासा जो लुटाने लगे हैं

देखते देखते क्या हो गई अपनी दुनिया
जो हंसाते थे वही लोग रूलाने लगे हैं

# ग़ज़लें

लक्ष्मण

## 1

अगर साथ रहने की आदत पड़ेगी
जुदाई की हमको ज़रूरत पड़ेगी
कि जिस लेखनी से लिखे प्यार के ख़त
लिखोंगे जो लेखा तो लानत पड़ेगी
अगर फ़ायदों की लगे होड़ में तो
डगर में भयानक सियासत पड़ेगी
संबंधों में शक का, गुमां का ये आलम
बहुत ही महंगी उक़ूबत पड़ेगी
तड़प दाद की यह अरे मूढ़ शायर
कहन और फ़न पर मुसीबत पड़ेगी

## 2

दिल तलक जाना बड़ा ही दूर था, दुश्वार था
इसलिये मैं जिस्म तक ही पहुंचकर था रह गया
मुझको तड़पाने-सताने के लिए आया था वो
इसलिये दरवाज़े से ही प्यार को लौटा दिया
बस नज़र की बात है खालिस नज़र की बात है
छोड़ता है एक पाकर दूसरा पाये बिना
एक भी तो शब्द लौटाया नहीं था आपने
आपकी चुप्पी ने मुझको हाय, घायल कर दिया
शादमां होता  नहीं है दिल कभी भी बेसबवब
पर उदासी के लिये कोई सबब हो क्यों भला
छोड़कर सारी समझ को तुससे मिलने था चला
एक दिलकश हमसफ़र ने राह से भटका दिया
ग़ज़ल में कुछ दम न था, मुझको खबर थी दोस्तों
इसलिए गाकर ग़ज़ल को पेश था करना पड़ा

## 3

इच्छाओं का दमन किया है बहुत बड़े पैमाने पर
उसको समझाना मुश्किल है भड़केगा समझाने पर
जब जिंदा थे फरेब, धोखे, शंकाएं-पीड़ाएं दीं
हमदर्दी के फूल चढ़ाये लोगों ने मर जाने पर
दग़ाबाज़ ख़्वाबों ने उसकी हर हिम्मत को तोड़ा है
मर जायेगा बेचारा फिर नया ख़्वाब दिखलाने पर
अश्कों से मत खेल अरे ये अश्क शरारे होते हैं
आमादा मत कर अश्कों को भीषण आग लगाने पर
उदासियों का सबब कहां होता है जो बतलाएं हम
हमने अक्सर शेर कहें हैं इस दुःख को जतलाने पर
कुछ पाने की ललक बावरी कितना हमें सताती है
आज और बेचैन हुए हैं सब कुछ, सब कुछ पाने पर
आंसू-आंसू पिघल रहा है उनका चेहरा मेरे भीतर
भूल गयें हम उनको आखिर अनगिन अश्क बहाने पर
जिसके दर-दीवारें हमने खून सींच कर बनवाये थे
क्यों दम घुटने लगा हमारा उस घर के बन जाने पर

## बेत

रवि-कवि दोनों के लिए जलना लाज़िम बात
वर्ना काली रात ख़त्म नहीं होती कभी

फ़िरकों की मनमानियां मज़हब का उत्पात
यह इंसानी जात मिट जायेगी, देखना

ये बाहर के घाव तो, बोरोलिन से जाय
पर भीतर के हाय, तूने देखे तक नहीं!

सदियों से निशिनाथ ये गिरि स्कंध आसीन
देख रहा तल्लीन, तेरे-मेरे प्रेम को

घोर अंधरे छा गये, बुझ गये दीप तमाम
हटा दिया जब नाम, इस दुनियां से इश्क का

नदियां, पर्वत, वादियां, बरखा, बादल, धूप
ये कुदरत के रूप कहां किताबों में मिले!

ये चुभती खामोशियां, बुझे-बुझे से प्राण
पूरा घर सुनसान, उफ़ तेरी नराजगी

तुलसी बन आंगन तेरे आऊं अगले साल
पीना मुझे उबाल, सर्दी की तक़लीफ में

हाय तुम्हारी याद का ज़हरीला अवसाद
भूल गया सब याद तुम्हे याद करते हुए

दोपहरी की धूप यह बैठी नैन बिछाय
मैं भी घर से हाय निकला नंगे पांव हूं!

एक फूल की चाह ने हमें किया बेहाल
वे हैं लोग कमाल जिन्हें बग़ीचे चाहिए!

संतकुड़ी भाषा में इस विधा को बेंत कहते हैं - (संपादक)

यश मालवीय



# काशी नहीं जुलाहे की

सत्ता की मिल्कियत हो गई
काशी नहीं जुलाहे की
दिल्ली होती जाती सूरत
अस्सी के चौराहे की।

नफरत का व्याकरण जागता
ढाई आखर के मन में
निर्गुण पाया देशनिकाला
आग लगी घर आँगन में

विश्वनाथ संकटमोचन से
अरज करें तो काहे की?

मँहगी सदरी पहन सियासत
बात कर रही गंगा की
भूल गए रैदास कठौती
रोती है चलती चाकी

ये त्रिशूल क्या समझ सकेंगे
चोट रुई के फाहे की।

चुप सी ओढ़े प्रेमचंद हैं
खुद प्रसाद असमंजस में
साँस ले रहे झूठे वादे
खाकर गाँधी की कसमें

करें खुदकुशी ,कठिन जिंदगी ,
है किसान चरवाहे की।

कहीं संगिनी बैठ, बुदबुदाती है
कुछ गुजराती में
नहीं मिला कुछ बहुत पराये
अपने जीवन साथी में

बिस्मिल्ला - नज़ीर सपना है
बातें गाहे-गाहे की।

# भारत भाग्य विधायक

**यश मालवीय**
मोबाइल : 09839792402

अपने पर ही फ़िदा हो रहा
जन सेवक, जननायक
सेल्फी लेता पड़े दिखाई
भारत भाग्य विधायक

मन में लेकर विकट गंदगी
मन की बात करे है
झाड़ू लेकर खड़ा हुआ है
होठों फूल झरे है

जनता की खातिर है कितना
पुण्य और फलदायक
लाल किले से गाँव गली तक
गोटी-गोटी लाल करे है

भारत माता की जय कहकर
ऊँचा भाल करे है

चाय बेचने वाला लड़का
निकला कितना लायक

स्मृति और मनुस्मृति वाली
जय-जयकार करे है
घर वाली बेघर है, स्त्री पर
उपकार करे है

गैस सिलिंडर बेचे, गाये
कन्याधन का गायक।

डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

# नारीवादी लेखन का घोषणा-पत्र

सुधा जी की रचनाओं को पढ़ते समय एक बात जरूर महसूस की जा सकती है कि उनकी कहानियों में कवितापन है! ये संवेदनाओं, अनुभूतियों से सराबोर होती हैं, परंतु उनकी अधिकांश कविताओं में कथात्मकता नहीं है। वास्तविकता यह है कि कथात्मक साहित्य में अनुभूति और संवेदनाओं का फैलाव होता है तो कविताओं में वही संवेदना अपने सघनतम रूप में व्यक्त होती है। यहाँ फैलना या फैलाना दोष ही माना जाता है। जो भी तीव्रता से महसूस किया गया है उसे कम-से-कम शब्दों में, पूरी सघनता से व्यक्त करने की चुनौती यहाँ होती है। इसीलिये कवि-कर्म दुश्कर कार्य माना जाता है।

इस संग्रह में सुधा जी की कुल 34 कविताएँ हैं, जो कुल 6 खंडों में विभाजित हैं। खंडों के शीर्शक है - नई परिभाषा गढ़ती अकेली औरत (दस कवितायें ), सांकल, सपने और सवाल ! छत, खिड़कियाँ और दरवाजे ! निर्भया और नयना साहनी , .........ताकि बची रहे यह प्रजाति , और अंत में !

पहले खंड का आरंभ अपनी माँ की स्मृति में लिखी कविता से होता है। कविता की मुद्रा भले ही व्यक्तिगत हो तो भी पूरी कविता इस देश के किसी भी भूभाग के स्त्री पुरुष की माँ को उसकी पूरी यातना के साथ प्रस्तुत करती है। ''क्या इसीलिए होती हैं माँएं धरती से बड़ी?'' शीर्षक कविता में हर स्त्री की तरह कवयित्री भी अपनी माँ से यह प्रश्न पूछती है - 'तुमने मुझे क्यों जन्मा मां /क्या एक चली आ रही परंपरा का निर्वाह करना था तुम्हें / या फैलना था एक नए संसार तक / और फिर देखना था अपने आप को मुझमें?'' यह हरेक संवेदनशील स्त्री-पुरुष की स्थिति है कि-''हर बार जितना तुम्हें देखती हूँ /लगता है, जितना दीखता है/उससे ज्यादा छूट गया है/उस छूटे हुए को पकड़ पाई कभी /न लिख पाई तुम्हें!'' (पृष्ठ-14)

'नई परिभाषा गढ़ती अकेली औरत' इस शीर्शक के अंतर्गत दस कविताएँ है। जब तक संयुक्त परिवार थे, तब तक स्त्री हो या पुरुष उन्हें अकेलेपन को झेलना नहीं पड़ता था। परंतु 20 वीं सदी के पांचवे दशक से सारे संदर्भ ही बदल गए हैं। यहाँ इस बात को स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे क्यों तो स्त्री को अपनी अस्मिता का, अपने स्वाभिमान का अहसास होने लगता है। 20वीं सदी के पांचवे और छठे दशक के बाद स्त्री
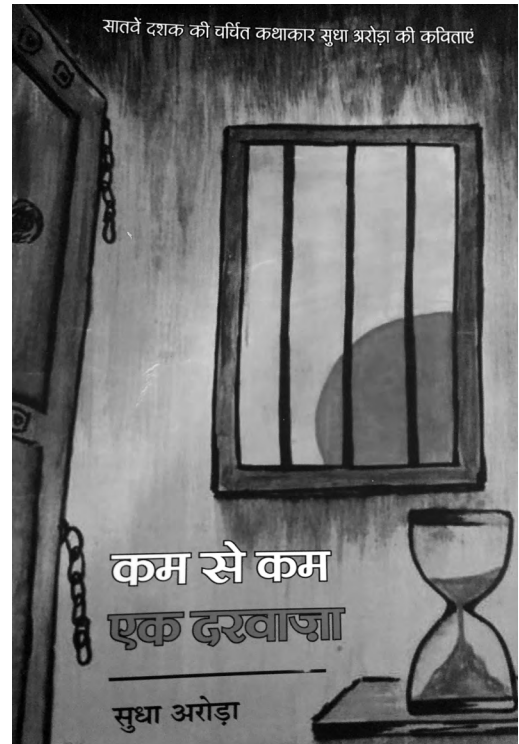
| | | |
|---|---|---|
| **पुस्तक नाम** | : | कम से कम एक दरवाजा (कविता संग्रह) |
| **लेखक** | : | सुधा अरोड़ा |
| **प्रकाशन** | : | बोधि प्रकाशन, जयपुर |
| **मूल्य** | : | 60/- रुपये (104 पेज) |

अधिक अंतर्मुख होकर सोचने लगती है और पुरुषप्रधान व्यवस्था को चुनौती देने की मुद्रा में आ जाती है। इस प्रक्रिया में उसके हाथ अकेलापन आ जाता है। इस अकेलेपन की व्यथा से जूझनेवाली स्त्रियों के अनेक रूप इस खंड की कविताओं में सुधा जी ने पूरी खूबसूरती और बेहद संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। कवयित्री व्यंजना से यह स्पष्ट कर देती है कि वे किन स्त्रियों की बात यहाँ करने जा रही है। - ''बात करें उन पीले पत्तों की/ओस की बूंदों की नमी से भी/जो हरिया नहीं पाते/और शाख से टूट कर गिर जाते हैं''(पृष्ठ-18)

इस खंड की कविताओं को पढ़ते समय बार-बार कात्यायनी

के काव्यसंग्रह 'सात भाइयों के बीच चंपा' की याद आती है। 'अकेली औरत का हंसना' कविता की सच्चाई है कि जवान स्त्री का हंसना या रोना दोनों ही गलत माना जाता है। खुलकर हंसे तो उसे बेशर्म-बेहया और रोये तो अपशकुनी ! न हंसने की छूट, न रोने की आजादी। मराठी कवि मर्ढेकर के शब्दों में यहाँ जीना भी अनिवार्य है और उसके साथ मरना भी । अकेली औरत का हंसना किसी गैर जरूरी चीज की तरह होता है। ऐसी औरत ''पूरी की पूरी आपके सामने खड़ी होती है और आधी-पौनी ही दिखती है।'' ''अकेली औरत का रोना'' की औरत फूट फूट कर रोना चाहती है। इस पुरुषप्रधान व्यवस्था में ऐसी अकेली औरत का जीना मुश्किल होने लगता है। खुले मैदान में भी वह खुलकर सांस नहीं ले पाती। आखिर ''अकेले ही रुलाई का पिटारा अपने सामने खोल देती है, सबकुछ तरतीब से बिखर जाने देती है।'' जब यह अकेली औरत 'अकेलेपन को एकांत में ढालने का सलीका'' सीख लेती है तब से उसके लिए स्थितियां आसान होने लगती है।

अगली कविता 'उसके भीतर कई रातें बजती हैं'-एक ऐसी औरत के अकेलेपन को प्रस्तुत करती है जिसका दांपत्य जीवन पति के छोड़कर चले जाने से बिखर जाता है। अब उसके सामने प्रश्न है कि भविष्य का जीवन कैसे बिताए ? क्या किसी और को स्वीकार करें अथवा अकेलेपन में जिए ? एक बार धोखा खाई यह स्त्री केवल पांच वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद काफी सोच समझकर जिंदगी भर अकेले रहने का निर्णय लेती है। कविता की अंतिम पंक्तियाँ बेहद सजग और ध्वन्यार्थ से भरपूर हैं -''अकेली औरत/रात भर कपड़े पहनकर /सोने की आजादी चाहती है।'' (पृष्ठ-30) इस श्रृंखला की अंतिम कविता में सुधा जी इक्कीसवी सदी की नई औरत को प्रस्तुत करती हैं। इस औरत के अनेक चेहरे हैं और वह इन सभी चेहरों को इकट्ठे लेकर घूमती रहती हैं, पता नहीं कब किस चीज की जरूरत पड़े। ''इक्कीसवीं सदी की यह औरत /हाड़ मांस की नहीं रह जाती/इस्पात में ढल जाती है/ और समाज का /सदियों पुराना /शोषण का इतिहास बदल डालती है।'' (पृष्ठ-44) यह नई स्त्री अब तक उसका उपयोग करनेवाले पुरुषों का उपयोग अपने फायदे के लिए करने लगती है। उपयोग हो जाने के बाद उन्हें फेंक ही नहीं देती अपितु रौंदते हुए आगे बढ़ जाती है। मजेदार बात तो यह है कि ''और वे ही उसे सिर माथे बिठाते हैं/जिन्हें वह कुचलती चलती है।'' क्या औरत के इस रूप से रचनाकार खुश हैं? लगता है कि स्त्री के इस रूप से वे खुश नहीं है, इसी कारण तो इस कविता का अंत वे इन पंक्तियों में व्यंग्य के साथ करती हैं- ''बाजार के साथ /बाजार बनती /यह सबसे सफल औरत है।''(पृष्ठ-44)

> **इस खंड की कविताओं को पढ़ते समय बार-बार कात्यायनी के काव्यसंग्रह 'सात भाइयों के बीच चंपा' की याद आती है। 'अकेली औरत का हंसना' कविता की सच्चाई है कि जवान स्त्री का हंसना या रोना दोनों ही गलत माना जाता है। खुलकर हंसे तो उसे बेशर्म-बेहया और रोये तो अपशकुनी ! न हंसने की छूट, न रोने की आजादी।**

संग्रह की अन्य सभी कविताओं में ये दस कविताएँ पाठकों को सर्वाधिक प्रभावित और बेचैन कर देती हैं। अकेलेपन का अहसास बहुत निजी और भीतरी होता है। इन कविताओं ने इस अहसास को पूरी ताकत के साथ प्रस्तुत किया है, और इसी कारण इन कविताओं को बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। आश्चर्य इस बात का है कि यह अहसास काफी खौफनाक और यातनामय होता है। विशेष रूप से ऐसी कविताएँ जो पाठक को बहुत भीतर तक कुरेदती हैं, उनकी ही ओर पाठक बार-बार आकृष्ट होता है।

इन कविताओं को पढ़ते समय कुछ प्रश्न मेरे मन में उठते हैं। सुधा जी से क्षमा मांगते हुए कि क्या अकेलापन केवल स्त्री ही ढोती है? क्या केवल पुरुष ही बेवफाई करते हैं? क्या पुरुष को उसका गृहस्थ जीवन बार-बार याद नहीं आता? एक नारीवादी होते हुए सुधा जी स्त्रियों के अकेलेपन को व्यक्त कर रही हैं और इस अकेलेपन के लिए वे पुरुषों को ही जिम्मेदार ठहरा रही हैं। परंतु यह पूरा सच नहीं है। ऐसी भी औरतें होती हैं जो वैवाहिक जीवन के पांच-दस वर्षों बाद किसी और के साथ निकल जाती हैं। भरे-पूरे घर को छोड़कर और ऐसी स्थिति में ऐसे भी पुरुष होते हैं जो पुर्नविवाह न करते हुए, उस दाम्पत्य जीवन की याद करते हुए इस स्त्री से हुए बच्चों को मातृत्व का अभाव महसूस न कराते हुए अपने पितृत्व की जिम्मेदारियाँ पूरी ईमानदारी से निभाते हैं। ऐसे पुरुष के अकेलेपन की यातना पर सुधा जी कम-से-कम एक कविता भी लिखती तो वे पुरुष को भी न्याय दे पाती। ऐसे पुरुष संख्या में कम होंगे, जाहिर है कि ऐसी बेवफाई करनेवाली स्त्रियाँ भी कम होंगी, परंतु वे हैं ना! ऐसी स्त्रियों के जो शिकार हो चुके हैं, ऐसे पुरुषों की व्यथा, यातना, अकेलेपन पर न तो पुरुषों न लिखा है और न सुधा जी जैसी संवेदनशील स्त्रियों ने। खैर, प्रत्येक की अनुभूति का क्षेत्र विशिष्ट होता है। किसी प्रतिभासंपन्न व्यक्ति से ऐसी मांग करना केवल ज्यादती ही नहीं अपितु अभिव्यक्ति की ईमानदारी को नकारना है। बावजूद इस सीमा के औरत के अकेलेपन को लेकर इतनी खूबसूरत कविताएँ लिखने के लिए सुधा जी का अभिनंदन कि वे अपनी अनुभूति के प्रति, अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार हैं!

**डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे**
निकष, 19, अजिंक्य विला, अजिंक्य सिटी,
अंबा जोगाई रोड,
लातूर, महाराष्ट्र 413 531
मोबाइल : 09423735393

## पुस्तक-समीक्षा

**डॉ. मधुकर खराटे**

### यादों का हसीन गुलदस्ता :

# कुछ भूला, कुछ याद रहा

**पुस्तक नाम** : कुछ भूला, कुछ याद रहा
**लेखक** : ज़हीर कुरेशी
**प्रकाशन** : अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद (उ.प्र.)
**मूल्य** : 150/- रुपये (104 पेज)

प्रतिष्ठित ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी का संस्मरणात्मक आलेखों का ग्रंथ 'कुछ भूला कुछ याद रहा' संस्मरण साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आत्मकथन आत्म अभिव्यक्ति की सहज प्रवृत्ति है। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार, 'आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सबलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है, जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन में समर्थ होता है।' इसमें रचनाकार की संवेदना संवेदित होती है।

ज़हीर कुरेशी ने 'एक शायर : जिसने मेरे किशोर-मन को हौसला दिया' में स्वीकार किया है कि किसी भी सृजनधर्मी का मनोजगत बचपन से ही बनता है। उसके बनने में किशोरावस्था के अनेक कारक अपना काम करते हैं। जहीर के किशोर-मन को साहिर लुधियानवी की फिल्मी शायरी ने बहुत प्रभावित किया। 'धूल का फूल' फिल्म के गीत 'तू हिन्दू बनेगा न मुसलमान बनेगा/ इन्सान की औलाद है, इन्सान बनेगा' ने उनके मस्तिष्क को उदार, जाति विहीन एवं सरहदों से परे बनने में बड़ा योगदान दिया। उन्हीं के शब्दों में, 'लब्बो-लुआब यह है कि परोक्ष रूप से साहिर के अनेक गीतों ने मुझे जिन्दगी के मोर्चे पर डटे रहने के लिए प्रेरित किया।'

संस्मरणकार अपने जीवन की उपलब्धियों के साथ अपने अपमान के कड़वे घूँट का भी बखान करता है। दुष्यंतकुमार हिंदी ग़ज़लें लिखकर ख्याति प्राप्त कर चुके थे और ज़हीर भी उनके नक्शे कदम पर चलते हुए हिंदी ग़ज़लों में अपना स्थान बना रहे थे। परंतु हिंदी ग़ज़ल के शेरों को सुनकर अधितकर उर्दू ग़ज़लकार अपनी असहमति व्यक्त करते थे। हिंदी के वरिष्ठ ग़ज़लकार विनोद तिवारी के आमंत्रण पर ज़हीर कुरेशी भोपाल उनके यहाँ पहुँचे तब वहां उनकी मुलाकात शायरे-आजम शेरी साहब से हुई। जब विनोद तिवारी ने ज़हीर का परिचय करवाते हुए उनसे कहा कि 'ये हिंदी में ग़ज़लें कहते हैं।' तो शेरी साहब ने उपालम्भ के स्वर में पूछा 'ये हिंदी में ग़ज़ल क्या होती है?' तब ज़हीर ने कहा कि ''शेरी साहब! जैसे उर्दू ग़ज़ल से पहले फारसी ग़ज़ल होती थी। फारसी ग़ज़ल के नक्शे-कदम पर चल कर जैसे उर्दू ग़ज़ल वजूद में आई। उसी तरह, उर्दू ग़ज़ल के रास्ते पर चलकर हमारी यह हिंदी ग़ज़ल परवान चढ़ी है।'' तब शेरी साहब ने थोड़े तुर्श लहज़े में ग़ज़ल सुनाने के लिए कहा। ज़हीर ने चन्द शेर ही सुनाये। परंतु हिंदी ग़ज़लों के प्रति पूर्वाग्रह के कारण शेरी हिंदी ग़ज़ल को नजर-अंदाज़ करते हुए उठ कर कमरे से बाहर निकल गए। यह ज़हीर एवं हिंदी ग़ज़ल के प्रति शेरी साहब का अपमानजनक रवैया था।

ज़हीर के जीवन में विशिष्ट व्यक्ति जैसे महाकवि आचार्य जानकी वल्लभ से संपर्क का योग आया। ज़हीर को बिहार के बेगूसराय में कवि सम्मेलन के लिए आमंत्रित किया गया था। वहाँ पहुँचकर यह ज्ञात हुआ कि आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन आयोजित है। ज़हीर को खुशी इसलिए हुई कि शास्त्रीजी भी उन दिनों ग़ज़ल कह रहे थे। शास्त्रीजी के व्यक्तित्व के संबंध में ज़हीर ने लिखा है, ''कार्यक्रम स्थल के निकट वेटिंग पंडाल में दखिल होते ही मैं देखता हूं कि आकर्षक कुर्ता-धोती में मंद गति से पान चबाते हुए एक दिव्य व्यक्तित्व बैठा हुआ है। दो-चार कवि उनके आसपास विराजमान हैं। मैंने स्थानीय

कवि मित्र की ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखते हुए जानना चाहा तो मित्र ने कहा, 'आचार्य जी हैं।' कवि सम्मेलन में ज़हीर को काफी पंसद किया गया। दूसरे दिन शास्त्री जी से भेंट हुई, तब तक उन्होंने ज़हीर के 'चाँदनी का दुःख' की अधिकांश ग़ज़लें पढ़ ली थीं। उन्होंने इतना ही कहा कि कालान्तर में इनकी ग़ज़लें अगर हिंदी की मानक ग़ज़लें मान ली जाएं, तो कोई आश्चर्य नहीं।'' यह ज़हीर को एक प्रकार से आशीर्वचन ही था। इसका प्रमाण यह है कि 2008 में ज़हीर की 25 ग़ज़लें उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव एवं स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ के स्नातकोत्तर हिंदी पाठ्यक्रम में निर्धारित हुई। इसे ज़हीर हिंदी ग़ज़ल की मान्यता का टर्निंग पॉइन्ट मानते हैं।

डॉ. शंभुनाथ सिंह सन् 1980 में नवगीत दशकःएक, दो, तीन निकालने की योजना बनाने लगे और यह भी तय किया गया कि इन तीनों संग्रहों के लिए कुल तीस नवगीतकारों का चयन एक साथ कर लिया जाये। आयु वरिष्ठता के क्रमानुसार जहीर को दशक तीन में सम्मिलित किया गया था। तब जहीर नवगीत एवं ग़ज़ल दोनों लिख रहे थे। नवगीत दशक दो के लोकार्पण के अवसर पर एक कवि सम्मेलन आयोजित किया गया था। जिसमें डॉ. शम्भुनाथ सिंह द्वारा दशक में सम्मिलित सभी नवगीतकारों से यह आग्रह किया गया था कि वे कवि सम्मेलन में अपने नवगीत ही पढ़े।

रात्रि में कविता-पाठ काक कार्यक्रम था जिसके संचालन के लिए ग्वालियर से गीतकार मुकुट बिहारी 'सरोज' को बुलाया गया था। उन्होंने ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों की प्रशंसा करते हुए कहा कि वे ज़हीर को उनकी ताज़ा ग़ज़लें सुनाने के लिए आमंत्रित करते हैं। अतएव 'सरोज' की बात रखते हुए ज़हीर ने कतिपय ग़ज़लें सुनाई। उनको काफी सराहा भी गया। शमशेर ने तो यहां तक कहा कि 'उन्होंने लगभग बीस बर्षों बाद इतनी ताज़ादम ग़ज़ले सुनी है।' इस युवा कवि ज़हीर से ग़ज़ल बहुत सी उम्मीद बांध सकता है। परंतु अवज्ञा को लेकर शम्भुनाथ सिंह क्रोधित हुए। उन्होने ज़हीर से स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'नवगीत न सुनाकर उन्होंने अवहेलना की है। अतः वे ज़हीर को नवगीत दशकः तीन से निकाल रहे हैं' परंतु माहेश्वर जी ने उन्हें समझाया कि यदि ज़हीर ग़ज़लें नहीं सुनाते तो मुकुट बिहारी का ग्वालियर में रहना मुश्किल कर देते। बाद में डॉ. शम्भुनाथ सिंह शांत हुए और ज़हीर को 'नवगीत दशकः तीन' में यथावत रखा गया।

ज़हीर कुरेशी ने उनके जीवन से जुड़े व्यक्तियों में रामप्रकाश त्रिपाठी पर संस्मरण लिखा है। उन्हीं के शब्दों में, 'राम प्रकाश त्रिपाठी से मेरे चार दशक लंबे संबंध रहे हैं। रामप्रकाश जनवादी लेखक संघ के महासचिव रहे... ग्वालियर इकाई का पहले सचिव, बाद में अध्यक्ष रहने के दौरान, रामप्रकाश किस प्रकार मुझसे कठिनतर कार्यक्रम करवाते रहे- इसका रोचक वर्णन है संस्मरण 'देवता होने से पहले के रामप्रकाश में।'

ज़हीर स्वयं एक शायर है और जब वे सलीम अश्क जैसे शायर पर अपनी लेखनी चलाते हैं, तब संवेदनशील होना स्वाभाविक ही है। ज़हीर सलीम अश्क को अपनी पीड़ा, अस्मिता और अर्थवत्ता की तलाश करता हुआ शायर मानते हैं। सन 1971 के आसपास प्रतिभावान युवा कवि एवं शायरों के रूप में सलीम अश्क, महेश अनघ, राम प्रकाश अनुरागी, सुरेश सम्राट, सुरेश नीरव जैसे सृजक ग्वालियर में सक्रिय थे। उस समय शांति स्वरूप चाचा का अवास युवा कवियों का मिलन स्थल हुआ करता था। चाचा स्वयं सूरदास थे। फिर भी कवि- शायरों की आवभगत उनके यहां पर्याप्त होती थी। यहां पर जहीर ने सलीम अश्क को सुना। इसी काव्य महफिल में ज़हीर ने भी अपनी ग़ज़लें सुनायी जिसने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। सलीम अश्क की ग़ज़लों में चिंतन की गहराई थी। ज़हीर लिखते हैं कि लगता था कोई पीड़ा है- जिसे सलीम व्यक्त करना चाहकर भी, व्यक्त नहीं कर पा रहे थे। सलीम अश्क आजीवन अपने शेरों में अपनी पीड़ा, अस्मिता और अर्थवत्ता की तलाश करते रहे। जैसा कि उन्होंने अपने एक शेर में कहा है-

**आओ, उस शायर के शेरों में करें उसकी तलाश**
**दर्द से वाकिफतों है, उससे मिलने हम भी नहीं।**

ज़हीर डॉ. चन्द्रबली सिंह को भी विस्मृत नहीं कर पाते हैं। वे चन्द्रबली सिंह को उद्भट विद्वान, मार्क्सवादी समालोचक एवं प्रखर संगठनकर्ता के रूप में देखते हैं। डॉ. चन्द्रबली सिंह अलोचना साहित्य में अपनी दो महत्वपूर्ण ग्रंथों लोकदृष्टि और हिंदी साहित्य एवं आलोचना का जनपक्ष के कारण प्रसिद्ध आलोचक माने गये। चन्द्रबली सिंह द्वारा किए गए पाब्लो नेरूदा, नाजिम हिकमत, व्हिटमैन और एमिली डिकिन्सन जैसे कवियों की कविताअें का हिंदी अनुवाद भी साहित्य क्षेत्र में प्रशंसनीय रहा है। ज़हीर की स्मृति में वे डॉ. चन्द्रबली सिंह हैं, जिन्होंने एक साहित्यिक गोष्ठी में अध्यक्षीय उद्बोधन अस्वस्थ होते हुए भी खनकदार आवाज़ में दिया था, जिसका निष्कर्ष था वामपंथ के अवसान की अनेक घोषणाओं के बावजूद याद रखिए- वामपथी विचार धारा कभी नहीं मरेगी।

ज़हीर कुरेशी प्रो. कमला प्रसाद को याद करते हुए लिखते हैं कि 'संसार में बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, जिनकी स्मृतियां दूर तक और देर तक साथ रहती हैं। प्रो. कमला प्रसाद एक ऐसे ही व्यक्तित्व थे। यह उनकी मनुष्यता, सद्भावना, सदाशयता और सकारात्मकता का ही कमाल था जो वे आलोचना कर्म से जुड़े होने के वाबजूद साहित्यकारों में इस कदर लोकप्रिय थे। ज़हीर को अपनी ग़ज़लें उन्हें सुनाने का अवसर भोपाल की एक घरेलू काव्यगोष्ठी में आया। उनके शेर वे वो सागर से चुराते हैं उसे भी देखा/ सिर्फ तुम देख सके मेघों का दानी होना, को सुनकर कमला प्रसाद अभिभूत हुए थे। और जब ज़हीर ने यह शेर सुनाया था कि हमारे बच्चे अगर पूछते नहीं हमको/हम इस तरह भी निसंतान हो जाते हैं। तब कमला प्रसाद ने कहा था इस शेर में बेऔलाद होने को ज़हीर ने कितने नये ढंग से परिभाषित किया है। निश्चित ही प्रो. कमला प्रसाद जैसे आलोचक का ज़हीर की ग़ज़लों की प्रशंसा करना ज़हीर कुरेशी के लिए प्रेरणादायी है।'

**शेष पेज 93 पर**

**डॉ. माधुरी छेड़ा**

# देश, साहित्य और समाज

## सामासिक संस्कृति के विविध छोर

| | | |
|---|---|---|
| **पुस्तक नाम** | : | देश, समाज और साहित्य |
| **लेखक** | : | कमलेश बख्शी |
| **प्रकाशन** | : | प्रेम प्रकाशन मंदिर, |
| **मूल्य** | : | 300/- रुपये |

एक सृजनधर्मा रचनाकार जब अपनी कलम उठाता है तो उसकी कलम से निकली अन्य विधा-रचनाओं को भी उसकी तरलानुभूति, संवेदनशीलता, मानवीय सरोकारों के प्रति उसकी जागरूकता, आदि का लाभ मिलता है। कमलेश जी मूलतः कथाकार हैं, उनके खाते में अनेक कहानी संकलन और उपन्यास दर्ज हैं, उनकी रूचि और रुझान सृजनात्मक साहित्य ही है। पर एक प्रतिबद्ध रचनाकार अपने अतराफ के परिवेश से अलिप्त नहीं रह सकता, उनसे डिस्टर्ब होता है, प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, इसीलिए ' देश, समाज और साहित्य ' पुस्तक कमलेश बख्शी के वैचारिक मंथन को पाठकों के सम्मुख प्रकट करती है। उनकी अब तक की लेखन-यात्रा मुख्य रूप से मौलिक लेखन के अंतर्गत कहानियों और उपन्यास पर आधारित है। इसी के साथ उन्होंने यात्रा-वर्णन के अनुभव भी पाठकों के साथ बाँटे हैं। पर उनकी सद्य प्रकाशित यह पुस्तक उनके बहुस्तरीय लेखकीय व्यक्तित्व के एक नए रुझान को प्रकट करती है।

कमलेश बख्शी की कलम से निकली यह रचना असल में हमारे समाज का इतिहास है। इतिहास को परिभाषित करते हुए किसी ने सच ही कहा है कि भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास हमें इतिहास की पुस्तकों में नहीं, पर प्रेमचंद जैसे लेखकों की रचनाओं में ढूँढना चाहिए। यह पुस्तक भी स्वतन्त्रता के तुरंत बाद के उस कालखंड का इतिहास है, जहाँ अभी देशप्रेम निजी स्वार्थ में तबदील नहीं हुआ था, स्वतंत्रता-मूल्यों की आस्था में ओट नहीं आयी थी, राजनीतिक पदों पर आसीन शक्तिकेंद्र अपनी क्षमताओं का उपयोग जनहित में करने के प्रति उत्साही थे। और राजनीतिक परिदृश्य आज जैसा अनाचारी, वीभत्स, भ्रष्टाचार से लिप्त नहीं था। इस पुस्तक में कमलेश जी के वे लेख संकलित हैं जो समय समय पर या तो स्तंभ रूप में प्रकाशित हैं, या विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समाहित हैं।

यह पुस्तक एक ऐसा आइना है, जिसमें किसी देश के विभिन्न अंगों का समुच्चय उस देश की मुकम्मल तस्वीर पेश करता है। इसमें उकेरे गए इतिहास के रूबरू हमारे वर्तमान को रखकर देखने में इस पुस्तक का महत्त्व उद्घाटित होता है। पुस्तक में राजनीतिक व्यक्तियों का परिचय, सामाजिक संस्थाओं की मुलाकात, भाषा संबंधी सरोकार और साहित्य-चर्चा जैसे जुदा जुदा प्रदेशों को एक मंच पर देखा जा सकता है। ये इतिहास तथ्यों की जानकारी हासिल करने के लिए नहीं बल्कि, ये वह आइना है जिसके सन्दर्भ से वर्तमान को समझने में मदद मिल सकती है, यह आज के परिदृश्य को समझने का औजार है। नवभारत टाइम्स ने उन दिनों ' जीवन-परिमल ' स्तंभ शुरू किया था जिसमें तत्कालीन राजनीति में महिला धारासभ्यों के व्यक्तित्त्व और उनकी गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता था और इस स्तंभ के सूत्र संभाले कमलेश बख्शी ने। ये 1957-58 का कालखंड है। उस कालखंड में इन महिला धारासाभ्यों के व्यक्तित्त्व की संपन्नता, नेतृत्त्व, समर्पण, कार्यनिष्ठा, प्रतिबद्धता और साहस हमें इसीलिए अचंभित करते हैं कि साठ वर्ष जितना लंबा दौर बीतने के बावाजूद आज भी लड़कियों की शिक्षा को लेकर हम कितने चिंतित हैं और सामाजिक विज्ञापनों में आज भी यह मुद्दा अहम है। व्हाट्स एप्प जैसे सामाजिक माध्यम में 'हाउस-वाइफ' की संकल्पना को लेकर आज भी अनेक संदेशों

का आदान-प्रदान देखा जा सकता है। और यदि हम आज की स्त्री-नेताओं को इनके रूबरू रखकर देखते हैं तो हालात और भी बद्‌तर दिखाई देते हैं। 'आज ' और ' बीते कल ' की इन महिला-नेताओं को एक-दूजे के रूबरू जानना दिलचस्प होगा। राज्यसभा की सदस्य डॉ.सुशीला नायर एम.बी.बी.एस. और एम.डी. थीं. 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघीय समाज आयोग की उपाध्यक्ष भी बनीं और 1955 में पुनर्वास मंत्री भी बनीं। आज जबकि मंत्री-गण जनता के पैसों से लंबी-चौड़ी महंगी गाड़ियों में सिक्योरिटी गार्ड के साथ निकलते हैं, वहाँ मंत्री बनने के बाद भी सुशीला जी लंबी-लंबी लाईनों में खड़े रहकर बस से सचिवालय तक जातीं थीं। वे कहतीं थीं कि आज के युग में कोई भी देश अकेले ही अपनी कमजोरियों और कमियों को दूर नहीं कर सकता, उसे सारे विश्व को एक इकाई मानकर ही सोचना होगा। उनकी यह बात उनकी दूरदृष्टि को तो प्रमाणित करती ही है, साथ ही यह सोचकर आश्चर्य होता है कि बिना फैशनेबल हुए उन्होंने बड़ी सादगी के साथ बहुत पहले ही आज के ग्लोबलाइजेशन का संकेत भी दिया है। सुश्री एनी मैसकरीन एडवोकेट थीं। आगे चलकर वे कम्युनिस्ट बन गयीं। वे त्रावनकोर-कोचीन प्रांत की स्वास्थ्य और विद्युत विभाग की मंत्री भी रहीं। उन्होंने अविकसित समुदायों के लिए काफी काम किया। शिष्टमंडल की सदस्या के रूप में वे कोपनहेगन भी गयी थीं। वे संगीत प्रेमी थीं और गिटार बजाना जानती थीं।

तो श्रीमती रेणु चक्रवर्ती ने भी उच्चशिक्षा प्राप्त की थी। वे कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य थीं और 1952 में कम्युनिस्ट टिकट पर संसद की सदस्या चुनी गयीं। वे भी शिष्टमंडल के साथ कोपनहेगन गयी थीं। उन्होंने महिलाओं की स्थिति को सुधारने की दिशा में काफी काम किया। उन्हें सिनेमा देखने का शौक था।

उस समय का एक बहुत चर्चित नाम है तारकेश्वरी सिन्हा का। अपने कर्म क्षेत्र का परिचय देते हुए उन्होंने कहा था, मैंने संसद में इतना काम नहीं किया है जितना काम अपने निर्वाचन क्षेत्र में किया है। सिंचाई, जमीन और खेती की उन्नति में उनकी विशेष रूचि थी। पंडित नेहरु से प्रभावित इस महिला राजनेता ने संसद में जब भी पाकिस्तान के प्रति नेहरु जी को नरमी बरतते देखा तो उसका कड़ा विरोध किया। तारकेश्वरी जी बैडमिंटन की कुशल खिलाड़ी थीं, संगीत-प्रेमी थीं।

इसी प्रकार निर्मला राजे भोसले हरिजनों और पिछड़ी जातियों के जीवन-स्तर को उठाने के लिए प्रयत्नरत थीं, अनेक भाषाओं की ज्ञाता, पेंटिंग, संगीत, घुड़सवारी, टेनिस, बिलियर्ड, बेडमिन्टन और तैराकी की शौकीन थीं। इसी क्रम में वायलेट अल्वा, लक्ष्मी मेनन, एनी बिसंट, रेणुका राय और कमलादेवी चट्टोपाध्याय भी हैं- ये सब पढ़ी-लिखीं, निष्ठावान कार्यकर्ता, विदेशगमन कर अपने व्यक्तित्त्व को अधिक संपन्न बनानेवाली, कलाओं में पारंगत, स्पोर्ट्स में कुशलता हासिल करनेवाली राजनेता रही हैं।

इस आईने में आज की महिला राजनेताओं को देखिए... यदि वे महिलाएँ अपने काम, अपनी निष्ठा, समर्पण और व्यक्तित्व की संपन्नता के लिए जानी जातीं थीं तो आज एक अपनी तुकमिजाजी और अपने घमंड के नशे में चूर, सरकारी अधिकारियों से अपने सैंडल उठवाने के लिए, उनके लिए अपशब्दों के प्रयोग के लिए, उन्हें अपमानित करने के लिए और अपने जन्मदिन पर अपने वजन के लड्डू तुलवाने के लिए जानी जाती हैं. तो दूसरी अपने जूतों की गिनती के लिए जमानेभर में चर्चित है, एक और की काबिलियत सिर्फ उनके नेहरु-गाँधी परिवार से होने में है, वरना उनके पास न कोई राजनीतिक दृष्टि है, न संयोजन-क्षमता, न अगुवा बनने के गुण, न संकलन शक्ति है। कोई अपनी शैक्षणिक डिग्री के लिए शंका के घेरे में है। इसीलिए यह पुस्तक इतिहास का वह आइना है जिसमें हम आज के राजनीतिज्ञों के बौने कद, निजी स्वार्थ, निर्मम अपराध और उनके जन-द्रोह को देखने के लिए मजबूर हैं।

'जीवन परिमल' स्तंभ में विशिष्ट व्यक्तियों का परिचय देने के अलावा लेखिका ने विशिष्ट व्यक्तियों के रूप में रविशंकर महाराज, सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. उषा मेहता, शहीद भगतसिंह और गुरु नानक के व्यक्तित्त्वों को भी शब्दबद्ध किया है। यहाँ फिर उसी बात को दोहराना होगा कि इन व्यक्तियों के प्रकाश में आज के जन प्रतिनिधियों की छवि कैसी है ! रविशंकर जी सेवा के व्रतधारी, सत्याग्रही, और भूदान आन्दोलनकर्ता थे, उन्होंने बेगार के विरुद्ध लोकजागृति फैलायी, पानी के लिए कुएँ खुदवाये और तालाब बनवाए। डॉ. उषा मेहता ने स्वंत्रता आन्दोलन के दौरान भूगर्भ रेडिओ का प्रारंभ किया, राष्ट्रभाषा प्रचार से जुड़ी रहीं, आजीवन खादी को अपनाया। राजनीति की इस प्रोफेसर ने फुलब्राइट फेलोशिप के तहत अमेरिका में अनुसंधान कार्य किया। सरदार पटेल की तीक्ष्ण बुद्धि, कार्यकुशलता, दूरदृष्टि को कौन नहीं जानता। रियासतों का विलिनीकरण करके नवीन भारत का एकीकरण करने का महान काम उन्होंने किया। शहीद भगतसिंह के बलिदान को भी सदैव याद रखा जाएगा। इनकें रूबरू आज के जनप्रतिनिधि अनाचारी, भ्रष्टाचारी, चरित्रहीन, अपराधी और बेहया हैं। इस प्रकार मानो वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को समझने के लिए, उसका मूल्यांकन करने के लिए यह पुस्तक सन्दर्भ बन जाती है।

स्वतन्त्रता के बाद के समाज-चित्र को देखें तो सत्तर वर्षों के बाद भी ऐसी व्यवस्थाएँ उपलब्ध नहीं हैं जो मंदबुद्धि बच्चों के जीवनस्तर को बेहतर बना सके। इन बच्चों की स्थिति के साथ इनकी माताओं की पीड़ा को भी लेखिका ने व्यक्त किया है। 'प्रजातंत्र' शब्द बहुत खूबसूरत है पर मंदबुद्धि बच्चों से न तो तंत्र को कोई सहानुभूति या संवेदना या उत्तरदायित्त्व की अनुभूति है न परिवारवालों को ही उनकी परवाह है। ऐसे सवेंदनशील लेख लोगों को जागरूक करने के लिए कारगर सिद्ध होते हैं।

जिस तरह से हम स्त्री-शिक्षा की दिशा में लक्ष्य हासिल करने के लिए जूझ रहे हैं करीब-करीब यही हाल ' हिंदी ' संबंधी हमारी चिंता का भी है। अपने इस सरोकार व्यक्त करते हुए लेखिका ने हिंदी के सृजनात्मक क्षेत्र, गांधी जी के हिंदी विषयक विचार, विदेशों में हिंदी की लोकप्रियता पर बात की है। सृजनात्मक क्षेत्र में मौलिक

लेखन, अनुवाद, अहिंदी भाषी लेखक और विदेशों में हिंदी भाषा के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण हिंदी की महत्ता दशार्ता है। इसी क्रम में नौवें विश्व हिंदी सम्मलेन की रपट भी दी गयी है।

एक लेखिका होने नाते वे साहित्य के क्षेत्र को कैसे भूल सकती हैं? अपनी हमसफर पंजाबी भाषी कृष्णा सोबती, निरुपमा सेवती, सिम्मी हर्षिता और राजी शेठ के सृजन-प्रदेश वे हमें में ले चलती हैं और उनके हिंदीं प्रदेय के रूबरू खड़ा कर देती है। यह इसलिये भी विलक्षण है कि किसी महिला लेखिका को मैंने पहली बार किसी अन्य लेखिका की प्रशंसा करते और स्वीकृति देते देखा।

इसी क्रम में शिवकुमार बटाली, पाश, अमृता प्रीतम और प्रभजोत कौर के पंजाबी काव्य में नारी के रूप-स्वरुप पर बात करके हिंदी समीक्षा को संपन्न करते हुए भारतीय साहित्य की संकल्पना की याद दिलायी है। पुस्तक का शीर्षक व्यापक परिदृश्य का सूचक है। इसीलिए देश और साहित्य के साथ-साथ समाज और संस्कृति के विभिन्न छोरों तक यह कलम पहुँचती है, जहाँ से लेखिका पाठकों को महाराष्ट्र के इलोरा-अजंता-एलिफेंटा की गुफाओं के भव्य वास्तु और कलात्मकता का साक्षात्कार कराती हुई यदि एक ओर हमारी सांस्कृतिक विरासत का परिचय देती है तो दूसरी ओर पंढरपूर के विठोबा, नांदेड़ के गुरुद्वारा और शिर्डी के सांईबाबा के प्रति आम जनता की आस्था का उल्लेख करके भारतीय जन-मानस की परतें खोलती हैं, मध्यप्रदेश के इटारसी शहर की गलियों में घूमती हुई अपने पुराने दिनों की याद के बहाने पुराने और नए दो कालखंडों के बीच हमें ला खड़ा करती है तो बस्तर के आदिवासी जन-जीवन के विकट संघर्ष की कथा कहकर जनतंत्र की असफलता को प्रमाणित करती है।

पुस्तक के अंत में जब लेखिका पंजाब के गुरु नानक की वाणी और गुरु ग्रंथ साहब की बात करती है तो मानो भारतीय समाज की सामासिक संस्कृति साकार हो उठती है। विषय की दृष्टि से सामान्यतया पुस्तकें एक ही बिंदु पर केन्द्रित होती हैं। लेकिन दो सौ पृष्ठों की यह पुस्तक वाकई हमारे देश, समाज और साहित्य के अनेक सीमांतों का स्पर्श करती है। कोस्मोपोलीटिन कल्चर की तरह यहाँ बहुविध रंगों का ऐसा दृश्य सर्जित होता है जो पाठकों को एक अनोखा अनुभव दे जाता है।

**डॉ. माधुरी छेड़ा**

पेज 90 का शेष.....

सन 1977 में प्रगतिशील लेखक संघ ग्वालियर इकाई की ओर से महत्व काशीनाथ सिंह शीर्षक से कहानी पर दो दिवसीय गोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसके उद्घाटन के लिए दिल्ली से डॉ. नामवार सिंह आए थे। इस गोष्ठी में डॉ. नामवर सिंह, काशीनाथ सिंह के साथ रवीन्द्र कालिया, नासिरा शर्मा, ममता कालिया भी पधारे थे। ज़हीर ने शेर लिखा, समुद्र शक्ल से कितना शरीफ लगता है/ ये तस्करों से मिला है, पता नहीं लगता है। बाद में, इलाहाबाद के कार्यक्रम में रवीन्द्र कालिया द्वारा यही शेर सुनकर नामवर सिंह जी असहज हो गये थे।

बच्चन के सामने प्रश्न था कि 'क्या भूलूँ, क्या याद करूँ' किन्तु ज़हीर के सामने यह प्रश्न नहीं है, क्योंकि उन्होंने स्वीकार किया है कि 'कुछ भुला, कुछ याद रहा।' मनुष्य के जीवन में वही याद रहता है जो उसके मन को प्रभावित करता है। ज़हीर ने अपने जीवन की महत्वपूर्ण स्मृतियों को वाणी देने का प्रयास किया है, बल्कि वे मानते हैं कि ज़हीर ने अपमान एवं उपेक्षा को झेला है, तो अपार प्रशंसा भी प्राप्त की है। उन्होंने जीवन के श्वेत और श्याम पक्षों के संदर्भ में लिखा है :

ज़िन्दगी वो भी चखाएगी, जो कड़वा है कहीं,<br>
ज़िन्दगी के वृक्ष के फल को सदा मीठा न देख।

उन्हें डॉ. लक्ष्मी पाण्डेय का यह कथन याद आता है कि संस्मरण को जिसने गहा है, उसका भावुक, कोमल, संवेदनशील हृदयवाला होने के साथ-साथ शेर दिल होना भी आवश्यक है। अन्य विधाओं में शेर दिल होने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु, संस्मरणकार के लिए यह आवश्यक है। वास्तव में एक संस्मरणकार के रूप में ज़हीर शेर दिल हैं। जो यादें लिपट के रोती हैं, उन यादों को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास ज़हीर ने किया है। उनके संस्मरणों में प्रभाव-निर्माण की क्षमता, स्पष्टवादिता, संस्मरण के चरित्र की विश्लेषणात्मकता, चित्रण की यथार्थता परिलक्षित होती है। संस्मरणों को विश्वसनीय बनाने की संज्ञा एवं प्रतिभा ज़हीर में है। अतएव वे एक श्रेष्ठ ग़ज़लकार के साथ सफल संस्मरणकार भी सिद्ध होते हैं। 'कुछ भूला कुछ याद रहा' एक सजग, सच्चे, संवेदनशील साहित्यकार की आपबीती है।
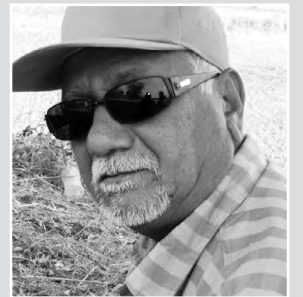
**डॉ. मधुकर खराटे**
मोबाइल : 09422567778
जलगांव, महाराष्ट्र

**सरोज त्रिपाठी**

# पत्रकारिकता की आजादी पर मंडराते खतरे

हाल के कुछ वर्षों में भारत में पत्रकारों पर हमले की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। इन हमलों के शिकार ज्यादातर छोटे शहरों और कस्बों के पत्रकार बन रहे हैं। इनमें से कई पत्रकार किसी मीडिया संगठन से नहीं जुड़े हैं। वे व्यक्तिगत स्तर पर खोजी पत्रकारिकता कर रहे हैं। वे 'रिपोटर्स विदाउट बार्डर्स ' द्वारा वर्ल्ड फ्रीडम इंडेक्स में 180 देशों की सूची में सन 2015 में भारत 133 वे क्रम में हैं। दक्षिण एशियाई देशों की मीडिया पर काम करने वाली संस्था 'हर ' ने भी इस वर्ष मई के 'विश्व स्वतंत्रता दिवस' के मौके पर जारी रिर्पोट में कहा है कि भारत में प्रेस की आजादी गहरे संकट में है। यहां पत्रकारों को न सिर्फ सरकारी मशीनरी का असहयोग झेलना पड़ता है बल्कि कई बार सच कहने की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। भारतीय प्रेस परिषद के मुताबिक पिछले दो दशकों में 79 पत्रकारों की हत्या की गई। बहुत कम मामलों में दोषी व्यक्तियों को सजा हो पाई।

'रिपोर्टर्स विदाउट बॉडर्स' के मुताबिक साल 2015 में भारत में पत्रकारों के लिए युद्धग्रस्त इराक और सीरिया के बाद दुनियां का तीसरा सबसे खतरनाक देश साबित हुआ। इस रिपोर्ट के मुताबिक मीडियाकर्मियों के लिए पाकिस्तान और अफगानिस्तान से भी ज्यादा भारत खतरनाक देश है। शर्मनाक बात तो यह है कि पूरी दुनियां में केवल इराक और सीरिया में ही भारत से ज्यादा पत्रकार मारे गये। इराक में 11 और सीरिया में 10 पत्रकार मारे गये। जबकि भारत में मारे गये पत्रकारों की संख्या नौ रही। फ्रांस, जापान और मेक्सिको में आठ-आठ तथा दक्षिण सूडान, फिलिस्पींस और लेटिन अमेरिका देश हाडुरास में सात-सात पत्रकार मारे गये।

भारत में छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की स्थिति बेहद खराब है। इन राज्यों में पत्रकारों पर बात-बात में मानहानि के मुकद्‌दमें ठोक दिये जाते हैं और उन पर जानलेवा हमले कराये जाते हैं। उल्लेखनीय है कि भारत के संविधान में मानहानि को उन विषयों में शामिल किया गया है जिनके आधार पर अभिव्यक्ति की आजादी पर युक्तियुक्त निर्बंधन लगाये जा सकते हैं। समाज पर मान गिरने से मनुष्य पर होने वाले भौतिक, मानसिक और भावनात्मक परिणाम की गंभीरता को देखते हुए मानहानिकारक कृत्य को सिविल और अपराधिक दोनों ही प्रकार का अपराध बनाया गया है तथा इसके दोषी व्यक्तियों के लिए दंड के रूप में क्षतिपूर्ति और कारावास दोनों का प्रावधान किया गया है।

दुर्भाग्य से पत्रकारों को डराने और उन पर दबाव डालने के इरादे से उनके खिलाफ मानहानि के मुकद्‌दमें ठोकने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है।

'रिपोर्टर्स विदाउट बॉडर्स' के मुताबिक साल 2015 में भारत में दो पत्रकारों की हत्या और गैर-कानूनी खनन की रिपोर्टिंग करने के सिलसिले में की गई। यह बात गौरतलब है कि मध्यप्रदेश के बालाघाट जिले के पत्रकार संदीप कोठारी ही हत्या के बाद 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉडर्स' ने भारत सरकार से निवेदन किया था कि वह पत्रकारों की सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय योजना बनाये, लेकिन भारत सरकार ने इस सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दिया। संदीप कोठारी जबलपुर के कई अखबारों के लिए संवाददाता के तौर पर कार्य करते थे। बालाघाट के कटंगी इलाके से कुछ लोगों ने उनका अपहरण कर लिया था। इस सिलसिले में गिरफ्तार किय गये तीन युवकों ने पुलिस द्वारा पूछताछ के दौरान कूबूल किया था कि महाराष्ट्र के नागपुर में उन्होंने संदीप को जलाकर मार डाला था। पुलिस के मुताबिक संदीप संबंधित इलाके के माफियाओं की अक्सर पुलिस में शिकायतें करते रहते थे इसी कारण वे माफियाओं के निशाने पर थे।

उत्तर प्रदेश में पत्रकारों पर हमले का कोई सरकारी आंकड़ा तो उपलब्ध नहीं है लेकिन 'इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट' के मुताबिक साल 2010 से

राज्य में पत्रकारों पर हमले के 50 से ज्यादा मामले हुए। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरों के मुताबिक देश में पत्रकारों पर हमले के सर्वाधिक मामले उत्तर प्रदेश में हुए। वैसे पत्रकारों पर हमले के मामले में महाराष्ट्र भी उत्तर प्रदेश से कुछ खास पीछे नहीं है। महाराष्ट्र में पत्रकारों पर हमले की अधिकांश घटनाएं ग्रामीण इलाकों में होती हैं। 'पत्रकार हल्ला विरोधी कहि समिति' के मुताबिक ग्रामीण इलाकों में पत्रकारों पर हुए हमलों की रिपोर्ट नहीं की जाती है।

छत्तीसगढ़ में बीजेपी की रमन सिंह सरकार ने नक्सलियों से लड़ने के नाम पर पत्रकारों को आतंकित कर रखा है। बस्तर इलाके में पत्रकारों के लिए पुलसिया नियम यह है कि जहां भी पुलिस एनकाउंटर करती है उसकी निष्पक्ष रिपोर्टिंग मत करो, केवल पुलिस द्वारा दिया गया विवरण छापो। इस नियम का उल्लघंन करने वाले पत्रकारों को जेल में ठूंस दिया जाना, उनके खिलाफ झूठे मुकद्दमें दायर किया जाना तथा उनकी हत्या करवा दिया जाना आम बात हो गई है।

'हट' की रिपोर्ट के मुताबिक इस साल पत्रकारों पर हमले की घटनओं से पिछले साल के मुकाबले तेजी आयी है। इस साल जनवरी से अप्रैल के दौरान देश में पत्रकारों के खिलाफ मानहानि के 10 मुकद्दमे दायर किय गये, दो कानूनी नोटिस थमाई गई और चार मामलों में कानूनी कार्रवाई की गई। इतना ही नहीं पुलिस ने उनके खिलाफ छह झूठे मामले बनाये और एक पत्रकार को जान से हाथ धोना पड़ा। पत्रकारों पर हमले के 26 और जान से मारने की धमकी के छह मामले आये। इतना सब इस साल के शुरुआती चार महीनों में हुआ क्यों कि सत्ता के भीतर और बाहर के कुछ लोगों की याद बात मंजूर नहीं है कि पत्रकार जनता को सही और सटीक सूचना देने का अपना फर्ज निभा सके ।

'हट' का मानना है कि पिछले पांच वर्षों में भारत में पत्रकारिकता की आजादी पर खतरे ज्यादा बढ़ गये हैं। खासकर छोटे शहरों और कस्बों में पत्रकारों का काम करना कठिन हो गया है। शायद इसकी एक बड़ी वजह यह हो गयी है कि अब पत्रकार सूचनाओं को सामने लाने और घोटालों का भंडाफोड़ करने के लिए सूचना अधिकार कानून का इस्तेमाल करने लगे हैं। इससे पत्रकार घपलेबाजों के सीधे निशाने पर आ जाते हैं। अपने देश में राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा कोई दबाव समूह भी नहीं है जो ऐसे मामलों में सरकारों पर दबाव बनाये। एडिटर्स गिल्ड ऐसे मामलों में कुछ नहीं करता है, प्रेस परिषद अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करता है पर उसका कोई खास असर नहीं होता क्यों कि प्रेस परिषद को दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार ही नहीं है।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ जरूर कहा जाता है। लेकिन देश का राजनीतिक नेतृत्व बहुत करीबी से उसे कमजोर करने की लगातार कोशिश करता रहता है। केंद्र और राज्य सरकारें अपने मनमाफिक नौकरशाही की ही तरह अपना मनमाफिक मीडिया भी खड़ा करने में जुटी हुई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी पसंदीदा मीडिया समूह को प्रोत्सहन दिया जाता है और समर्थक पत्रकारों की जमात तैयार की जाती है। सत्ता एकतरफा तौर पर तप करती है कि किस मीडिया समूह से और किस पत्रकार से कितनी बात करेगी। इसी का नतीजा है कि आज भारतीय मीडिया का एक बड़ा तबका सत्ता की भाषा बोलना अपना फर्ज मान बैठा है। इसके चलते जिम्मेदारी से अपना काम करने वाले पत्रकारों की मुसीबतें और बढ़ गईं हैं। राजनेताओं का रुख भांपकर पूरी प्रशासनिक मशीनरी ने मीडिया विरोधी रुख आख्तियार कर लिया है।

**'रिपोर्टर्स विदाउट बॉडर्स' के मुताबिक साल 2015 में भारत में पत्रकारों के लिए युद्धग्रस्त इराक और सीरिया के बाद दुनियां का तीसरा सबसे खतरनाक देश साबित हुआ। इस रिपोर्ट के मुताबिक मीडियाकर्मियों के लिए पाकिस्तान और अफगानिस्तान से भी ज्यादा भारत खतरनाक देश है। शर्मनाक बात तो यह है कि पूरी दुनियां में केवल इराक और सीरिया में ही भारत से ज्यादा पत्रकार मारे गये।**

पत्रकारिता एक ऐसा पेशा है जिसमें काम करने वालों से उम्मीद तो यह की जाती है कि वह जान हथेली पर लेकर सच बाहर निकाल लाए, लेकिन हमारे देश में पत्रकारों की सुरक्षा का वैसा कोई इंतजाम नहीं है। अक्सर देखने में आता है कि कोई धार्मिक या चर्चित सामाजिक संगठन पत्रकारों के विरुद्ध सक्रिय हो जाता है। मोदी सरकार के सत्तारुढ़ होने के बाद से तो ऐसे संगठनों की सक्रियता में काफी इजाफा हुआ है। मीडिया की आजादी तभी संभव है जब उस पर राजनीतिक सत्ता या अन्य ताकतों का अंकुश न रहे। भारत में राजसत्ता के साथ ही कहीं रेत माफिया, कहीं बिल्डर, कहीं राजनेता तो कहीं धर्मगुरु, पत्रकार की जान के पीछे पड़े हैं। 'रिपोर्टर्स विदाउड बॉडर्स' की रिपोर्ट में साफ शब्दों में कहा गया है कि भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार मीडिया कवरेज पर सरकारी नियत्रंण बढ़ाने के लिए एक ऐसा पत्रकारिकता विश्वविद्यालय खोलने का विचार कर रही है जिसे सूचना विभाग के अवकाश प्राप्त अफसर चलाएंगे। यह प्रेस की आजादी को ही सपना बना देने का रास्ता साबित होगा।

स्वतंत्र भारत में इंदिरा गांधी द्वारा लगाये गये आपातकाल को पत्रकारिकता के लिए सबसे खतरनाक दौर के रूप में याद कियाक जाता है। परंतु हाल का दौर तो आपालकाल

**भारत के गुलामी के दिनों में अकबर इलाहाबादी ने देश के लोगों को सलाह दी थी कि 6 जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो। मीडिया विचारों के अभिव्यक्ति राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए मीडिया की स्वतंत्रता नितांत आवश्यक है। इस माध्यम को कुंठित कर लोकतंत्र चल ही नहीं सकता।**

से भी बुरा है। अधिकांश मीडिया मालिकों ने स्वेच्छा से मोदी सरकार और आर्थिक उदारीकरण के समर्थन का बीड़ा उठा रखा है। आपातकाल में पत्रकारिकता के दुश्मन की शिनाख्त की जा सकती थी लेकिन आज दुश्मन की स्पष्ट शिनाख्त संभव नहीं है। आज पत्रकारिकता की स्वतंत्रता के दुश्मन हर जगह मौजूद हैं, उन्हें सत्तारुढ़

दल का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष समर्थन भी शामिल है। कॉर्पोरेट मीडिया में जनोन्मुख पत्रकारिकता के लिए कुछ खास जगह ही नहीं बची है। जहां काम करने वाले पत्रकारों को प्रायः अभिव्यक्ति की आजादी से वंचित कर दिया गया है। दुर्भाग्य से देश के पूंजीवादी संस्थानों के अधिकांश संपादकों ने अपनी संपादकीय आजादी मालिकों के चरणों में अर्पित कर दी है। पेड न्यूज और मीडिया ट्रस्ट्री के इस दौर में पत्रकारिकता की आजादी की मतलब मीडिया मालिकों की आजादी बन गया है। बेशक यह स्थिति लोकतंत्र की भावना के विपरीत है।

भारतीय संविधान के जिन स्वतंत्रताओं को मूलभूत अधिकारों के रूप में गारंटी दी गई है उनमें वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को उच्च स्थान दिया गया है। वाक और अभिव्यक्ति से अभिप्राय है शब्दों, लेखों, मुद्रणों, चिन्हों, अभिनय और चित्रकारी आदि माध्यमों से अपने विचारों को अभिव्यक्ति करना। इसके अलावा और भी ऐसे कई ऐसे माध्यम हो सकते हैं जिनके द्वारा अपने विचारों को व्यक्त किया जा सकता है। और ऐसे सब माध्यमों को वाक और अभिव्यक्ति के अंतर्गत माना जाता है। 'अभिव्यक्ति' शब्द का क्षेत्र इतना व्यापक है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में 'प्रेस की स्वतंत्रता' भी सीमित हो जाती है। कोई भी व्यक्ति समाचार पत्रों में लेख, कार्टून, विज्ञापन आदि के माध्यम से भी अपने विचारों को प्रकट कर सकता है। यही प्रेस की स्वतंत्रता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की आधारशिला है। यही वह अधिकार है जो परतंत्रता और स्वतंत्रता के बीच अंतर को दर्शाता है। मूक रहना दासता की निशानी है जबकि मुंह खोलना आजादी का सूचक है। लोकतंत्र में हर नागरिक को न केवल अपनी इच्छा की सरकार चुनने का अधिकार होता है बल्कि वह अभिव्यक्ति के माध्यम से देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सब प्रकार की नीतियों को प्रभावित करने का अवसर पाता है। इसके जरिये वह लोकतांत्रिक रिपोर्ट से राष्ट्र के जीवन में भाग लेता है। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करने और दूसरे के विचारों को जानने का अधिकार होता है ताकि समग्र बातों को ज्ञान और समझकर वह अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करे तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों को शासन की कमियों, नीतियों आदि के खिलाफ अपनी आवाज उठा सके। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नागरिकों के लिए ही नहीं बल्कि स्वयं सरकार और देश के स्थायित्व के लिए भी जरूरी है।

भारत के गुलामी के दिनों में अकबर इलाहाबादी ने देश के लोगों को सलाह दी थी कि जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो। विचारों की अभिव्यक्ति राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए मीडिया की स्वतंत्रता नितांत आवश्यक है। इस माध्यम को कुंठित कर लोकतंत्र चल ही नहीं सकता। भारत के प्रेस आयोग अनुसार 'प्रेस एक ऐसा माध्यम है जिससे लोकमत स्पष्ट होता है वह लोकमत ही है जिसके सानिध्य में प्रजातंत्र पल्लवित और पुष्पित होता है' पत्रकारों की सुरक्षा की गारंटी के बिना मीडिया की स्वतंत्रता संभव ही नहीं है।

**सरोज त्रिपाठी**
मो. 09167383025

पत्रिका–परिक्रमा

**मुनि मुक्तिकंठ**

# मुद्रित शब्द के परे : आभासी संसार में उथल-पुथल

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन निरंतर उछाल पर है। पाठक के न होने या दृश्य में न होने या उस तक साहित्य के न पहुंचने का विमर्श भी समानांतर चलता रहता है। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या और उनकी पृष्ठ संख्या, इसके बावजूद बढ़ती जाती है। इनके स्तर को लेकर भी चर्चा चलती रहती है। उच्च स्तर, स्तरीय और औसत स्तर के बावजूद, जैसा लेखन वैसा मंच वह प्राप्त कर लेता है। यानी एक तरह का लोकतंत्र साहित्यिक पत्रकारिता में व्याप्त है।

खासकर फेसबुक में हिंदी साहित्य को लेकर उबाल आता रहता है। लेखकों के बीच कुछ गंभीर, कुछ चुहुलबाजी, कुछ कीच युद्ध, कुछ जूतम पैजार, कुछ गाली-गालौज, चर्चा-कुचर्चा का आलम बना रहता है। यह आभासी फूहड़बाजी है। पुराने किस्म की अड्डेबाजी या प्रतिगोष्ठियों में भी यह सब होता था, लेकिन वरिष्ठता और उम्र का थोड़ा लिहाज रख लिया जाता था। एक-दूसरे के गिरेबान पकड़े जाते थे, पर अपवादस्वरूप ही आमने-सामने तब या अब फिजिकल अड्डेबाजी के बरक्स आभासी अड्डेबाजी में खुला खेल फर्रुखावादी चलता है। युवा लेखकों के लिए तोहमत मढ़ी जाती है, तो यह गलत भी नहीं है, क्योंकि वे जब बकने में आते हैं, तो किसी का लिहाज नहीं करते। भाषा की शालीनता और सभ्यता के परखच्चे उड़ जाते हैं और उनकी सारी भड़ास सामने आ जाती है। इनका गुस्सा वरिष्ठों पर निकलता है। अब देखा जाए तो वरिष्ठ भी कम घाघ नहीं हैं। उनकी गिरोहबाजी, भीतरघात और चालाकी भी यत्र-तत्र दिखती रहती है। सोशल मीडिया इन दोनों ही पीढ़ियों को माफिक आ रहा है। यह नंगई भरा, गंधाता हुआ, गैर जिम्मेदार किस्म का लोकतांत्रिक स्पेस है। पर यह हमारे समय की सच्चाई भी है और एक मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षी 'पढ़ीक' इस गंद को मुट्ठी में लिए घूमता रहता है।

सोशल मीडिया में इधर दो बातें कुछ दिनों तक खबदाती रहती हैं। युवा कविता के लिए भारत-भूषण अग्रवाल पुरस्कार एक तरह से कुख्यात हो चुका है, फिर भी हर महत्वाकांक्षी युवा कवि इससे विभूषित भी होना चाहता है। इस बार के निर्णायक उदय प्रकाश थे और उन्होंने शुभश्री में एक कविता इसके लिए चुन ली। कविता के बारे में उनका वक्तव्य तो बाद में सामने आया, कविता की शामत पहले आ गई। कुंठित कवियों ने अपनी कुपढ़ता को जगजाहिर करते हुए पहले पुरस्कृत कविता को नोंच-चोंथ खाया, फिर उसकी अन्य कविताओं की मिट्टी पलीद की, फिर कवयित्री पर भी कीचड़ उछालने से परहेज नहीं किया। उधर दो-तीन वरिष्ठ कवि, कवयित्री और कविताओं का बीच-बचाव करते रहे। फेसबुक पर आई इस पंक-दृष्टि का कुछ प्रसाद वह्टस् एप पर गिरा। यहां चूंकि चर्चाएं समूहों में चलती हैं, इसलिए इसका चरित्र किंचित भिन्न है। पर उबाल तो यहां भी आता रहता है।

इस परखच्चे-उड़ाऊ चर्चा के कुछ ही दिन बाद द्रौपदी सिंघार नाम की कवयित्री फेसबुक पर अवतरित हुई और उन्होंने तेजस्वी, धारदार, तकलीफदेह, सच्ची-सी लगने वाली मारक कविताओं की झड़ी लगा दी। लगाते ही उनके फेक होने पर बहस छिड़ गई। रचनाकार के नकली होने के साथ-साथ कविताओं के नकलीपन पर भी बहस होने लगी।

अब सवाल यह उठा कि छद्म नाम पहले से भी लिखा गया है तो इसमें क्या हर्ज है। लेकिन कागजों के पुलिंदे से मशाल बनाने की कोशिश करने की तरह

इन माओवादी क्रांतिकारी कविताओं की राख दो ही दिन में हवा हो गई। आग की लपट की तो बात ही क्या कहनी। उससे तो बीड़ी जलाना भी मुमकिन नहीं लगता। यहां सोशल मीडिया का चरित्र अपना खेल खेल गया। वो हर बात को हर विमर्श को, हर संजीदगी को पलभर में चकनानूर कर देता है। अगर प्रयोक्ता उसका समझदारी से इस्तेमाल न करे तो उसके हाथ का खिलौना ही बन जाएगा। इलेक्ट्रॉनिक लोक का यह नया स्पेस स्वभाव में जितना चंचल है, प्रयोक्ता को उतना ही बड़ा चूतिया बनाता है।

# सामयिक प्रकाशन : समीक्षा और सरस्वती

राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित आलोचना पत्रिका की भूमिका से हम सभी परिचित हैं। इस पत्रिका ने कई पड़ाव तय किये, कई बार फीकी पड़ी। आधार प्रकाशन ने कई साल तक 'पल-प्रतिप्रला' निकाली। इधर पिछले साल उसकी फिर शुरूआत हुई। वाणी प्रकाशन ने वाक पत्रिका निकाली तो सुधीर पचौरी की गुंफलक भरी लेखन-प्रक्रिया की तरह की ही भारी-भरकम है। कुछ वर्ष पहले गोपाल राय की समीक्षा पत्रिका को सामायिक प्रकाशन ने अपने आगोश में ले लिया। सत्यकाम इसका संपादन करते हैं। पत्रिका अभी भी पुस्तक समीक्षा पर केंन्द्रित है। सामायिक प्रकाशन ने ही महावीर प्रसाद द्विवेदी की सरस्वती का नवावतरण कर दिया है। शरद सिंह इसके संपादक हैं। अप्रैल-जून 2016 का अंक मुक्तिबोध शताब्दी विशेषांक है जिसका संपादन दिनेश कुमार ने किया है। इस अंक में मुक्तिबोध का पुनरावलोकन करते हुए से लेख और शोध लेख हैं। आजकल की पत्रकारिकता में विस्मृति का सा आलम है जिसमें प्रकाशन की मूल तिथियों आदि को महत्व नहीं दिया जाता। अगर कोई लेख पुनः प्रकाशित किया जा रहा है तो उसे नए लेख की ही तरह छापा जाता है। सरस्वती का यह विशेषांक भी इस वृत्ति का शिकार है। कथादेश का अगस्त-2016 का अंक भी एक विशेषांक है जिसमें कथादेश और सर्नुनोस द्वारा आयोजित रहस्य-कल्पना प्रतियोगिता 2015 में पुरस्कृत कहानियां संकलित है। इस परियोजना के बारे में अर्चना वर्मा ने लिखा है कि हल्के-फुल्के लेखन को अनुवाद सहित बढ़ावा देने की यह एक नई शुरूआत है। सर्नुनोस बुक्स ने यह प्रतियोगिता कर्रवाई है और इन कहानियों का अंग्रेजी और फ्रेंच में अनुवाद भी हो रहा है।

हाशिए के बाहर से- हमारे समाज का बहुत कुछ मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ा रहता है। बहुत से जनजातीय समाज ऐसे ही हैं। ऐसा ही एक इलाका हिमाचल प्रदेश का लाहुल स्पीति जनजातीय इलाका है जो दुर्गम है और विलक्षण है। इसी इलाके की कला संस्कृति के संरक्षण के लिए बनी एक संस्था चन्द्रताल नाम की पत्रिका निकलती है। इस वर्ष उसका उन्नीसवां अंक छपा है। इस अंक में साहित्य के अलावा विवाह संस्कारों, हीनयान और महायान के अंदर महिलाओं की स्थिति और देव परंपरा पर जानकारीप्रद सामाग्री है।

# मौजूदा समय : तीन विशेषांक

देशबंधु प्रकाशन की मासिक पत्रिका 'अक्षर पर्व' ने जून 2016 के रचना वार्षिक अंक में दस सवालों पर परिचर्चा आयोजित करके वर्तमान वैश्विक संकटों की टोह लेने की कोशिश की है। इनके सवालों में कट्टरता (फंडा मेंटालिज्म , वैश्विक राजनीति, उनके अंतर्विरोधों) से जुड़े दो-चार होने की कोशिश है। साथ ही समाधान सुझाव और बुद्धिजीवी की भूमिका को भी खंगाला गया है। इस परिचर्चा में अपूर्वानंद, चंचल चौहान, निर्मला भुराड़िया, पंकज बिष्ठ, राजेश जोशी सहित दो दर्जन से अधिक लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं।

इंदौर से छपने वाली पाक्षिक पत्रिका 'रविवार' पिछले 34 वर्षों से छप रही है, जो हर अंक में ज्वलंत मुद्दों पर विमर्श करती है। अगस्त महीने का अंक स्वाधीनता पर केंद्रित है, जिसमें अलग-अलग पहलुओं से स्वाधीनता को समझने की कोशिश की गई है। इस विमर्श में इसमें इरोम शर्मिला और तमिल लेखक पेरुमल मुरुगन के संघर्षों को स्थान मिला है, तो अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव और संस्कृत साहित्य की स्वतंत्र स्त्रियों की चर्चा भी की गई है। इस अंक में अलग ही तरह का लेख अशोक भौमिक का है, जो निराला की प्रसिद्ध कविता 'वह तोड़ती पत्थर' और गुस्ताव कोरबे के चित्र 'पत्थर तोड़ने वाले' के बहाने से आजादी की चर्चा करते हैं। तीसरा विशेषांक तहलका का है, जो भारत की अखंडता पर केंद्रित है। यह अखंडता भारतीय राज्यों की अखंडता नहीं, भारत के साथ पाकिस्तान और बांग्लादेश के विलय वाली अखंडता है। यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की यूटोपिया है, जिसे तहलका ने खंगालने की कोशिश की है। इस बहस में संघ के प्रवक्ता राम माधव हैं, पाठ्यक्रमों का भगवाकरण करने वाले दीनानाथ बत्रा हैं, राजनीति से बाहर सूखने डाल दिए गए, लालकृष्ण आडवाणी हैं, तो दूसरी तरफ कुलदीप नैयर, तसलीमा नसरीन, मणिशंकर अययर, असगर वजाहत और फरहान हबीब हैं। धरोहर की तरह यहां राममनोहर लोहिया का 1963 में लिखा लेख भी है, जिसमें उन्होंने भी भारत पाक एकीकरण का सपना देखा है।

# हर गहराई में मिली नये प्रतिमानों की ऊँचाई

गहरे जल संचालनों को बढ़ाने के लिए एफपीएसओ इकाइयों का प्रवर्तन

शीघ्र उत्पादन के लिए अत्याधुनिक रिग माउन्टिड प्लेटफार्म आरएस–12

- 22.264 एमएमटी कच्चे तेल का उत्पादन – 7 वर्षों में सर्वाधिक
- विश्व के सर्वोत्तम में से एक 1.38 का आरक्षित प्रतिस्थापन अनुपात (आरआरआर)
- वित्तीय वर्ष 13–14 में 14 खोजों की तुलना में वित्तीय वर्ष 14–15 के दौरान 22 नई खोजें
- 'फॉर्चून–विश्व की सबसे प्रशंसित कम्पनियां–2014' की सूची में चयनित एकमात्र भारतीय ऊर्जा कंपनी
- ईएंडपी कम्पनियों में प्लैट्स द्वारा विश्व में तीसरा स्थान प्राप्त
- तेल तथा गैस संचालन कम्पनियों में फोर्ब्स ग्लोबल 2000 सूची–2015 द्वारा विश्व में 18वां स्थान प्राप्त

खोज के लिए साहस | श्रेष्ठता के लिए ज्ञान | उत्कृष्टता के लिए तकनीक

ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड
सीआईएन नं.: एल74899डीएल1993जीओ1054155
पंजी. कार्यालय : 'जीवन भारती', टॉवर II, 124– इन्दिरा चौक, नई दिल्ली–110001
फोन : 011–23301000, 23310156, 23721756, फैक्स : 011–23316413 वेब : www.ongcindia.com | /ONGCLimited | @ONGC_

ओएनजीसी कम्पनियों का समूह

अनुशंगी कम्पनियां

संयुक्त उद्यम

एसोसिएट्स


स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक हृदयेश मयंक ने मिलेनियम आर्ट्स, डी-19-20, आकुर्ली इंडस्ट्रीयल इस्टेट, कांदिवली (पूर्व), मुंबई से छपवाकर शॉप नं. 3, आई-59 व 60, नवग्रह अपार्टमेंट, पूनम सागर कॉम्पलेक्स, मीरा रोड (पूर्व), ठाणे - 401107 (महाराष्ट्र) से प्रकाशित किया। संपादक : हृदयेश मयंक ■ REG. No. MAH/HIN/39947/86